

गूजरातपुरातत्त्वमन्दिरग्रन्थावली

आचार्यश्रीसिद्धसेनदिवाकरप्रणीतं

-प्रकरणम् ।

जैनश्वेताम्बर-राजगच्छीय-प्रद्युम्नसूरिशिष्य-तर्कपञ्चानन-
श्रीमद्-अभयदेवसूरिनिर्मितया तत्त्वबोधविधायिन्या
व्याख्यया विभूषितम् ।

तृतीयो विभागः ।

(प्रथमकाण्डान्तः)

गूजरातविद्यापीठप्रतिष्ठितपुरातत्त्वमन्दिरस्थेन
संस्कृतसाहित्य-दर्शनशास्त्राध्यापकेन
पं० सुखलालसंघविना
प्राकृतवाङ्मयाध्यापकेन जैनन्याय-व्याकरणतीर्थ-
पं० बेचरदासदोशिना च
पाठान्तर-टिप्पण्यादिभिः परिष्कृत्य संशोधितम् ।

गूजरातपुरातत्त्वमन्दिर
अमदावाद

प्रथमावृत्ति, प्रतिसं० ५००]   संवत् १९८५   [...

विज्ञापन

गूजरातपुरातत्त्वमंदिरनी प्रबंधसमितिना संवत् १९८३ ना मागशर सुद ९ ना बीजा ठराव मुजब आ पुस्तक प्रसिद्ध करवामां आवे छे.

भाद्रपद १५
संवत् १९८३

प्रकाशक

प्रकाशकः—श्यामलाल ह. भगवती कामचलाउ महामात्र, गूजरातविद्यापीठकार्यालय, अमदावाद

मुद्रकः—रामचंद्र येसू शेडगे, निर्णयसागर प्रेस, नं. २६–२८, कोलभाट लेन, मुंबई

टीका-टिप्पण्युपयुक्तावतरणस्थानानां सङ्केताः।



अनुयोग०	अनुयोगद्वारसूत्रम्।
अभिधानप्प०	अभिधानप्पदीपिका (पालीशब्दकोशः)
आप्तमी० आप्तमीमां०	आप्तमीमांसा।
तत्त्वार्थटी०	तत्त्वार्थसूत्रटीका।
तत्त्वोपप्लवः	
दशवै० निर्यु०	दशवैकालिकसूत्रनिर्युक्तिः।
धर्मसं०	धर्मसंग्रहः (बौद्धः)।
नयचक्र० लि० को०	नयचक्रम् आत्मीया लिखितप्रेसकोपी।
नयोप०	नयोपदेशः।
न्यायप्र० सू०	न्यायप्रवेशसूत्रम्।
न्यायप्रवेशसू० वृ०	न्यायप्रवेशसूत्रवृत्तिः।
न्यायबिं० न्यायबिन्दुप्र०	न्यायबिन्दुप्रकरणम्।
न्यायवा० ता० टी० न्यायवार्तिकता०	न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका।
न्यायाव०	न्यायावतारः।
पञ्चास्तिका०	पञ्चास्तिकायः।
प्रमाणनयत०	प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारसूत्रम्।
प्रवचनसारः	
प्रशस्त० कं०	प्रशस्तपादभाष्यम् कन्दलीसहितम्।
बृ०	बृहत्ताडपत्रम्।
बोधिचर्या० प्रज्ञाकर०	बोधिचर्यावतारः प्रज्ञाकरमतिकृतपञ्जिकासहितम्।
भगवती० भगवती० सू० भगवती० टी०	भगवतीसूत्रम् टीकासहितम्।
मज्झिमनिकायः	
मध्यमकवृ० प्रत्ययप० आर्यसत्य० प्र०	मध्यमकवृत्तिः मध्यमककारिका प्रत्ययपरीक्षा प्रकरणम्, आर्यसत्यपरीक्षाप्रकरणम्।
महापदानसुत्तन्त	
राजवा०	राजवार्तिकम्।
ल०	लघुताडपत्रम्।
लौकिकन्याया० भा०	लौकिकन्यायाञ्जलिः, भागः।
विशेषा० बृ० वृ०	विशेषावश्यकबृहद्वृत्तिः।
विशेषाव० भा०	विशेषावश्यकभाष्यम्।
शास्त्रदीपिका युक्तिस्नेह— प्रपूरणीसिद्धान्त०	शास्त्रदीपिका युक्तिस्नेहप्रपूरणी- सिद्धान्तचन्द्रिकाव्याख्यायुता।

शिक्षासमु० परि०	शिक्षासमुच्चयः परिच्छेदः।
सम्मति० द्वि० का०	सम्मतितर्कप्रकरणम् द्वितीयं काण्डम्।
सप्तभङ्गीत०	सप्तभङ्गीतरङ्गिणी।
सिद्धिवि० टी० लि०	सिद्धिविनिश्चयटीका लिखितप्रेसकोपी गूजरात-पुरातत्त्वमन्दिरसत्का।
सुत्तनिपातः	
सुमङ्गलविलासिनी सामञ्ञफलसुत्तव०	सामञ्ञफलसुत्तवण्णना।
सूत्रकृ० टी०	सूत्रकृताङ्गसूत्रम् टीकासहितम्।
स्थाना० सू०	स्थानाङ्गसूत्रम्।
स्फोटसि० स्फोटसिद्धिन्यायविचारः अनन्त०	स्फोटसिद्धिन्यायविचारः अनन्तशयनग्रन्थमाला।

विषयानुक्रमः ।

सर्वदि दूर करी शकाय. परन्तु प्रयत्न छतां तत्त्वसंग्रहनी पेठे अखंडपणे संमतिनी टीका साथे सरखावी शकाय तेवा बौद्ध के अन्यदर्शनसंबंधी कोई ग्रंथो ठेठ सुधी मळ्या नहि तेथी पांचमी गाथानी टीकाने संपूर्णपणे शुद्ध करवानुं काम अमारे माटे अशक्य ज रही गयुं.

श्रीअभयदेवसूरिए पांचमी गाथानी टीकामां पर्यायास्तिकनयनो विभाग तेम ज तेनुं उत्तरोत्तर सूक्ष्मपणुं दर्शाववा ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ अने एवंभूत ए चार नयोनुं विस्तृत स्वरूप सौत्रांतिक आदि चार शाखाओना जे बौद्धग्रंथो के तेना प्रकरणोने आधारे वर्णव्युं तेम ज घटाव्युं छे ते मूलभूत ज बौद्धग्रंथो के तेना उपरथी अक्षरशः थयेल उतारावाळा अन्य ग्रंथो ज्यांसुधी न मळे त्यांसुधी पांचमी गाथानी टीकाने संपूर्ण शुद्ध करवी कोई पण रीते शक्य नथी. ए टीकाने शुद्ध करवाना मौलिक अने महत्त्वना साधनो प्राप्त न थया छतां तेने शुद्ध करवामाटे अमे बीजा उपलब्ध साधनोनो बहु छूटथी अने कंटाळ्या विना उपयोग कर्यो छे. ए साधनोमां अनेक बौद्ध, जैन अने वैदिक ग्रंथोनो समावेश थाय छे परन्तु ते बधामां शुद्धिकार्यमां उपयोगी थवानी दृष्टिए प्रमेयकमलमार्तंडनुं स्थान मुख्य छे.

लेखकोनो असली प्रतनी लिपि वांचवानो भ्रम, अर्थनुं अज्ञान के तेनो विपर्यास, पठन–पाठनो अभाव अने प्रतिना पत्रोनुं खंडितपणुं के अव्यवस्थितपणुं इत्यादि अनेक कारणोने लीधे अशुद्धिओ पण विविध प्रकारनी उत्पन्न थयेली छे. एने सुधारवा अमे मुख्यपणे त्रण रीतो अख्त्यार करेली छे. (१) संमतिटीकानी तेना पूर्ववर्ती के उत्तरवर्ती समानविषयक ग्रंथो साथे सरखामणी, (२) अर्थदृष्टि अने (३) भाषादृष्टि. ज्यां टीकाने शुद्ध करवामां अन्य ग्रंथोनी सरखामणीनो उपयोग कर्यो छे त्यां पण अर्थ अने भाषादृष्टि छोडी नथी. परन्तु ज्यां तेवी सरखामणीनुं साधन नथी मळ्युं त्यां अर्थदृष्टिने प्रधान राखी भाषादृष्टिनी मददथी पाठशुद्धि करी छे अने ज्यां अर्थदृष्टि पण काम न करी शकी त्यां केवळ भाषादृष्टिनो उपयोग करी पाठशुद्धि करी छे अने घणुं [illegible] कायम राखी शुद्धरूपे कल्पेला पाठने कोष्ठकमां दाखल करेल छे अने घणी [illegible] नीचे टिप्पणीमां ते ते ग्रंथना नाम साथे कर्या छे.

आ [illegible] यथाशक्ति संपूर्ण उपयोग कर्या छतां पण पांचमी गाथानी टीका घणे [illegible] अशुद्ध अने असंगत रही गइ छे. जे जे अंशो अमने खंडित, पुनरुक्त, [illegible] लाग्या छे ते बधानो आदिभाग (??) अथवा [?? तथा अंतभाग (?) अथवा ??] [illegible] कर्यो छे. उदाहरणार्थ जुओ पृ० ३२२ तथा ३३१ वगेरे. बहु [illegible] टीकाना पूर्वार्द्धमांथी तो घणी अशुद्धिओ ओछी थइ छे परन्तु [illegible] अने शरूथी पूरी घणी अशुद्धिओ रही ज गइ छे.

[illegible] प्रासंगिक अंश (पृ० ३७९–३८५) नो तत्त्वसंग्रहना [illegible] अक्षरशः [illegible] छे. तेथी [illegible] भाग तत्त्वसंग्रहनी मदद द्वारा तद्दन शुद्ध [illegible] तत्त्वसंग्रहनी मूल कारिकाओ [illegible] भाग [illegible] माटे पांचमी गाथानी टीकानी पेठे [illegible] छट्ठी गाथानी टीकानो बाकीनो पृ० ३८६ थी [illegible] छे. ए भाग माटे अक्षरशः [illegible] शकाय तेवो [illegible] अशुद्धिओ दूर करी, छतां पण [illegible] अशुद्ध रही गइ छे पण ते [illegible] आ बीजा भागमां (पांचमी गाथानी टीका बाद [illegible]) अशुद्धिओ बहु [illegible] कर्या छे.

हवे प्रस्तुत भागनां संशोधन अंगेना संशोधननी बाबत कहुं. ए बाबतो मुख्य त्रण छे. (१) प्रतिओ संबंधी, (२) पाठान्तरो संबंधी अने (३) टिप्पणोना उपयोग संबंधी.

(१) पहेला अने बीजा भागना संशोधन कार्यमां जे प्रतिओनो उपयोग थयेलो छे ते प्रतिओ उपरांत बीजी बे विशिष्ट प्रतिओए आ त्रीजा भागना संशोधनकार्यने बहु लाभ अने महत्त्वनुं बनाव्युं छे. ए बे विशिष्ट प्रतिओ ते ताडपत्रनी छे. बेमां एक ताडपत्र लांबा आकारनुं अने बीजुं लघु छे. ताडपत्रनी बन्ने प्रतिओ शुद्धप्राय अने क्वचित् क्वचित् टिप्पणीयुक्त छे. आ बृहत् अने लघु बन्ने ताडपत्रोमां मात्र संमतिनुं उत्तरार्द्ध छे. कारण के तेना खंडो प्रथमथी खाक थइ अनुक्रमे बधा जाय छे. आ बन्ने प्रतिओना पूर्वार्द्धवाळा खंडो जेमां पहेली गाथाथी छट्ठी गाथानी टीकाना लगभग अर्धाथी वधुनुं पूर्वार्द्ध हशे ते हजी प्राप्त थया नथी. जो ए बन्ने पूर्वार्द्धना खंडो जिनालयना भंडारमांथी क्यांय पण क्यारे अवश्य रही गया हशे अने क्यारेक कोइने पण सद्भाग्ये मळी आवशे तो आ उत्तरार्द्धवाळा खंडोनी पेठे ते खंडो पण अशुद्ध रही गयेल टीकाने शुद्ध करवामां अमूल्य मदद आपशे. केवळ पांचमी गाथानी टीका पूरतो पण ताडपत्रनो भाग मळ्यो होत तो खरेखर एमां आटली लांबी अशुद्धिओ रही न होत. उत्तरार्द्धना जे बे भागो सद्भाग्ये प्राप्त थया छे तेमां बृहत् ताडपत्रमां उत्तरार्द्ध पूर्ण छे एटले प्रथम कांडनी छट्ठी गाथानी टीकाना मध्यभागथी शरु थइ प्रथम कांड पूर्ण अने द्वितीय तथा तृतीय कांड पण पूर्ण छे. ए बृहत् ताडपत्रना कुल २२४ पानां छे. ज्यारे लघु ताडपत्र उपर उत्तरार्द्ध पण पूर्ण नथी. एनुं प्रथम पत्र नथी अने छेल्लुं पत्र १८० मुं छे. तेटला पत्रोमां त्रीजुं कांड पण अपूर्ण छे अने वचे घणे स्थळे पत्रो गुम थयां छे तेम ज घणे स्थळे टीटीओनी टीटीओ घसाइ भुंसाइ गयेली छे. ए बन्ने ताडपत्रना सुंदर अक्षरोए, शुद्ध पाठोए अने महत्त्वनी टिप्पणीओए प्रस्तुत भागना संशोधनमां जे मदद आपी छे तेने लीधे पांचमी गाथानी टीकामां रही गयेल अशुद्धिओनी त्रुटि जरा ओछी खटके छे. काळनी अन्य प्रतिओनी पेठे आ ताडपत्रनी प्रतिओनी पण विशेष माहिती भविष्यमां आपवानी धारणा होवाथी अत्यारे एटलुं ज सूचववुं बस थशे के, आ बे ताडपत्रना खंडोने लीधे प्रस्तुत त्रीजा भागना संशोधनने वधारे महत्त्व मळ्युं छे अने हवे पछी प्रसिद्ध थनार त्रीजा कांडनो चोथो भाग अने त्रीजा कांडनो पांचमो भाग पण आ बे खंडोने लीधे ज वधारे महत्त्व प्राप्त करशे.

परन्तु जेम एक बाजु उपलब्ध ताडपत्रना खंडो सगवडमां उमेरो करे छे तेम बीजी बाजु बा० अने वा० प्रतिनो थोडो खंडित भाग संशोधनकार्यमां साले छे. बा० वा० बन्ने प्रतिओ वधारे-मां वधारे अशुद्ध छतां क्वचित् क्वचित् अन्य बधी प्रतिओ करतां वधारेमां वधारे शुद्ध छे. ए बन्ने समान प्रतिओना पांचमी गाथानी टीकाना अंतवाळां अने छट्ठी गाथानी टीकाना आरंभवाळां केटलांक पानां उपलब्ध न होवाथी एनुं खंडितपणुं खास साले छे. जो ए बे प्रतिओनां एटलां पानां क्यारेक उपलब्ध थाय तो ते ते स्थळनी अशुद्धिने अल्पांशे दूर करवामां तेनो किंमती उपयोग थइ शकशे.

(२) प्रस्तुत भागना संशोधनमां पाठान्तरनुं कार्य प्रथमना बे भागो करतां कांइक जुदुं पडतुं थयेलुं छे. प्रथमना बे भागोना संशोधन वखते पाठान्तरो लीधा पछी तेमांथी पसंदगी करवानो अने छोडी देवानो क्रम सामान्य रीते एक सरखो राखवामां आव्यो हतो. ज्यारे प्रस्तुत भागमां ए क्रम जाणी जोइने ज एक सरखो राख्यो नथी. प्रस्तुत भागमां पांचमी गाथानी टीका अशुद्धि-बहुल छे अने छट्ठी तथा खास करी सातमी आदि बधी गाथाओनी टीका वधारे शुद्ध छे. ज्यां ज्यां जटिल अशुद्धिओ ——— त्यां त्यां प्रतिओमांथी मळेला वहन खोटा जणावा

नीचे नोंध्या छे—जेथी ते ते स्थळोमां सघळी प्रतिओ एक सरखी रीते केवी अने केटली विक
विलक्षण रीते अशुद्ध थइ गइ छे ते अभ्यासीने मालूम पडे अने अशुद्धिनी उत्पत्ति केम थ
छे? ते थया पछी केम वधे छे? तेम ज घणीवार शुद्ध करवा जतां उलटी अशुद्धि केम आवे
एवुं सूक्ष्म ज्ञान अशुद्धिनो इतिहास लखनार विद्वान्ने एवा पाठान्तरो उपरथी थइ शके. तेम
कोई अभ्यासीने ए अशुद्ध जणाता विविध पाठान्तरो उपरथी कालान्तरे शुद्ध पाठ कल्प
प्रेरणा मळे—आथी उलटुं जे भाग तद्दन शुद्ध अगर शुद्धप्राय छे त्यां प्रतिओमांथी मळी आवे
अनेक पाठान्तरोमांथी जे उपयोगी लाग्यां ते ज बहुधा राख्यां छे अने अन्तर्गडु जेवा अनुपयो
जणायेलां पाठान्तरो तद्दन छोडी दीधां छे.

(३) पहेला बे भागना संशोधनमां उपयोग नहीं कराएल एवा पण अनेक ग्रंथोनो प्रस्
भागना संशोधनमां उपयोग करवामां आव्यो छे. टीकामां आवेल अवतरणोना मूल स्थान बताव
प्रतिपाद्य विषयनी अने पाठनी सरखामणी करवा, कल्पित शुद्ध पाठनो संवाद आपवा, एक ज विष
भिन्न भिन्न दर्शनना ग्रंथकारो के एक ज दर्शनना भिन्न भिन्न समय भावी ग्रंथकारो केवी केवी रं
चर्चे छे ते जणाववा कोई पण विषय परत्वे अभ्यासीनी दृष्टीने व्यापक बनावी तेना अभ्यास
मार्ग वधारे सरळ करवा अने कया ग्रंथ के कया ग्रंथकार उपर कोनी कोनी केटकेटली असर पडी
तेनुं पृथक्करण करवानी सरळता करी आपवा एम अनेक दृष्टिथी प्रेराई प्रस्तुत भागना संशोधन
कराएलो प्रचुरग्रंथराशिनो उपयोग अभ्यासको आपोआप जोई शकशे.

प्रस्तुत भागना संशोधनमां अनेक ग्रंथनो उपयोग कर्या छतां पण एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथनो उ
योग करवो बाकी रही गयो छे. बौद्धभिक्षु धर्मकीर्तिप्रणीत हेतुबिन्दुना दुर्लभ विवरणनी जीर्ण ता
पत्रनी प्रति प्राप्त थयानुं सूचन अमे संमतिना द्वितीय भागना प्रारंभिक निवेदनमां ज करी गयेला छीए
प्रस्तुत भागना संशोधनमां ए प्रतिनो उपयोग करी शकायो होत तो केटलीक अशुद्धिओ दूर करवा
बहु किंमती मदद मळत पण प्रस्तुत ग्रन्थ छपाववा लाग्या पछी तेनी वांची शकाय तेवी नकल तैयार थ
शकी. तेथी ए विवरणनी सरखामणी भविष्यना विशिष्ट परिशिष्ट माटे मुलतवी राखवानी फरज पडी छे

आ भागनी तैयारीथी मांडी प्रसिद्धि सुधीमां खास विद्यारुचिमहानुभावो तरफथी जे जे विवि
सगवड मळी छे तेनी नीचे नोंध लई अमे अमारी कृतज्ञता प्रदर्शित करीए छीए.

ख्यातनामा श्रीमद् आत्मारामजी महाराजना पट्टधर प्रशिष्य श्रीमद् **विजयवल्लभसूरि**
प्रेरणाथी लाहोर शहेरना श्रीसंघे करेली आर्थिक मददथी आ कार्यने लायक सहकारी कार्यक
मेळववामां अमने अतिउपयोगी राहत मळी छे.

प्रवर्तक श्रीकान्तिविजयजीना प्रशिष्य अने अमारा हमेशना सहकारी सुशील **मुनिश्रीपुण्य
विजयजीए** दूर रह्या रह्या पण संशोधनकार्यमां करेली विविध मददने लीधे अमने अतिकिंमत
बहुमूल्य लाभ थई छे. ते उपरांत उपर सूचवेल हेतुबिन्दु विवरणनी तद्दन जीर्ण अने घसाए
मुंझाएल अक्षरवाळी तथा मुश्केलीथी पण वांची न शकाय एवी प्राचीन लिपिनी ताडपत्रनी प्र
उपरथी बहु परिश्रम लई तेओश्रीए अमारा उपयोग माटे एक सुवाच्य अक्षरवाळी सुंदरतम नक
करी आपी छे. जे पुरातत्त्वमंदिरना पुस्तकसंग्रहमां तेओश्रीना नाम साथे मूकवामां आवी छे.

सुखलाल
अने
बेचरदास.

संपादकीयं निवेदनम् ।

इदमस्माकं तृतीयः संमतेर्विभागो विदुषां समक्षमुपस्थाप्यमानो लेखमात्रसंकलितिक्लिष्टेन विलम्बेन भारतवर्षेण गतवर्षं समाप्तमिव अनुभवामः । प्रस्तुतविभागसंशोधनकर्म वर्षद्वयात् प्रागेव प्रारब्धं किन्तु यदि तत् सततं नाऽस्खलिष्यत न वा अन्तरायैर्विहितं सकलमपि साधनसम्पत्तिः पुरातत्त्वमन्दिरेण इतरैश्च विद्याविदग्धानुभावैः यथासमयमुपाहरिष्यत तदा प्रस्तुतविभागप्रकाशनं द्वितीयविभागादनन्तरमेवैकेन वर्षेण कथमपि कार्यविधानं नाऽभविष्यत् ।

प्रस्तुतभागगतमूल–टीकासंशोधनसम्बन्धिनः परिचये विशिष्टविषया अत्र लेखाः सङ्ग्रहीतुं सन्निहिताः सन्ति । तत्र मूलगाथापरिमाणं टीकागतग्रन्थपरिमाणं चेति द्वावेव ग्रन्थसम्बन्धिनौ विषयौ प्रधानतया वक्तव्यौ स्तः ।

(१) प्रथमद्वितीयगाथाचतुष्टयस्य प्रकाशितपूर्वे विभागद्वये शेषगाथापञ्चाशतश्च प्रकाश्यमानेऽस्मिन् विभागे समावेशनतया प्रथमं काण्डं प्रस्तुतविभाग एव परिपूर्यते । मूलकारैः श्रीमत्सिद्ध-दिवाकरैरस्मिन्नपि प्रथमे काण्डे सूक्ष्मतया, स्पष्टतया, विस्तरतया च मीमांसिता नया एव टीकाकारैः श्रीमदभयदेवैरतिविस्तरतया दार्शनिकविविधवादचर्चया विशदीकृता वर्तन्ते । प्रस्तुतवि-भागप्रकाशनेन च मूलकार–टीकाकारकृतनयगोचरसंक्षिप्तविस्तृततममीमांसापरिज्ञानसामग्री सुलभ-तया समुपतिष्ठते ।

(२) प्रस्तुतविभागसन्निविष्टायां गाथापञ्चाशट्टीकायां षष्ठगाथाटीका विस्तृततरा पञ्चम्याश्च विस्तृततमा विद्यते । पञ्चमगाथाटीका विस्तरेणेवाऽशुद्धत्याऽपि शेषसमस्तगाथाटीकामतिशेते । सप्तमी-प्रभृतिसमस्तगाथाटीका तु निर्विकारविरलाऽशुद्धिमती समासीत् । अत एव सा सर्वत्र शुद्धप्राया समपद्यत । षष्ठगाथाटीकायां किञ्चिदधिकाऽप्यशुद्धिः पञ्चमगाथाटीकातः स्वल्पतमैवाऽऽसीत्, पञ्चमगाथाटीकायां तु यादृशी यावती चाऽशुद्धिरासीत् तादृशी तावती च क्वाऽपि टीकांशे नाऽवलोकनपथमवतीर्णा । यद्यपि द्वितीयविभागसन्निविष्टा द्वितीयगाथाटीकाऽप्यशुद्धतरैवाऽऽसीत्, तथापि तत्त्वसंग्रहसाहाय्-येन सा सर्वात्मना शुद्धीकृत्य मुद्रयितुमशक्यत । पञ्चमगाथाटीकां शुद्धीकर्तुं तथाविधं किमपि साधनमद्ययावन्नाऽलभ्यत ।

द्वितीयगाथाटीकायामिव पञ्चमगाथाटीकायामपि बौद्धदर्शनगोचरैव चर्चा मुख्यतामनुभवति । यथा द्वितीयगाथाटीकाचर्चितं बौद्धप्रकरणं संशोधयितुं तत्त्वसंग्रहीयं तदेव प्रकरणमविकलतया उपायुज्यत तथा पञ्चमगाथाटीकाचर्चितसौत्रान्तिक–वैभाषिक–योगाचार–माध्यमिकाख्यचतुर्विधबौद्ध-दर्शनसामान्यप्रतिपादकः टीकाकारैरशेषोऽनुसृतो मूलप्रकरणग्रन्थ एव तां टीकां संशोधयितुं सर्वात्मना उपयुज्येत, परन्तु सम्प्रति [illegible] टीकाऽर्थकलुषतोपयोगिनां केषांचिद् बौद्धदर्शन-शास्त्रग्रन्थानां वा ग्रन्थानामितरेषां [illegible] पञ्चमगाथाटीकायाः सर्वाङ्गीणं शुद्धत्वं [illegible] अनुमानमेव [illegible] ।

श्रीमदभयदेवसूरिभिः [illegible] विभागमुद्रणोत्तरमुपलब्धं च [illegible] सार्ष–तर्कादिशास्त्रचतुष्टय-सम्बन्धिनो [illegible] मूलग्रन्थं [illegible] अन्यथा अप्रकाशितमुपजी-व्योऽपरे ग्रन्था वा [illegible] पञ्चमगाथाटीकायाः सर्वथा शुद्धिविधानं कथमपि

[ऋजुसूत्रविषयतया क्षणभङ्ग-विज्ञानमात्र-शून्यत्ववादानामुपक्षेपः]

[१ क्षणभङ्गवादः]

[पूर्वपक्षः–स्थैर्यवादिभिः क्षणभङ्गस्य निराकरणम्]

नेनु च क्षणक्षयपरिणामसिद्धावेवं वक्तुं युक्तम्, प्रमाणरहितस्य वचसो विपश्चितामनादरणीयत्वात्। न च क्षणक्षयावगमे प्रमाणव्यापारः—यतो न तावदध्यक्षं क्षणक्षयितां भावानामवगच्छत् प्रतीयते परैरभ्युपगम्यते वा यतः परैरन्त्यक्षणदर्शिनामेव प्रत्यक्षतः क्षणिकताया निश्चयः प्रकल्प्यते भ्रान्तिकारणसद्भावात् प्राक्। उक्तं च—

> "क्वचित् तदपरिज्ञानं सदृशापरसंभवात्।
> भ्रान्तेरपश्यत(?)भेदं मायागोलकभेदवत्"॥ [ ] इति।

१० नाप्यनुमानात् तन्निश्चयः अनुमानस्य लिङ्गबलादुपजायमानत्वात्। सामान्यलक्षणं च तस्य "पक्षधर्मत्वम् सपक्षे सत्त्वम् विपक्षे चाऽसत्त्वमेव निश्चितम्" [ ] इति परैर्गीयते। तत्र पक्षधर्मतानिश्चयः—"प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा" [ ] इति वचनात्—यद्यपि प्रमाणद्वयनिबन्धनः सिद्धस्तथापि सपक्षे सत्त्वं सत्त्वादेर्हेतोर्निश्चेतुमशक्यम् क्षणिकतया सर्वार्थानां साधयितुमभिलषितत्वात्(षितत्वात्) सपक्षस्यैवाभावात् साध्यस्य तन्मात्रानुबन्धः स्वभाव-

१५ हेतोर्विशेपलक्षणम् क्षणक्षयस्य चाऽनध्यक्षत्वात् तत्र सोऽपि नाध्यक्षतो निश्चितः। नाप्यनुमानात् तन्निश्चयः अनवस्थाप्रसङ्गात्। तत्कार्यताऽवगमः कार्यहेतोरपि विशेपलक्षणम्। न च क्षणिकस्तु(कवस्तु)कार्यतया किञ्चित् प्रसिद्धं वस्तु, प्रत्यक्षाऽनुपलम्भसाधनत्वात् तस्याः। न च क्षणिकस्य किञ्चित् कार्यं सम्भवति। तथाहि—न विनष्टात् कारणात् कार्यजन्म असतोऽजनकत्वात्। नाप्यविनष्टात् व्यापारालीढस्य द्वितीयक्षणावस्थितेर्जनकत्वे क्षणभङ्गभङ्गप्रसङ्गात् निर्व्यापारस्य च शश-

२० शृङ्गवदजनकत्वात् कार्य-कारणयोरेककालताप्रसक्तेः। अनुपलब्धेश्चाऽत्राधिकार एवाऽसम्भवी प्रतिषेधसाधकत्वात् तस्याः क्षणिकताविधिस्त्वत्र साध्यत्वेनाभिप्रेतः। न चापरो हेतुः सौगतैरभ्युपगम्यते। नापि प्रत्यक्षानुमानव्यतिरिक्तं प्रमाणान्तरं तदभिप्रायेण विद्यत इति कुतः क्षणिकतानिश्चयः?

प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षात्(क्षाद्) भावानां स्थैर्यप्रतिपत्तेः क्षणिकाभ्युपगमोऽसंगत एव। न च प्रत्यभिज्ञा न प्रमाणम्।

२५ > "तत्र(त्रा)पूर्वार्थविज्ञानं निश्चितं बाधवर्जितम्।
> अदुष्टकारणारब्धं प्रमाणं लोकसंमतम्"॥ [ ]

---

१ ननु इ-आ॰ हा॰ वि॰। २ कल्पते-वा॰ बा॰ विना। ३ -श्यतं भे-आ॰। ४ "पक्षधर्मत्वम् सपक्षे सत्त्वम् विपक्षे चासत्त्वम् इति"—न्यायप्र॰सू॰ पृ॰ १ पं॰ ९। "त्रैरूप्यं पुनर्लिङ्गस्य अनुमेये सत्त्वमेव ॥ ५ ॥ सपक्ष एव सत्त्वम् ॥ ६ ॥ असपक्षे चासत्त्वमेव निश्चितम् ॥ ७ ॥"—न्यायबि॰ द्विती॰प॰ पृ॰ १८-१९। ५-मभिलषिया-हा॰।-मभिलषिता-आ॰।-मभिलषितत्वा-वि॰ सं॰। ६ "स्वभावः स्वसत्तामात्रभाविनि साध्यधर्मे हेतुः" ॥ १६ ॥—न्यायबि॰ द्विती॰प॰ पृ॰ २३। ७-क्षणं क्षय-वा॰ बा॰ विना। ८-स्य वा न-वि॰ विना। ९-त्वात् सो-मा॰ मा॰। १०-क वस्तु प्रत्यक्षा-वा॰ बा॰ विना। ११ तस्य न च वा॰ बा॰ विना। १२-साधविस्त्वत्रा सा आ॰ हा॰ वि॰। १३ "त्रिरूपाणि च त्रीण्येव लिङ्गानि ॥ ११ ॥ अनुपलब्धिः स्वभाव-कार्ये चेति" ॥ १२ ॥ (न्यायबि॰ द्विती॰ प॰ पृ॰ २१) इति वचनात् बौद्धमते स्वभाव-कार्याऽनुपलब्धिरूपं हेतुत्रयमेव। १४ "द्विविधं सम्यग्ज्ञानम्" ॥ १ ॥ "प्रत्यक्षमनुमानं च" ॥ २ ॥ (न्यायबि॰ प्रथ॰ प॰ पृ॰ ५-६) इत्युक्तेः। १५-पत्तिः वा॰ बा॰ विना। १६-गमो नमो न च मां॰ मा॰।-गमो न च आ॰ हा॰ वि॰। अत्र '-गमोऽसंगत एव' इति सुपाठः।

१७ "न च प्रत्यभिज्ञा न प्रमाणम्।

"तत्रापूर्वार्थविज्ञानं निश्चितं बाधवर्जितम्। अदुष्टकारणारब्धं प्रमाणं लोकसम्मतम्" ॥

इति प्रमाणलक्षणस्य..."—हेतु॰ टी॰ ता॰ लि॰ पृ॰ ८७ अ॰ प॰ ४। मयोग॰ पृ॰ ३३ द्वि॰ पं॰ ९। १८ प्रमाणपरीक्षा पृ॰ ६१ पं॰ ५-८। तत्त्वार्थश्लोकवा॰ पृ॰ १०१ श्लो॰ ७३। प्रमेयक॰ पृ॰ १६ द्वि॰ पं॰ १२। "प्रमाण" इत्येतद्-प्रमेयक॰ पृ॰ १६ द्वि॰ टिप्प॰ पं॰ ११।

इति प्रमाणलक्षणयोगात् । प्रत्यक्षं च प्रत्यभिज्ञा अक्षेन्द्रियार्थसम्बन्धानुविधानतस्तदन्यप्रत्यक्षवत् सिद्धम् । न च स्मृतिपूर्वकत्वात् 'स एवायम्' इत्यनुसन्धाना(न)ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वमयुक्तमिति वाच्यम्, सत्संप्रयोगजत्वेन स्मरणपश्चाद्भाविनोऽप्यक्षप्रत्ययस्य लोके प्रत्यक्षत्वेन प्रसिद्धत्वात् । उक्तं च—

"न हि स्मरणतो यत् प्राक् तत् प्रत्यक्षमितीदृशम्" ॥
"वचनं राजकीयं वा लौकिकं नापि विद्यते ।
न चाऽपि स्मरणात् पश्चादिन्द्रियस्य प्रवर्तनम्" ॥ ५
"वार्यते केनचिन्नापि तत् तदानीं प्रदुष्यति ।
तेनेन्द्रियार्थसम्बन्धात् प्रागूर्ध्वं वापि यत् स्मृतेः" ॥
"विज्ञानं जायते सर्वं प्रत्यक्षमिति गम्यताम्" ।
[श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३४-२३५-२३६-२३७] १०

इति अनेकदेश-कालाऽवस्थासमन्वितं सामान्यम् द्रव्यादिकं च वस्तु अस्याः प्रमेयमित्यपूर्वप्रमेयसद्भावः । तदुक्तम्—

"गृहीतमपि गोत्वादि स्मृतिस्पृष्टं च यद्यपि ।
तथापि व्यतिरेकेण पूर्वबोधात् प्रतीयते" ॥
"देश-कालादिभेदेन तत्रास्त्यवसरो मितेः । १५
यः पूर्वमवगतो भागः(नांशः) स च नाम प्रतीयते" ॥
"इदानींतनमस्तित्वं नहि पूर्वधिया गतम्" ।
[श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३२-२३३-२३४] इति ।

नन्वेवं भिन्नाभिन्नवस्तुविषयोनिबन्धा(योऽनुसन्धा)नप्रत्ययः प्राप्तः इष्यत एवैतत् यतो न भिन्नत्वे न प्रत्यभिज्ञानम् अभिन्नत्वेऽपि न प्रमेयभेदः । प्रत्यभिज्ञाव्यपदेशोऽप्यस्य भेदाभेदालम्बनत्वमेव २० द्योतयति यतो नैककालैकप्रमेयगोचराणां भिन्नप्रमातृसम्बन्धिज्ञानानां 'प्रत्यभिज्ञा' इति व्यपदेशः, नापि सर्वथा भिन्नेषु घट-पटादिषु । न च कालस्यातीन्द्रियत्वाद् भिन्नकालैकप्रमेयप्रत्यभिज्ञाने च प्रमेयातिरेक इति वक्तव्यम्, यतो यद्यपि न कश्चित् तत्र प्रमेयातिरेकस्तथापि घटादयः कदाचिदुपलक्षिताकारा अन्यदाऽनुपलक्ष(क्ष्य)माणाः सदसत्तया सन्देहविषयतामापद्यन्ते तत्सत्त्वमावेदिका च प्रत्यभिज्ञा तेषां सन्देहविषयतामपाकुर्वाणा प्रमाणतामश्नुते यतो न विषयातिरेक एव प्रामा- २५ ण्यनिबन्धनं प्रत्ययानाम् किन्तु सन्देहाऽपाकरणमपि सन्दिग्धस्य, यदा त्वविरतोपलब्धिसन्तानाः पुनः पुनरपेतसन्देहसद्भावाः प्रत्यभिज्ञायन्ते भावास्तदा सन्देहविच्छेदाधिकफलाभावात् मा भूत् प्रत्यभिज्ञा प्रमाणम् । न च सविकल्पकमेवैकं प्रत्यभिज्ञाज्ञानम् अविकल्पकस्याऽपि एकत्वग्राहिणः प्रत्यभिज्ञाज्ञानस्य सद्भावात् । तथाहि—एकप्रमातृसम्बन्धिप्रथमप्रत्ययाऽभिन्नविषयाकारानुभवतोऽनुत्पन्नपार्थमाहाविकल्पकं ज्ञानमनुभूयत एव एकत्वग्राहि च ज्ञानं प्रत्यभिज्ञाज्ञानमुच्यते इति श्लोकवार्तिकव्याख्यापि ३०

---

१ "प्रत्यक्षं प्रत्यभिज्ञा अक्षान्वय-व्यतिरेकानुविधानात् तदन्यप्रत्यक्षवत् । न च स्मरणपूर्वकत्वात् तस्याः प्रत्यक्षत्वाभावः सत्संप्रयोगजत्वेन स्मरणपश्चाद्भावित्वेऽपि अस्याः प्रत्यक्षत्वाविरोधात्" इत्यादि-प्रमेयक० पृ० १७ द्वि० पं० ७ । २-सन्धानात् ज्ञा-वा० बा० विना । ३-कीयं वा लौकिकं ना विद्य-भां० मां० हा० ।-कीयं चालौकिकं या विद्य-वि० ।-कीयं चालौकिकं वा विविद्य-आ० ।-कीयं वा वैदिकं वाऽपि विद-श्लो० वा० । ४-गूर्ध्वं चा-वा० बा० । ५-चान् प्रताय-मां० मां० । ६ "व्यक्ति-कालादिभेदेन"-श्लो० वा० । ७-स्तरे वा० बा० विना । ८-वगतांशः वा० बा० । "यः पूर्वमवगतोंऽशोऽत्र स न नाम प्रतीयते"-श्लो० वा० । "ननु गृहीतमपि गृह्यते इति कथं प्रामाण्यम् ? अत आह—'यः' इति । तस्मिन्नंशे मा भूत् प्रामाण्यम् अगृहीतकालान्तरसम्बन्धापेक्षमेव तु प्रामाण्यम्" इति-श्लो० वा० पार्थ० व्या० पृ० ३०३ पं० १६ । ९-वयोऽनुबन्धन-वा० बा० । १०-तत न-वा० बा० । ११ यतो न भिन्नत्वेऽपि प्रमेयभेदः वा० बा० विना । १२-त्वाभिन्नकाले प्र-वा० बा० । १३-विषयातिरेकस्य(स्ये)व संदेहापाकरणस्यापि प्रामाण्यनिबन्धनत्वात्-" नयोप० पृ० १३ द्वि० पं० १३ । १४ एवा प्रा-हा० वि० । १५-नयोप० पृ० १४ प्र० पं० ११ । १६-त्यभिज्ञानं वा० बा० । १७-वा प्र-वा० बा० । १८-कासिध्य-आ० ।

शब्दमात्रास्वालोचनप्रत्ययावगतमेव स्थैर्यम् 'स एवायम्' इत्यनन्तरमनुसन्धानविकल्पोत्पत्तिदर्शनात् । तथाहि—अर्थसंसर्गानुसारिणोऽनुभवादुपजातान्नीलविकल्पात् तद्व्यापारानुसारिणो यथा नीलानुभवव्यवस्था सौगतैरभ्युपगता तथा 'पूर्वदृष्टं पश्यामि' इत्युल्लेखवतोऽनुसन्धाने(??) विकल्पात्स्वरूपशब्दाद्यवभासिनस्तत्त्वात् तदधिगतरूपत्वं किमिति न व्यवस्थाप्यते(??) 'पूर्वदृष्टमेव पश्यामि'
५ इत्युल्लेखवदुपजायमानोऽप्यनुसन्धानप्रत्ययो न प्रत्यभिज्ञाध्यक्षतामनुभवति क्षणिकाभिव्यक्तिषु शब्दमात्रास्वसंसर्गाभावतस्तदोपजायमानत्वात् चिरतरकालाभिव्यक्तीनां तु घटादिव्यक्तीनां अनुसन्धानविकल्पप्रत्ययाधिगतमेव स्थिरत्वम् इन्द्रियसंसर्गानुसरणतस्तस्य प्रादुर्भावात् । न चेन्द्रिय(या)विषयत्वात् स्थैर्यस्य तदनुसारिणोऽविकल्पस्य वाऽध्यक्षस्य न पौर्वापर्ये वृत्तिरिति वक्तुं युक्तम् नीलादावपि अस्य समानत्वात् । यथा चाक्षव्यापारानन्तरं नीलाद्यवभासस्याऽनुभूतेस्तस्य नीलादिविषय-
१० त्वम् तथा नयनव्यापारानन्तरमेकत्वरूपप्रतिभासानुभूतेस्तस्य तद्विषयत्वमपि व्यवस्थापनीयम् । न च पूर्वदर्शनानुसरणमन्तरेण दृश्यमानस्यार्थस्य पूर्वदृष्टताधिगतिर्न सम्भवति, पूर्वदर्शनस्मरण एव वर्तमानदर्शनमाहात्म्य 'पूर्वदृष्टमेतत्' इत्यध्यवसायात् । तच्च दर्शनं नेदानीन्तनदर्शि प्रतिभाति इति तदप्रतिभासने न तद्दृष्ट(तद्दृ)ष्टतां वर्तमानदर्शनमाहात्म्याध्यक्षमधिगन्तुं प्रभुरि(भु इ)ति कथं पौर्वापर्येऽध्यक्षप्रत्ययप्रवृत्तिरिति वक्तव्यम् यतः 'पूर्वदृष्टमेतद्' इत्युल्लेखमन्तरेणाऽपि पौर्वापर्ये व्यापा-
१५ रात् । तथाहि—मलयगिरिशिखराद्यनुसरणकालेऽप्यक्षजे दर्शने पुरो व्यवस्थितो नीलादिरर्थः स्फुरमेकत्वरूपतया प्रतिभाति तद्रूपतया प्रतिभासनमेवाऽक्षणिकैकत्वप्रतिभासनं कथं न निर्विकल्पकप्रत्यभिज्ञाध्यक्षसमवसेयं तत्त्वम् (??) । न च निर्विकल्पकाध्यक्षेणैवैकत्वग्रहणात् तद्वेदकमपि सविकल्पप्रत्यभिज्ञार्थस्य गृहीतग्राहितया व्यवहारमात्रदर्शनफलत्वात् नीलादिविकल्पवदप्रमाणम् (??) यतो गृहीतमगृहीतं वाऽर्थस्वरूपमवभासयन्ती प्रतिपत्तिः अबाधितरूपा अर्थाविसंवादित्वात् प्रमाणम्
२० अर्थाधिगतिफलनिबन्धनत्वे प्रमाणस्य लोके सिद्धत्वात् । ततो निर्विकल्पकस्य विकल्पकस्य वा स्थैर्यग्राहिणः प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययस्य प्रमाणतेति तद्बाधितत्वात् क्षणक्षयस्य नाभ्युपगमार्हता युक्तिसङ्गता ।

विनाशस्य सहेतुकत्वात् हेतुसंनिधेः प्रागभावात् क्षयिणामपि भावानां कियत्कालं यावत् स्थैर्यं अनुमानादप्यवसीयते । न च नाशहेतूनामभावः 'दण्डेन घटो भग्नः' 'अग्निना काष्ठं दग्धम्' इति नाशहेतूनामन्वय-व्यतिरेकाभ्यां लोके सुप्रसिद्धत्वात् । अन्वय-व्यतिरेकनिबन्धनो हि सर्वत्र
२५ हेतुफलभावः तमभ्युपगच्छन् 'हेतुभिरनापेक्ष्यत्वं(क्ष्यं)सा घटादयः' इति प्रत्येतुं न क्षमः । उक्तं च—

"अभिघाताग्निसंयोगनाशप्रत्ययसंनिधिम् ।
विना संसर्गितां याति न विनाशो घटादिभिः" ॥ [ ] इति ।

न चावस्तुत्वात् विनाशस्य कार्यत्वं न सङ्गतमिति वक्तव्यम्, यतः—

"भावान्तरविनिर्मुक्तो भावोऽत्रानुपलम्भवत् ।
३० अभावः संमतस्तस्य हेतोः किं न समुद्भवः ?" ॥ [ ]

१-नुसन्धानं वि-भां० आ० हा० वि० ।-नु वि-वा० बा० । २-न विकल्पात् पूर्वदृष्टमेव पश्यामी त्युल्लेखवानुपजायतो नात्यनु-वा० बा० । ३-त्था तदधिगतिक-हा० । ४ पृ० १८१ पं० १०-११ । ५-पर्यनु-हा० । ६-शस्य स्था-भां० मां० । ७-मनुत्पद्य-मां० । ८-द्रूपाव-बा० बा० । ९-नुसरण-[illegible] हा० बा० । १०-दृष्टतादृष्टां वर्तमानमाहात्म्य-वा० बा० ।-दृष्टता प-वि० । ११-[illegible]-भां० । १२-मव नु-वा० बा० ।-मनु नु-वि० । १३-भासमान-भां० बा० विना । १४-[illegible]-भां० । १५-[illegible] [illegible]-वि० ।-[illegible] प्र-वा० बा० । १६-तद्वेदं सवि-वा० बा० । १७-घटादा-भां० हा० वि० । १८-[illegible] [illegible] । १९-[illegible] वि-भां० विना । २०-लोके सुप्र-भां० बा० । २१-[illegible] [illegible]-भां० ।-[illegible]-भां० हा० मां० । २२-घातोऽग्निः संयोग [illegible] [illegible] । २३-संयोग-हा० । घातोऽग्निसंयोग-भां० । २३-संनिधि । हा० वि० । २४-[illegible] [illegible] [illegible] । २५-[illegible] [illegible] हेतु० टी० [illegible] पृ० ६० [illegible] पं० ६ । [illegible] । भावा [illegible] । पृ० १० पं० २० तथा टिप्प० ४ । [illegible] [illegible] पृ० ९२ [illegible] पं० ४ । [illegible] [illegible] पृ० ११३ [illegible] पं० ८ । [illegible] [illegible] पं० २१-२३ ।

रेन्धनपयसां समासादितविकाराणामवस्थान्तरमेव ध्वंसं मन्यन्ते येऽप्यनुपजातविकाराः प्रदीप-मुख्यादयो ध्वंसमालम्बन्ते तेऽप्यव्यक्तरूपतामात्मस्वभावतां च विकारमेव ध्वंसमासादयन्ति यथा गोपलम्भव्यावृत्तिरेवानुपलम्भः परेषां किन्तु विवक्षितोपलम्भादन्यः पर्युदासवृत्त्योपलम्भ एव तथा गार्थातिरेकेणाभावस्यासंवेद्यत्वात् भाव एव(वा)भावः। विशे(वैशे)षिकास्तु मन्यन्ते भवन्वनपेक्षि-भावान्तरसंसर्गः प्रच्युतिमात्रमेव प्रध्वंसाभावस्तथापि तत्र हेतुमत्ता न विरोधमनुभवति। ५ तथाहि—

"सं(सन्) बोधगोचरप्राप्तलब्धावे नोपलभ्यते।
मस्ता(नष्टवन्) भावः कथं तस्य न नाशः कार्यतामियात्" ? ॥ [ ] इति"।

कारणाधीनः पदार्थेषु प्रध्वंस इति तद्धेतुसन्निधानात् प्रागनासादितविनाशं(श)सहतयो भावा त्यनुमानादक्षणिकत्वसिद्धेर्न क्षणक्षयिता तेषामभ्युपगन्तुं युक्तेति। १०

[उत्तरपक्षः—बौद्धैः क्षणभङ्गस्य साधनम्]

अत्र प्रतिविधीयते यदुक्तम्-'नाध्यक्षतः क्षणिकतावगमः' इति, तत्र यथा अध्यक्षमेव क्षणविदा-यतां भावानामवगमयति तथा प्रतिपादितं प्राक् वेदान्तवादिमतनिराकरणं कुर्वद्भिः। यदपि नानुमानतोऽपि तत्सिद्धि(द्धिः) सामान्यविशेषलक्षणायोगात् लिङ्गस्य' इति, तदसङ्गतमेव, यतः सपक्षे सत्त्वम्' इत्यादिना स्वसाध्यप्रतिविम्ब(बन्ध) एव हेतो'र्निश्चितोऽभिधीयते न दर्शनादर्श-१५ नमात्रम् सपक्ष-विपक्षयोर्हेतुभावाभावयोः सर्वत्र निश्चयायोगात्—नहि पार्थिवत्वादौ दर्शनादर्शन-योः (??)सतोरप्यन्वयनिश्चय इति कृतकत्वादावपि स न स्यात्। तथाहि—बहुलमदर्श(?)त्वमि-
[illegible] । भावावगमो नियमनिबन्धनाभावात् में
[illegible] . प्रावयो(??) यतो न हेतुमन्तः सर्व एव
[illegible] पचिविक्ता वा हेतुविकलतयाऽदर्शनानुरूप-२०
व्यभिचारितयायोगात्। उक्तं च—

"गत्वा गत्वा च तान् देशान् यद्यर्थो नोपलभ्यते।
तदाऽन्यकारणाभावादसन्निरवगम्यते" ॥ [श्लो० वा० अर्था० श्लो० ३८] इति।

यत्र यत्र साधनधर्मस्तत्र तत्र सर्वत्र साध्यधर्मः यत्र च साध्याभावस्तत्र सर्वत्र साधनधर्माभाव-भावः इति अशेषपदार्थाक्षेपेण सपक्षेतरयोः हेतोः सदसत्त्वे व्यापनीय(?) स्त। कथिदेव तादात्म्य-२५ —तदुत्पत्तिलक्षणस्य च प्रतिबन्धस्यैकस्मिन्नपि प्रमाणतोऽधिगमेऽन्वय-व्यतिरेकयोर्व्याप्त्या निश्चयः सम्पद्यते नान्यथा तदात्मनस्तादात्म्याभावे नैरात्म्यप्रसङ्गात् कार्यस्य च स्वकारणाभिमते(न)भावा भावे भवतो निर्हेतुकत्वप्रसक्तेश्च। उक्तं च—

"स्वभावेऽप्यविनाभावो भावमात्रानुरोधिनि।
तदभावे स्वयं भावस्याभावः स्यादभेदतः" ॥ [ ] तथा, ३०

१-व्यतिरेकेण भा-वा० बा० विना। २-तथापि एव भा-बा० बा०। ३-आद्योऽयमनु मन्यन्ते ब० बा० विना। ४-हतु न भव-बा० बा०। ५-सद्बोध-भां० मां०। सद्बाध-भा० हा० वि०।—
"सन् बोधगोचरप्राप्तलब्धावे नोपलभ्यते। नश्यन् भावः कथं तस्य न नाशः कार्यतामियात्" ? ॥
तद्भावे "अभिभावे"। तस्य "आधारे."-हेतु० टी० ता० लि० पृ० ८४ प्र० पं० १-२। ६ कारणाधी [illegible] बा० विना। ७-ति कारणाधीन प-बा० बा० विना। ८-त्वसिद्धेर्न भा० हा० वि०। ९ पृ० ३१८ पं० ५। १०-ध्यक्षं क्षण-भा०। ११-वेदान्तवादिमतनिराकरणं च पृ० २८५-२९६। १२-पृ० ३१८ पं० १०। १३-क्षणयो-बा० बा० विना। १४-च यत स मां०।-य येन स-हा० वि०।-च येन स-भा०। च द: स-बा० बा०। १५ पृ० ३१८ पं० ११। १६-निश्चितो बा० बा०। १७ भाव स-भा० हा० वि०। १८-मुभो-भा०। १९-त्वादौ दर्शनयोः भा० हा० वि०। २० न था स भा०। न स भा०। २१-व्याप्त्यास-बा० बा०। २२-पर्वयोर्हे-वि०। २३ भावो प्रदीपु दाकयो य बा० बा०। २४ [illegible] बा० बा० विना। २५-सर्वो वि-भा० हा० वि०। २६ तुर्विक वि०। २७-[illegible] बा०।-तायै व्यापनीये—यथा-भां० मां० हा० वि०। २८ आवे भावतो बा० बा० हा० वि०। २९-[illegible] भेदतः हेतु० टी० ता० लि० पृ० ५७ प्र० पं० १-२। प्रमेयक० पृ० १०१ प्र० पं० ५।

"कार्यं धूमो हुतभुजः कार्यधर्मानुवृत्तितः ।
सम्भवस्त(स भवंस्त)दभावेऽपि हेतुमत्तां विलङ्घयेत्" ॥ [ ]

यत्र च कचित् धर्मिणि प्रागुप्र(प)दर्शितप्रतिबन्धप्रसाधकं प्रमाणं वृत्तमिदानीं विस्मृत तस्य तदुपन्यासेन तत्र स्मृतिरै(रा)धीयते अनुमेयार्थप्रसिद्धेस्तु अविनाभावविनिश्चये तत ५ सर्वमाणात् (??)प्रमाणाच्च पुनर्दृष्टान्तप्रतिबिम्बग्राहकं चे प्रामाण्यं यैद्वा स्वाभावापि(??)कचिद्धर्मि प्रवृत्तं तस्यानुमानोपन्यासकाल एव प्रदर्शनीयमिति न तस्य प्रतिबिम्बग्राहिप्रमाणानुस्मृत्यर्थं पक्ष कृतार्थव्यतिरेकवान् साधर्म्यादिदृष्टान्तः प्रदर्शनीयः अतस्तत्प्रतिबन्धप्रसाधकं साक्षादेव प्रमा प्रदर्शनीयम् । तत्र च प्रदर्शिते न किञ्चित् दृष्टान्तप्रदर्शनेन तस्य चरितार्थत्वात् प्रतिबिम्बप्रसिद्धौ प्रमाणतः साध्यधर्मे सत्येवाऽनुमेये "हेतोः सद्भाव इति कथं तस्य सामान्यलक्षणविरहः? तथाहि- १० सपक्षः साध्यधर्मवानै(नि)वार्यं उच्यते बाधकप्रमाणबलाच्च(??)विपक्षा अव्यापिनो हेतुः साध्यध धत्त्वे च साध्यधर्मिणि वर्तमानः कथं न सपक्षे वृत्तः यतो न सपक्षव्यवस्था वा सर्वमिच्छाव्यवस्थापितलक्षणं पक्षत्वमपाकरोति साधयितुमिष्ट इतीच्छा(??)व्यवस्थापितत्व(त्वं) पक्षलक्षणस्य सिद्धमे सपक्षत्वात्(त्वं तु) तस्य साध्यधर्मयोगात् वस्तुबलायातमिति न तत् तेन बाध्यते अन्यथा सपक्षव्यतिरिक्ते पक्षे वर्तमानो हेतुः विपक्षावृत्तेरनैकान्तिकः प्रसक्त इति सर्वानुमानोच्छेदः । अथ पक्षीकृत १५ परिहारेणैवाऽसपक्षस्यापि व्यवस्थापितत्वात् न पक्षे वृत्तोऽसपक्षवृत्तोऽसपक्षवृत्तित्वादनैकान्तिकः नन्वेवं पक्षपरिहारेण (?) साध्यभावाभावयोस्तैद्वान्वयं हेतुर्न साध्यधर्मिणीति कथं पक्षो हेतुर्मानरि साध्यधर्माध्यासितत्वात् । नहि 'यस्मादनुमेये साध्यं विनापि भावः तत्सद्भावादर्मी साध्यधर्मवान्' इत्यभिधातुं युक्तम्, न च साध्यधर्मवृत्तिव्यतिरेकस्वरूपौ सपक्ष-विपक्षौ विहाय प्रकारान्तरस्य सम्भवः यत्र पक्षत्वं स्यात् अन्योन्यव्यवच्छेदरूपतया सर्वस्य द्वैराश्यव्यवस्थितेः हेतोश्च पक्ष-सपक्षा २० दिभविभागापेक्षया गमकत्वे काल्पनिकत्वमनुमानेऽप्यङ्गीकृतं स्यात् न वस्तुबलप्रवृत्तत्वम् तस्मात् साध्यप्रतिबद्धभावतया हेतोर्गमकत्वे साध्यधर्मिण्यपि साध्यधर्मयुक्त धर्मे परमार्थतः सपक्षामन्ये पातो वर्तत इति कथं सामान्यलक्षणयोगी न स्यात् । उक्तं च—

"यद् कचिद् दृष्टान्तस्य (दृष्टं तत्र) यत्र प्रतिबिम्बः तद्धिः तस्य तद् गमकं तत्रेति वस्तुगतिः"
[ ] इति ।

१-प्रमेयक० पृ० १०१ प्र० पं० ८ । २ "त भवंस"-हेतु० टी० । संभवंस्त"-प्रमेयक० । ३-मता वि भा० वि० ।-मत्ताविलङ्घ-हा० ।-मतां वि-वा० बा० । ४ प्रागु प्र-भां० मां० । प्रागुपद्-आ० हा० वि० । ५-भवन-भां० मां० वि० । ६ माण तु वा० बा० वि० । ७-रधायतानु-वा० बा० । ८-स्तुभ्यविना-वा० बा० वि० । ९ च प्रमा वा० बा० वि० । १०-यद्वास्वाभावापि भा० । यद्वास्वाभावापि वा० बा० । यद्वा स्वाभाव्यापि हा० । ११ ति त भा० वि० । १२ नीयेतस्तय प्र भा० ।-नीयोऽस्तत्तं प्र-वा० बा० । १३-दर्शने त-वा० बा० । १४ हेतो स भा० वि० । हेतोऽस्न बा० । १५-व्यापिनो हे-वा० बा० । १६-रो [illegible] वा० बा० । १७-वृत्तौ य हा० वि० । १८ [illegible] प-भा० । १९-[illegible] तस्य हा० वि० । -[illegible] तस्य वा० बा० ।-[illegible] तस्य भां० मां० । २० सवांपो-वा० बा० वि० । २१-हारे-णे वा-वा० बा० ।-हारेण वा-हा० ।-हारेणैवा वि० । २२-[illegible] भा० ।-[illegible] हा० । २३-[illegible]-हा० वि० । २४-भावापि भा० हा० । भावोपि वि० ।-भावपि [illegible]-वा० बा० । २५-[illegible] भां० भा० वि० । २६-[illegible] वा० बा० । २७-[illegible] वा० बा० । २८-[illegible] वा० बा० । २९ [illegible]-वा० बा० । ३०-व धार-वा० बा० वि० । ३१ [illegible]-वा० बा० ।

[illegible]

[illegible]

ततो ऽवसितं क्षणिकत्व-सत्त्वयोस्तादात्म्यात् क्वचिद् वस्तुनि वर्तमाने सत्त्वे क्षणिकत्वयुक्त एव वर्तेते इति नास्य सामान्यलक्षणायोगः ।

सत्त्वं च भावानां न सत्तायोगलक्षणम् सामान्यादिष्वभावात् अव्याप्तेः शशशृङ्गादिष्वति(ष्वपि) भावादतिव्याप्तेश्च । न च शशशृङ्गादीनामसत्त्वात्र सत्तायोग इति वाच्यम्, इतरेतराश्रयत्वप्रसक्तेः । तथाहि—तेषामसत्त्वं सत्तायोगविरहात् तद्विरहश्चासत्त्वात् इति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम् । अथ अर्थक्रियासामर्थ्यविरहात्त तेषां सत्तायोगः, नन्वेवं यद् अर्थक्रियासामर्थ्ययुक्तं सत्तायोगस्तस्यैव इत्यर्थक्रियासामर्थ्यमेव सत्त्वमायातमिति व्यर्थः सत्तायोगः । अत एव सामान्यादीनामपि स्वरूपसत्त्वं अर्थक्रियासामर्थ्यात् सिद्धम् 'सत्'प्रत्ययस्य सर्वत्राविशेषात् । न च सामान्यादिषूपचरितः 'सत्'-प्रत्ययः अस्खलद्वृत्तित्वात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्येन(व्याणां) विरोधात् एकस्मिन् धर्मिण्ययोगात् "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्" [तत्त्वा० अ० ५ सू० २९] इत्येतदपि सत्त्वलक्षणमयुक्तम् । अथ 'कथंचिद् उत्पाद-व्ययौ कथंचिद् ध्रौव्यम्' इत्यभ्युपगमः, नैतत्, यतो यथोत्पाद-व्ययौ न तथा ध्रौव्यम् यथा च ध्रौव्यं न तथा उत्पाद-व्ययौ इति कथमेकं वस्तु यथोक्तलक्षणयुक्तं भवेत्? अतोऽर्थक्रियासामर्थ्यमेव सत्त्वमक्षणिकात् क्रम-यौगपद्यविरोधाद् व्यावर्तमानं क्षणिक एवाऽवतिष्ठत इति तदात्मतां कथमतिक्रामेत्? तत्र विशेषलक्षणस्याप्ययोगः । तस्मात् 'यत् सत् तत् क्षणिकमेव, सन्ति च द्वादशायतनानि' इति क्षणिकतायामिदमनुमानम् । अत्र च पञ्चस(सु) रूपादिविषयेष्वध्यक्षतः सत्त्वसिद्धिः मनो-धर्मायतनयोः स्वसंवेदनतः स्कन्धत्रयस्वभावत्व(?) धर्मायतनस्य संस्कारस्कन्धस्य च विप्रयुक्तस्याभावात् चक्षुरादिच(रादि)पञ्चस्वनुमिते(ते)स्तत्कार्यविज्ञानस्य कादाचित्कतया कारणान्तरसापेक्षत्वसिद्धेः देशादिविप्रकृष्टेषु च सर्वपदार्थेषु अभ्युपगमविषयेषु प्रसङ्गमुखेन सत्तायाः क्षणिकतासाधन(नम्) व्याप्यसद्भावे व्यापकस्य नियतसंनिधित्वा(त्वात्) व्यापकाभावे च व्याप्यस्याप्यभावात् चक्षुरादि-ध्वनीनाम् 'सैन(त्)'शब्दस्य च प्रवृत्तिनिमित्तभेदादर्थभेदतः परमार्थतो भेदाभावेऽपि न धर्मिण एव हेतुता । पारमार्थिकरूपस्यावाच्यत्वाद् विकल्पावभासिनमेवार्थं ध्वनयः प्रतिपादयन्ति 'क्षणिक'शब्दस्यापि क्ष(अक्ष)णिकसमारोपव्यवच्छेदविषयतया नै 'सत्'शब्दार्थता भिन्नार्थत्वेनेति तद्द्वारेणापि न प्रतिज्ञार्थैकदेशोतां(ता) । अन्वयादिनिश्चयस्तु प्रतिबन्धनिश्चायकप्रमाणनिबन्धनः, स च तादात्म्यलक्षणः प्रतिबन्धः स्वभावहेतोः प्रमाणनिबन्धनः, ननु क्षणिकत्वस्य प्रत्यक्षेणाऽनिश्चयात् कथं तत्तादात्म्यं स्वभावहेतोः प्रत्यक्षप्रमाणतः सिद्धम्? अथ 'हेतुका विनाशं प्रति अनपेक्षत्वात् तद्भावनियता यतो भावाः' इत्यनुमानसिद्धं सत्तादात्म्यम्, नैतत्, यतो निर्हेतुकत्वेऽपि विनाशस्य यदैव घटादयो नाशमनुभवन्तः प्रतीयन्ते तदैव तेषामसौ निर्हेतुकः स्यात् नान्यदेति कथं क्षणविनाशता भावानाम्? अथ एकक्षणभावित्वेन भावस्योत्पत्तेः प्रागपि विनाशसङ्गतिः । ननु यथैकक्षणस्थायित्वेनोत्पत्तिः स्वहेतुभ्यः तथाऽनेकक्षणस्थायित्वेनापि साऽविरुद्धा, दृश्यन्ते हि विचित्रशक्तयः सामग्र्यः । न च यदि क्वचित् कदाचित् विनाशोद्भवे(शो भवेत्) तदा तत्कालद्रव्यापेक्षत्वाद् भैव्यानपेक्षत्वहानिरिति वक्तव्यम्, विनाशहेत्वनपेक्षत्वेनानपेक्षत्वात् अन्यथा द्वितीयेऽपि क्षणे विनाशो न स्यात् तत्कालाद्यपेक्षत्वात् ।

१–ङ्गादिष्ववनिाभा–बा० बा० विना । २ सत्त्वं सत्त्वात्क्षणिकात् क–बा० बा० । ३–क्रामेत बा० बा० विना । ४ पृ० ११८ पं० १४ । ५–ष्वक्षतः बा० बा० । ६–भावत्व–बा० बा० । ७–नुमितेस्ता-त्का–भा० हा० वि० ।–नुमितास्तत्का–भां० मां० । ८ सच्छब्दस्य भा० हा० वि० । स ब्दस्य बा० बा० । ९–भिन्नभेदतः भां० मां० ।–भिन्नभेदाद्भेदतः बा० बा० । १० न सच्छब्दार्थतेति त–भां० मां० । ११–शतां व्यया–बा० बा० ।

१२ "यद्भावं प्रति यन्नैव हेत्वन्तरमपेक्षते । तद् तत्र नियतं ज्ञेयं स्वहेतुभ्यस्तथोदयात्" ॥
"निर्निबन्धा हि सामग्री स्वकार्योत्पादने यथा । विनाशं प्रति सर्वेऽपि निरपेक्षाश्च जन्मिनः" ॥
—तत्त्वसं० का० ३५४–३५५ पृ० ११२ ।

१३ भावानमनु–भा० हा० वि० । भवानमनु–भां० मां० । १४–नाशाद्भवेत् त–मां० ।–नाशाद्भवे त–मां० ।–नाशोद्भिवेत् त–वि० ।–नाशोद्भवे त–हा० । १५ अन्याद्यपेक्ष–भां० मां० हा० वि० । अस्याद्यपेक्ष–बा० बा० । १६–शहेतुनपेक्ष–भां० मां० ।–शहेतुत्वनपेक्ष–भा० हा० वि० ।

न च क्रम-यौगपद्याभ्यां सामर्थ्यलक्षणं सत्त्वं व्याप्तम् क्रमाऽक्रमनिवृत्तौ च नित्यात् सत्त्वं निवर्त्तमानं क्षणिकेष्वेवावतिष्ठत इति सत्त्वयुक्तस्य कृतकत्वस्य गमकत्वम्, यतः क्षणिकत्वे सति क्रमाऽक्रमप्रतिपत्तेरसंभव एव । तथाहि—येन ज्ञानक्षणेन तत्पूर्वकं वस्तु प्रतिपन्नं न तेनोत्तरकालभावि, येन चोत्तरकालसङ्गतं न तेन पूर्वकालालीढमिति कथं क्रमप्रतीतिः? योऽपि पूर्ववस्तु-
५प्र—ीत्य(प्रतीत्य)नन्तरमपरस्य ग्राहकः स क्रमग्राही भवेत् तथा च क्षणिकत्वमस्य स्यात् बौद्धस्य च काल एव नास्ति इति कथं तस्य क्रमग्रहः? भिन्नकालवस्त्वग्रहा(हि) कालाभावे चानेकवस्तुरूप एव क्रम—(मः) तथा, नित्यस्यापि क्रमकर्तृत्वं न विरुध्यते—यथा च नित्यस्य क्रमकर्तृत्वादनेकरूपत्वात्(त्वं) तथा क्षणिकस्यापि स्यात् । अथ क्षणवद् द्वितीये क्षणे नित्यस्याप्यभावो भवेत् कार्याभावात्, अयुक्तमेतत्, कालाभावाद् भवन्मतेन । भवतु वा ग्रहस्तथापि कथं क्रमाऽक्रमाभ्यां सत्त्वस्य
१०व्याप्तिः क्रम-यौगपद्यव्यतिरिक्तप्रकारान्तरेणाप्यर्थक्रियासंभवात् न च प्रकारान्तराभावनिश्चयो दृश्यानुपलम्भात् ततो विशिष्टदेशादावेवाभावनिश्चयप्रसक्तेः न सर्वत्र सर्वदा वा । नाप्यदृश्यानुपलम्भात् तदा(द)भावनिश्चयः तस्य संदेहहेतुत्वात् । तस्मान्नित्येषु क्रमाक्रम(मा)योगेऽपि सत्त्वानिवृत्तेः कथं सत्त्वस्य "क्षणिकभा(कस्वभा)वत्वं प्रमाणतः सिद्धं येनाऽन्वय-व्यतिरेकनिश्चयो भवेत्? यद्यपि क्रमाक्रमाभ्यां सत्त्वस्य व्याप्तिः प्रकारान्तराभावात् "सिद्धा च(त)थापि क्रमाक्रमायोगो न नित्येषु
१५प्रत्यक्षादिना सिद्धः नित्यानामतीन्द्रियत्वात् तदसिद्धौ न तेषु सत्त्वनिवृत्तिसिद्धिस्तदसिद्धौ च न सत्त्वस्य क्षणिकस्वभावत्वसिद्धिः । किञ्च, सत्त्वात् क्रम-यौगपद्यानुमानं स्यात् ताभ्यां तस्य व्याप्तत्वात् नेतु क्षणिकत्वानुमानम् तत्र क्रमकर्तृत्वासंभवादिति ।

अत्र केचित् प्रतिविदधति—"प्रत्यक्षसिद्ध(द्धे) एव क्रम-यौगपद्ये । तथाहि—सहभावो भावानां यौगपद्यम् क्रमस्तु पूर्वापरभावः, स च क्रमिणामभिन्न एकप्रतिभासैश्च तत्प्रतिभासैः । अथै-
२०कप्रतिभासानन्तरमपरस्य प्रतिभासः क्रमप्रतिभासः नत्वेकस्यैव अतिप्रसङ्गात्, एवमेतत् किन्तु यदैकप्रतिभासः न तदा परस्य, तदा तत्प्रतिभासे यौगपद्यप्रतिभासप्रसक्तेः । तस्मात् क्रमिणोः पूर्वाऽपराभ्यां ग्रहणे तदभिन्नक्रमोऽपि गृहीत एव, केवलं पूर्वानुभूतपदार्थाऽऽहितसंस्कारप्रबोधात् 'इदमस्मादनन्तरमुत्पन्नम्' इत्यादिविकल्पप्रादुर्भावे क्रमो गृहीत इति व्यवस्थाप्यते । क्रमे(मि)णोर्ग्रहेऽपि कथञ्चिदानुपूर्व्या "विकल्पानुत्पत्तौ क्रमग्रहव्यवस्थापनायोगात् अत एव क्रमिणामेकग्रहेऽपि न
२५क्रमग्रहो व्यवस्थाप्यते । अपि च, कथं कालाभ्युपगमवादिनोऽपि क्रमग्रहः सर्वकार्याणामेककालत्वात्? न च भिन्नकालकारणोपाधिक्रमात् कार्यक्रमो युक्तः, कालस्याऽभिन्नत्वेनाभ्युपगमात् त(म त)-द्योगाद् भावानां क्रमसङ्गाव इति । न च पूर्वापररूपत्वात् 'कालः क्रमवान्' इति वक्तव्यम्, यतस्तस्याऽपि पूर्वापरकालापेक्षः क्रमस्तदाऽनवस्थाप्रसक्तिः । अथ स्वरूपेण तस्य क्रमस्तावानति कार्याणामपि बहूनामप्यापातां क्रमो भवेत् अस्माकं तु लोकप्रतीत्या 'पूर्वाह्ण'आदिप्रत्ययविषयो महाभूत-
३०विशेषः कालोऽस्त्येव तद्भेदात् क्रमादिप्रतीतिर्युक्तैव । नापि नित्यस्य प्रकारान्तरेण कैर्तृत्वसङ्गतिः एक एवरेत्कार्यकरणानेक—(!) करणे ह्यन्यदा प्रकारान्तरेण करणेऽङ्गीक्रियमाणे वस्तुनः स्वभावभेदात् भेदप्रसक्तिरिति नैकत्वम् पुनः पुनः कार्यकरणे च क्रम एव न प्रकारान्तरसद्भावः । न च

१-ज्ञानेन तत्पूर्वं-भां० मां० ।-ज्ञानेन तत्पूर्वं-वा० बा० । २ "न चेतयन्नर्थं वस्तु क्रम-यौगपद्ये [illegible] न्नुपगमयतीति"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० १४४ पं० १५ । ३ कालो भा० [illegible] । ४ क्रम तथा [illegible] । ५ [illegible] वा० बा० । ६ भवतु वा वा० बा० । ७-प्रसक्तेः [illegible] वा [illegible] ।-प्रसक्तेः तत् सर्वत्र सर्वदा वा [illegible] । ८ यद्युक्तद-वा० बा० । ९ न [illegible] नित्येषु [illegible] । १० सत्त्वानिवृत्तिः भा० [illegible] । सत्त्वानिवृत्तेः मा० मां० । ११ क्षणि-कता-वा० बा० । १२ सिद्धो न भां० मां० [illegible] । सिद्धो हि यथापि क्रमाक्रमायो न नित्ये [illegible] । सिद्धो हि [illegible] क्रमायो न नित्ये-[illegible] । १३ सिद्धि च [illegible] । १४ न [illegible] । १५-[illegible] । १६-[illegible] । १७-[illegible] । १८ एवं [illegible] । १९-[illegible] । २० क्रमेणोग्र-भां० [illegible] । [illegible] । २१ विकल्पानुत्पत्तौ [illegible] । २२-[illegible] । २३-त्वात् कालात् [illegible] । २४-[illegible] । २५ कर्तृत्व-[illegible] । २६ कार्यो [illegible] ।

क्षणान्तरे(ऽपि) 'एकदा कार्यं करोति पुनः पुनश्च करोति' इत्येवं करणमभ्युपगन्तव्यम
तदनुपगमात्तेः सर्वदाऽकर्तृत्वात् । अथ 'एकदा कार्यं करोति' पुन(नः) पुनश्च न क
क्षणान्तरेण करणमभिमतं तथापि न यदा (पि यदा) न करोति न तदा (ति तद
त्वमेव प्रसक्तम् । तस्माद् घटादिः पदार्थोऽर्थक्रियाकारी क्रमाक्रमाभ्यां प्रत्यक्षसिद्धः '
इति क्षणादक्षणिकश्च प्रतीयत एव । तस्यैककार्यकरणं प्रति यत् सामर्थ्यं तत् स
न पश्चात् तत्कार्याभावात् सामर्थ्यं तु ततोऽव्यतिरिक्तमेव उत्तरकार्योत्पत्त्यपेक्षं
सामर्थ्यभेदेन पदार्थभेदात् कथं न क्षणिक एव क्रमाक्रमयोर्नियमः ? अतो यत्र
क्रमाक्रमप्रतीतावपि क्षणिकत्वप्रतीतिरेव, स एव क्षणिकः क्रमाक्रमयोर्नियमो नित्येऽव्यय
योगः ततो घटादौ यदेतन्नित्यत्वं प्रतीतिनिश्चयेनाव्यवसितं तत् सत्त्वविरुद्धमिति क्रम
ऽर्थसामर्थ्यक्रियानिरोधो नित्यस्य सिद्ध उच्यते । यथा च दृष्टेषु घटादिषु क्षणिकत्वव्याप्तं स
दृष्टेष्वप्यविशेषादिति सर्वोपसंहारेण व्याप्तिमवगत्य यथा यथा तेषु सत्त्वं निश्चीयते तथा
कत्वानुमानम् यत्र च सत्त्वानिश्चयस्तत्र सत्त्वादाकृत्या दानादिरागादिदिंश्यिव न क्षणिकत्वप्र
सर्वेषु साधनात् । न च तत्राप्यनुमानवैयर्थ्यं बाधकप्रमाणादेव क्षणिकत्वस्य(स्या)निश्चि
वाच्यम् प्राग् गृहीतव्याप्तिकस्य सत्त्वनिश्चयमात्रेणैव क्षणक्षयाधिगते र्बाधकप्रमाणवैयर्थ्यात्
क्षाद् व्यापकत्वेन क्षणिकत्वव्याप्तिं सत्त्वस्य सर्वत्रावगम्य तत्रैव सत्त्वात् क्षणिकत्वमनुमाप
व्याप्तिमादधात्येव प्रमाणा(णात्) क्षणक्षयस्य सर्वत्र निश्चितत्वादनुमानोत्थानमेव न स्यात्

[illegible]

कृतकत्वस्य क्षणिकत्वेन सह तादात्म्य(त्म्यं) प्रमाणनिश्चितमिति कथं नान्वयव्यतिरेकनिश्च
सत्त्वनिरोधविवेकैस्तस्याऽपि कृतकत्वादेः क्षणपरिणामे साध्ये नानैकान्तिकत्वम् यतस्तस्य
य एव स्वभावो द्वितीयेऽपि क्षणे स एव चेत् तदा प्रथमक्षणवद्भूत्वा भवनमेव प्रसक्तमि
त्वम् । अथ प्रथमक्षणे जन्मैव तस्य न स्थितिः द्वितीये स्थितिरेव न जन्म एवमपि क्षणि
निर्जन्म-जन्मिनोः स्थिति-स्थितिमतोश्चाभेदात् । न च द्वितीयेऽपि क्षणे जन्मव्यतिरेके
युक्ता । अथ तत्राऽपि जन्म तर्हि न तदा स्थितिर्द्वितीयादिक्षणभावित्वात् तस्याः यथ
क्षणेष्वपि सर्वदोत्पत्तिरेव न स्थितिरिति" क्षणक्षयित्वमेव उत्पत्तिश्च हेतुकृतेति तत्रैव
स्थितौ तस्मात् कृतकत्वस्याक्षणिकत्वविरुद्धत्वात्तानैकान्तिकत्वमिति सत्त्वानन्तर्भूतस्य
कत्वस्य व्याप्तिः प्रमाणनिश्चितेत्यत्राप्यन्वय-व्यतिरेकनिश्चयः ।

परे तु सत्त्वलक्षणस्य हेतोस्तादात्म्यस्वरूपः प्रतिबन्धो विपर्यये बाधकप्रमाणनिश्च
वर्णयन्ति । यत्र क्रम-यौगपद्याभ्यां न तस्य क्वचित् सामर्थ्यम् अस्ति चाऽक्षणिकेषु से वि
सामर्थ्यविरहलक्षणासत्त्वसिद्धौ ततो निवृत्तौ सत्त्वमर्थक्रियासामर्थ्यलक्षणं क्षणिकेष्वेवाऽव
सत्त्वस्य क्षणिकत्वस्वभावतासिद्धिः अनेन हि बाधकेन प्रमाणेन सत्त्वविरोधिमसत्त्व (सत
सत्त्वं) क्षणिकेष्वाकृष्यते । न च विरुद्धयोरेकत्र समवधानमिति ततो विरुद्धानैकान्ति
भावादूर्नीये । अथ कथमर्थक्रियासामर्थ्यनिवृत्ति(त्तिः) क्रम-यौगपद्यनिवृत्तिनिमित्ता तयो

१-क्षणान्तरे बा॰ बा॰ । २-श्च न करोति पुनः पुनः कारणमभ्यु-बा॰ बा॰ । ३
न क-बा॰ बा॰ हा॰ वि॰ ।-ति पुनः क-भो॰ मो॰ । ४-णमभि-बा॰ बा॰ विना । ५ तदापि
विना । ६-दा य-आ॰ हा॰ वि॰ ।-दा न करोति तदा वस्तु-बा॰ बा॰ । ७-दार्थमे त् क-भ
वि॰ ।-दार्थवन् क-आ॰ । ८-च तयो-बा॰ बा॰ । ९-दिंश्यिति क्ष-बा॰ बा॰ । १०-स
बा॰ । ११-क्षिप्रश्च-बा॰ बा॰ । १२-पक्षो भा बा॰ बा॰ । १३ व्यबाध-बा॰ बा॰ विना ।
वृ-बा॰ बा॰ । १४ श्चिरेतत् स्थितमतस् स-भो॰ मो॰ । श्चिरेतत् स्थितमत सत्त्व-आ॰
१६ यथा आ॰ हा॰ वि॰ । १७ कल्पता आ॰ । १८ कमथ बा॰ बा॰ । १९-ति क्षयित्व-
२०-कत्वं न स्थिते ते तस्मा-बा॰ बा॰ ।-कत्व स्थितौ भो॰ मो॰ । २१ सत्तेति बा॰
२२-सत्त्वो सिद्धो ततो बा॰ बा॰ । २३-सत्त्वं वि-आ॰ । २४-धमत्व-भो॰ मो॰ ।

[illegible] । न च [illegible]

[illegible], [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] दोषे [illegible]

[illegible] [illegible] (तत्र कः) किं [illegible]

[illegible] [illegible], [illegible]

[illegible] ! [illegible], यतो [illegible] कारणमेव [illegible]

[illegible] न स्यात्, अपि तु कारणं कार्यं [illegible] कार्यमात्रे [illegible]

[illegible] कार्यं । [illegible]

[illegible] हेतुत्वे(!) [illegible]

[illegible] किं [illegible]

[illegible] इति [illegible] तेषां [illegible]

[illegible] इति [illegible] । अथ तेषां [illegible]

[illegible] तेषां [illegible]

[illegible] (!) प्रत्येकं चेति [illegible]

[illegible] मानानां [illegible]

[illegible] । तथाहि–(!) [illegible]

[illegible] (!) न [illegible] तथैव [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] कदाचित् कारणात् न तथं [illegible]

[illegible] । अथ [illegible]

[illegible] अन्यथा [illegible]

[illegible] कार्यं [illegible]

[illegible] कदाचित् [illegible]

[illegible], [illegible] [illegible]

[illegible] प्रत्येकं [illegible]

[illegible]

[illegible] । "किञ्च, [illegible] इति [illegible]

[illegible] । तथाहि– [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

न चानेकोत्पन्नं तद् व्यनेकमारभ्यते यतः 'न कारणभेदे कार्यं भवति' इत्येतद्दसादिभिरभ्युपेयते येनानेकार्थसंपन्नेरनेकरूपत्वात् कार्यस्याप्यनेकत्वप्रसक्ति(क्तिः) किन्तु केचुचित् सकलपूर्वमेव किञ्चित् प्रादुर्भवति तद्भाव एव भावात् तत्कार्यमुच्यते इति नानेकत्वप्रसङ्गः। यदि त्वेभ्यभिन्नं रूपं जनकं स्यात् तदा तत्संरक्षितत्वापि भावात् तत्कार्यजननस्वभावत्वाच्च विशेषान्तरविकल्पा(ल्पा)दपि ततः कार्योदयप्रसक्तिः सन्यतानि(न्यत्रापि)चावपि तस्य विशेषाभावात् तदपरत्रापामपि वा न जनयेत्। ५ ततो यद्भावाभावानुविधायि यद् दृष्टं तत् कार्यम् न एव च विशेषान्तरं जनका इति कुतोऽनेकान्तः? अथ सामग्रीमाश्रित्य न कारणभेदात् कार्यभेदः स्यादित्युच्यते, तदप्यसत्, सामग्रीभेदे कार्यभेदस्येष्टत्वात् कार्यस्याप्यनेकसामग्रीजनितस्यानेकत्वात् तद्वैलक्षण्ये च तस्यापि विलक्षणत्वात्। तस्मात् न सत्तालक्षणस्य हेतोरनैकान्तिकता। नापि विशेषलक्षणविरहः प्रमाणनिश्चितस्य तन्मात्रानुबन्धिनः स्वभावहेतुलक्षणस्य सद्भावात्। १०

यदप्युक्तम् 'कार्यहेतुप्रतिपाद्योऽपि प्रतिक्षणं ध्वंसो न भवति क्षणिकत्वेऽक्षणिकेऽप्रवृत्तेः कार्यकारणभावस्य च प्रत्यक्षानुपलम्भसाधनत्वात्' इति, तदप्यसंगतम्, यतो यदि सर्वत्र प्रत्यक्षानुपल- [illegible] १५ [illegible] २० [illegible] दोषा यावता प्रसवव्यापारसमावेशलक्षणदोषो (?) द्वितीयसमयप्रतीक्षाव्यतिरेकेणापि स्वमहिम्नैव कार्यका(?)रणे प्रवर्तन्ते यथान्यथा द्वितीयक्षणभाविव्यापारजननेऽप्यपरव्यापारसमावेशव्यतिरेकेणाप्रवृत्तेस्तत्रापि व्यापारान्तरसमावेशकल्पनातोऽनवस्थाप्रसक्तेः अपरापरव्यापारजननोपक्षीणशक्तित्वाच्च कदाचनापि कार्यं कुर्युः। यथापरव्यापारनिरपेक्षा एवैकं व्यापारं निव(र्त)यन्ति तथा- २५ सति कार्येण किमपराद्धं येनाद्यव्यापारनिरपेक्षास्तदेवं न जनयन्ति? पारम्पर्यपरिश्रमोऽप्ये- (मोऽप्ये)षामेवं परिहृतो भवति। पदार्थव्यतिरेकेण चोपलक्ष्य स्वभावं व्यापारमभ्युपगच्छतः प्रत्यक्षविरोधश्च। न च व्यापारमन्तरेणार्थक्रिया नोपपत्तिमतीति वक्तव्यम् व्यापारेणैव व्यभि- [illegible] प्रवृत्तिः—अन्यथाऽत्राप्यनवस्था- [illegible] दार्थस्यापि तमन्तरेणैव सा भविष्य- ३० [illegible] भावा न व्यापारवन्तीत् ते च स्व-

---

१ नचा-वि०। २-सज्यन्ते हा० वि०। ३-दसादिरभ्यु-वा० बा०। ४ प्राप्तिं वा० बा०। प्राप्तं आ०। ५-चिन् सत्स्वपू-भा०।-चित् सन्स्वपू-वा० बा०। ६ यदि तु तेभ्यभि-आ०। यदि तु त्वेभि-हा० वि०। ७-दात्तस्वै-वा० बा०। ८-दये प्र-वा० बा० विना। ९ नयति वा० बा०। १० यद्भावाभावात्याविधा-आ०। यद्भावाभावान्वविधा-वि०। यद्भावानुविधा-वा० बा०। ११-मग्रीनाश्रित्य न आ० विना। १२-स न सा-वा० बा०। १३ तस्यानेकत्वात् त (न) सता(त्ता) लक्ष-वा० बा०। १४ तद्य सत्ता-वि०। १५-पणस्ट-वा० बा०। १६ पृ० ३१८ पं० १२। १७-क्षणं ध्वंसो वा० बा०। १८ तत्र भवमनु-वा० बा०। १९-मानानि तथा-वा० बा० विना। २० क्षणिध्वं-वा० बा०। २१-ध्वंसितो चक्षु-आ० हा० वि०।-ध्वंसितो चक्षु आ० मा०। २२-पादन् का वा० बा०। २३ पृ० ३१८ पं० १८। २४ यद्वा वि भा० मा०। २५ पृ० ३१८ पं० १८। २६ प्रतीक्षाव्यादयो दोषो यावता वा० बा०। प्रतीक्षाया स्यादयो दोषो यावता वि०। २७-महिमैव आ० विना। महिमैवं का-वा०। २८-रणा प्र-वा० बा०। २९-वर्तते हा०। ३० च ति ज-वा० बा०। ३१-श्रमाथेयामेवं आ० विना। ३२-या नोपपत्त्ति-(नोपपत्ति) वा० बा०। ३३-था व्यापारमन्तरेणापि आ० हा० वि० विना। ३४-धा वृत्त प-वा० बा०। ३५ स्यापि मन्त आ० विना। ३६ एवं आ० हा० वि०। ३७-द्यासे च वा० बा० विना

हेतुभ्य पंच तथाविधाः समुत्पन्नाः स्वसंनिधिमात्रेण(मात्रेणैव) कार्यं निय(वं)र्त्तयति (यन्तीति) कुतः क्षणभङ्गभङ्गप्रसङ्गः ? न चानष्टात् कारणादुपजायमाने कार्ये(?)कारणभावसम्भवात् तदभावश्चासतः

यस्मात् प्रथमे क्षणे कारणसत्ता द्वितीये तद्विनाशः ततः कार्योत्पत्तिः तदनन्तरं भाव इति। ततो यथैव कारणविनाशस्ततत्सत्तापूर्वको न नष्टाद् भवति तथा तत्समानकालं कार्यं कारे(रण)सत्तानन्तर्यान्नष्टादुपजायते। अथ कारणसत्तापूर्वकत्वाद् विनाशो हेतुमां(मान्) प्रसजति, न; नीरूपत्वात् तस्य तत्र हेतुव्यापाराभावात्। तथाहि—स एव हेतुर्व्यापारेण क्रियते यस्य कृतस्य किञ्चिद् रूपमु-
१० पलभ्येत विनाशस्तु ना(नी)रूप इति न तस्य किञ्चित् कर्तव्यम्। दृष्टान्ततत्वेन तु विनाशस्योपन्यासो व्यवधायककालासम्भवप्रदर्शनार्थः ततो द्वितीये क्षण(णे) कारणं नष्टं कार्यं चोपजाय(त)मिति कुतस्तयोः सहभावप्रसक्तिः ? तदुक्तम्—

"अनष्टाज्जायते कार्यं हेतुर्ध्वान्येऽपि तत्क्षणम्।
क्षणिकत्वात् स्वभावेन तेन नास्ति सहस्थितिः॥" [ ] इति।

१५ अत्र च अध्ययेना(अध्ययनाऽ)विद्धकर्णोद्द्योतकरादिभिर्यदुक्तम्—"यदि तुलान्तयोर्नामोन्ना-

१ एवं हा० वि०। २ समुत्पन्नः सुसंनिधिमात्रेव बा० बा०। ३-यती कुतः एव क्षण-वि०। ४ कार्ये स्वकारणेनैककालत्वमनन्तर्यनियमा यदि हि कार्यकारणयोः सहितोत्पत्तिर्भवेत् तदाऽऽद्यादयो यौगपद्यं च नास्ति सहभाविनोः कार्यकारणभावसंभवात् तदभावश्चाभावश्चासतः बा० बा०। ५-स्पष्ट सूप्रतः स्यानुप-बा० बा०। ६ कार्यकारणभावः कारणभावः कारणसत्ता-मां० मां०। ७-णसत्तानान्तरं बा० बा०। ८-त्पादे न-बा० बा०। ९-काल कार्यं बा० बा० मां० विना। १०-रसत्तान-आ०। -रसत्तान-हा०।-रसत्तात्तत्त कार्या नष्टा-बा० बा०। ११-नाशो धेतु-बा० बा०। १२-स्य सत्र बा० बा० विना। १३-त्र हेतुव्यापार भावा-आ०।-त्र हेतुर्व्यापाराभावा-मां० मां०। १४-तुर्या-बा० बा० विना। १५-पतुप-आ० वि० विना। १६-रूपं इ-बा० बा०। १७ नष्ट का-मां० मां०। १८-जायतति-बा० बा० विना। १९-नष्टा जाय-आ०।-नष्टा क्षाय-बा० बा०। २०-ध्वान्येति त-बा० बा०। २१-अ च अध्ययतेनाविरुद्ध-आ० हा० वि०।-अ च अध्ययनेनाविरुद्ध-मां० मां०। "उद्द्योतकराऽध्ययनप्रभृतिभि.।" "इति अध्ययनादिमतं निरस्तम्॥"—सम्मति० द्वि० का० प्र० गा० टीका। "इत्यध्ययनाऽविद्धकर्णोद्द्योतकरादीनाम्"-स्याद्वा० स्याद्वाद० पृ० १२२ प्र० पं० १।

"अत्र अविद्धकर्णोक्तानि विनाशस्य हेतुमत्त्वसाधने प्रमाणानि निर्दिदिक्षुराह—
ननु नैव विनाशोऽयं सत्ताकालेऽस्ति वस्तुनः। न पूर्वं न चिरात् पश्चाद् वस्तुनोऽनन्तरं त्वसौ॥
एवं च हेतुमानेव युक्तो नियतकालतः। कादाचित्कत्वयोगो हि निरपेक्षे निराकृतः॥
वस्त्वनन्तरभावाच्च हेतुमानेव युज्यते। अभूत्वा भावतश्चापि यथैवान्यक्षणो मतः"॥
तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० १३६ पं० ७ तथा तत्त्वसं० का० ३६७-३६९ पृ० ११९।

"उद्द्योतकरोक्तामपि युक्तिमाह—
अहेतुकत्वात् क्रियायमसन् वन्ध्यासुतादिवत्। अथवाऽऽकाशवन्नित्यो न प्रकारान्तरं यतः॥
अभावे सर्वभावानां नित्यत्वं स्यादनाशतः। सर्वसंस्कारनाशित्वप्रलयश्चाऽनिमित्तकः॥
नित्यत्वेऽपि पदार्थानां विनाशेनाऽविरोधतः। अजातस्य च नाशोक्तिर्नैव युक्त्यनुपातिनी"॥
तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० १३६ पं० २० तथा तत्त्वसं० का० ३७०-३७२ पृ० ११९-१२०।

२१ तुलान्तयो-आ० विना। "इति सिद्धः कार्यकारणभावः क्षणिकेष्वपि नाशोत्पादयोरेककालत्वात् तुलान्तयो[illegible] चेत् अथ मन्यसे कार्यकारणभावः क्षणिकेष्वपि संभवतीति कारणविनाशसमकालं कार्यं[illegible] यदा कारणं विनश्यति तदा कार्यमुत्पद्यते विनश्यच्च कारणमस्ति कारणविनाशेन अभिन्नकालः कार्योत्पादः यथा तुलान्तयो[illegible]"—न्यायवा० पृ० ४०१ पं० १६-२१।

"न हि तर्ह्येव कार्यकारणभावः प्रतिबन्ध असमगमत्वात्
[illegible] समं यद्वद् नामोन्नामौ तुलान्तयोः।"—अष्टसह० पृ० १०० पं० ११।

"पूर्वेणो[illegible] तुलान्तयोर्नामोन्नामवत् इति चेत् तर्हि क्षणयोः [illegible]"—सूत्रकृ० टी० [illegible]।

"[illegible] सम [illegible] नामोन्नामौ तुलान्तयो"—प्रमेयक० पृ० १०९ प्र० पं० १४।

भवात् कार्योत्पत्तिकाल एव कारणविनाशस्तदा कार्यकारणभावो न भवेत् यतः [" कारणस्य विनाशः कार्योत्पाद एव नाशः"] इति वचनात् एवं च कारणेन सह कार्यमुत्पन्नमिति प्राप्तम्। यदि च स एव नाशः प्रथमेऽपि क्षणे न सत्ता भावस्य स्यात् विनाशात् तद्वेव लोके च भावनिवृत्तिर्विनाशः प्रतीतः न भाव एव, सर्वकालं च विनाशसम्भवात् सर्वदा भावस्य सत्त्वं स्यात्। अथ कारणोत्पादात् कारणवि(?)नाशो भिन्नस्तदा कृतकत्वरभावत्वमनित्यत्वस्य न भवे(वेत्) ५ व्यतिरिक्ते च नाशे समुत्पन्ने न भावस्य निवृत्तिरिति कथं क्षणिकत्वम्" [ ] इति, तदसत्यम्। यतो द्विविधो विनाशः—सांख्यपदार्थः तात्त्विकश्च। भावनिवृत्तिरूपः प्रथमः, भावरूपश्च द्वितीयः। ततो(?)त्पन्नो भावः कार्यं करोति, कार्यकाले च कारणनिवृत्तिरूपो विनाशो लोकप्रतीत एव, नायं भावस्वभावं इष्यते, नापि कारणोत्पादादभिन्नो वा नीरूपत्वात्। भेदाभेदप्रतिषेध एव केवलस्य क्रियते। उक्तं च— १०

"भावे ह्येव(व) विकल्पः स्याद्विधेय(र्वे)स्तु(स्त्व)नुरोध(धतः)।" [ ] इति न व्यतिरिक्ते नाशे जाते क्षणरूपस्य भावस्यानिवृत्तिरित्यशास्तम्। यतश्च द्वितीयक्षणोत्पत्तिकाल एव प्रथमक्षणनिवृत्तिः तेनैकक्षणस्थायी भावो 'विनाश'शब्देनोच्यते, अयं च भावरूपत्वात् साधनस्वभाव एव विनाशः कार्योत्पत्तिकाले चैं नियर्तेत इति कार्येभिन्नकालभावी। न च सर्वकालमस्य सद्भावः भावस्यासत्त्वात्, यद् वा विनश्वरोऽयं भावः 'विनाशोऽस्य' इति शब्दाभ्यां धर्मि-ध- १५ र्मवाचकाभ्यां क्षविनाशित्वावृत्तेरेकस्य भावस्य भेदान्तरप्रतिक्षेपाभ्यामभिधानाद् भाव एव नाश उच्यत इति। यत् पुनरिदमभिहितम् 'विधिरूपेण क्षणिकताऽत्र साधयितुं प्रस्तुतेति प्रतिषेधसाधिकाया अनुपलब्धेरिहानधिकार इति, तत् लिङ्गव्यापारविषयानभिज्ञा(ज्ञ)ताख्यापनम्। यतो न लिङ्गं विधिमुखेन किञ्चित् प्रवर्तते सर्वस्य समारोपव्यवच्छेदसाधकत्वेनैव व्यापारादिति कार्य-स्वभावहेत्वोरपि नानुपलब्धिरूपताव्यतिक्रमः तेन परमार्थतः अनुपलब्धिरेवैको हेतुरिति २० सुगतसुताःसुगतः (मः)।

---

१ एव एव नाशः वा॰ वा॰। एव च नाशः वि॰। २ प्राप्त यदि च भास एव नाशः भा॰ विना। ३-वृत्तिर्विना-आ॰ विना। ४ प्रतीतो भाव-वा॰ वा॰ विना। ५-स्य सत्त्वं भां॰ मां॰।-स्य सत्त्व स्या-आ॰ दा॰ वि॰।

६ "तदत्र कतमं नाशं परे पर्यनुयुञ्जते। किं क्षणस्थितिधर्माणं भावमेव तथोदितम्॥
अथ भावस्वरूपस्य निवृत्तिं ध्वंससंज्ञिताम्। पूर्वपर्यु(र्य)नुयोगे हि नैव किञ्चिद् विरुध्यते॥

द्विविधो हि विनाशो विधेः प्रतिषेधलक्षण. ××××× यदा भावस्वभावप्रच्युतिलक्षणप्रध्वंसापरनामा विनशनं विनाश इति"—तत्त्वसं॰ का॰ ३७३-३७४ तथा तत्त्वसं॰ पञ्जि॰ पृ॰ ११७ पं॰ २२।

"अयं भाव-द्विविधो ह्यस्माकं विनाशः सांव्यवहार्यः तात्त्विकश्च। आद्यो भावनिवृत्तिरूपः। द्वितीयश्च भावरूपः। तत्र कार्यकाले कारणनिवृत्तिरूपे आद्यमेव नाशमवलम्बते। वस्तुव्यवस्थाधवस्तुत्वाद एव। एतेन 'कार्योत्पत्तिकाल एव कारणविनाशाभ्युपगमे कारणोत्पादसत्त्वात् तस्य सहभावेन कार्यकारणभावव्यवस्थोत्सीदेत्, कारणोत्पादात् कारणविनाशस्य भिन्नत्वाभ्युपगमे च कृतकत्वलभावत्वमनित्यत्वस्य न भवेत्, व्यतिरिक्ते च नाशे समुत्पन्ने न भावस्य निवृत्तिः इति कथं क्षणिकत्वम्"—शास्त्रवा॰ स्याद्वाद॰ पृ॰ १२१ द्वि॰ पं॰ ९-पृ॰ १२२ प्र॰ पं॰ १। ७ तात्त्विकश्च-वा॰ वा॰ विना। ८-श्च भा-वा॰ वा॰ विना। ९ भावः भावरूप इति ततोत्पन्नो भावः वा॰ वा॰। १०-वस्वभाव इ-वा॰ वा॰। ११ भावः हे-वा॰ वा॰। श्लोकोऽयं धर्मकीर्तिसूरेर्ज्ञायते। तथाहि—

"एतेनैतत् प्रतिक्षिप्तं यदुक्तं न्यायमानिना—न तत्र किञ्चिद् भवति न भवत्येव केवलम्" ॥ १२ ॥
"भावे ह्येव विकल्पः स्याद् विधेर्वस्त्वनुरोधतः। न भावो भवतीत्युक्तमभावो भवतीत्यपि" ॥ १३ ॥
—शास्त्रवा॰ स्त॰ ४ पृ॰ १२७।

"न्यायमानिना तर्कसंक्लिष्टेन धर्मकीर्तिना"—शास्त्रवा॰स्याद्वाद॰ पृ॰ १२७ द्वि॰ पं॰ ५।

"न तत्र किञ्चिद् भवति न भवत्येव केवलम्"—आप्तमीमां॰ प॰ १ श्लो॰ ५१ अष्टश॰ पृ॰ २८ पं॰ १०। अष्टस॰ पृ॰ २०० पं॰ १२। १२ आयतेऽस्य-वा॰ वा॰। १३ द्वितीयक्षणोत्पत्तिलेनैकक्षणनिवृत्तिऽभावोविनाशशब्देनोच्येत वा॰ वा॰। १४ च निवर्तेत-वा॰ वा॰। १५ कार्ये भि-वा॰ वा॰। १६ भाव यि-आ॰। १७-तस्य चैकस्य वा॰ वा॰ विना। १८ पृ॰ ११८ पं॰ १०। १९ न लिङ्गं विधिमुखेन भां॰ मां॰ आ॰। न लिङ्ग वि॰मुख्येन वा॰ वा॰।

यदप्यन्यधायि–'प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षावसितं भावानामक्षणिकत्वमिति क्षणध्वंसितापरिकल्पना [illegible] युक्तम्' इति, तदप्यसङ्गतम्, तस्याः प्रामाण्यासिद्धेः। तथाहि–प्रमाणस्येदं लक्षणं परेणाभ्यधायि 'तत्राऽपूर्वार्थविज्ञानम्' इत्यादि। न च बाधकवर्जितत्वं अस्याः संभवति प्राक्प्रतिपादितानुमान[illegible] बाध्यत्वात्। अथ तया बाधितत्वादनुमानस्य कथं बाधकत्वम्? असदेतत्, अनिश्चितप्रामाण्या[illegible]
५ऽस्या बाधकत्वानुपपत्तेः। न चेतरेतराश्रयत्वं दोषः यतो नानुमानस्य प्रामाण्यं प्रत्यभिज्ञाऽप्रामाण्य[illegible] श्रितम् अपि तु स्वसाध्यप्रतिबन्धात्, स च (बन्धात्, स च) विपर्यये बाधकप्रमाणबलान्निश्चित [illegible] कथमितरेतराश्रयत्वलक्षणो दोषः? न चानुमानैर्विरोधमनुभवन्त्यपि प्रत्यभिज्ञा प्रमाणम् अन्यथा [illegible] आकारसाम्यदेवन्य(म्यादेकत्व)मधिगच्छन्ती नीलेतरकुसुमसर्पादिवस्तुनः प्रमाणं भवेत् [illegible] नाप्यपि कुसुमादिकार्यदर्शनमनुमीयमानो भेद(?)प्रत्यक्षप्रतीततामनुभवति। न चानुमानस्य
१०बाधकत्वं न इतरत्र प्रमाणावगतसाध्यप्रतिबिम्ब(बन्ध)पक्षधर्मतात्मकतद्रूपसंसिनोऽनुमानस्य [illegible] प्रत्यभिज्ञा अन्यद्वा यत्प्र(तत्प्र)माणान्तरं बाधकं संभवति विरोधात्। तथाहि–स्वसाध्यप्रतिबन्धे [illegible] सति हेतुः स्वसाध्ये सत्येव तस्मिन् धर्मिणि भवति, बाधा तु तदभावनिमित्तैव कथं न विरोधः [illegible] प्रत्यक्षादिकं च बाधकं तत्र धर्मिणि साध्याभावमवबोधयति स्वसाध्याविनाभूतश्च हेतुस्तत्र प्रवर्त[illegible] मानः स्वसाध्यसद्भावमिति भावानामसौ[illegible]स्थ्यं भवेत्। अनुमानाप्रामाण्यप्रसङ्गश्चैवं स्यात् [illegible]
१५[illegible] बाधकसद्भावो दृष्ट इति। अदृष्टबाधकेऽपि तदाशङ्का न निवर्तते(तेऽ)विशेषात्। नहि [illegible] प्रतियोगिनः प्राणिनरेण कश्चिद् विशेषो लक्ष्यते यतो न संभवद्बाधकानामपि सर्वदा तदुपलब्धि[illegible] [illegible]नां तु कदाचिद् बाधकोपलब्धिर्भविष्यतीति' तन्निश्चयो(?)बाधकाभावाऽभावयोरि[illegible] [illegible]त्वादनुमानं न किञ्चिदपि प्रमाणं स्यात्। कुतश्चाप्यवसानमप्रमाणम्? अनुमान[illegible] यदि प्रत्यक्षाऽनुमानयोः प्रमाणरूपतायां विशेषः–प्रत्यक्षेऽप्यर्थाऽव्यभिचार(रः) प्रामाण्यनिबन्धनम् [illegible]
२०न [illegible]म'[!! अन्यतो भवतोऽभवतो वा भवतः सैवा व्यभिचारनियमाभावात् स वा(बा)[illegible] [illegible] [!!]व्यपेतं तथाऽनुमानेऽपि तुल्यः। यदि प्रत्यक्षबाधान(न)न्तरेण प्रत्यभिज्ञा[illegible] [illegible] [illegible] तदा यत्रऽयं किमिति शालिबीजमेव शाल्यङ्कुरजनकं (कं न) कोद्रव[illegible] [illegible]? [illegible] तदङ्कुरस्याप्यगच्छाऽप्यवशेषण तमेव तज्ज्ञानकल्पप्रयत्नापरायाम कोद्रव[illegible] [illegible] कोद्रवविज्ञाने[!! शाल्यङ्कुरमितिकतद्रूपप्रतिभासवतोऽप्यवशेषण तदाजनक[illegible]
२५[illegible]। [illegible]रेकानुविधायि [illegible]कार्यमवगच्छन् अध्यक्षं कथमिव न[illegible] [illegible] तदानीं तज्जननस्वभावतां च किमिति न प्रत्येति [illegible] (क्षण)[illegible]प्रत्यभिज्ञानं यदा 'स एवायम्' इति प्रत्येति तदा कि[illegible] [illegible]? यथा 'प्रथम्' इत्युल्लिख[illegible] [illegible] [illegible] 'स एव' इत्युल्लिखद [illegible] [illegible]
३०[illegible] [illegible] तथा, 'स [illegible]' [illegible] [illegible] व्यवस्थापितः स यदि न तत्रैव यो प्रत्य[illegible] [illegible] पुनः अभावं [illegible] विरुद्धधर्माविघ्नो [illegible] [illegible] 'बाधान[illegible](क्षिन)त्वम्' [illegible]

---

१ पृ० ११८ पं० २१। २ [illegible] भा० वा० शि०। पृ० ११८ पं० २५। ३-[illegible] [illegible] [illegible] ५ प्रतिबन्धात् [illegible] [illegible] ८-प्रमाणमि [illegible] ९-[illegible] १० [illegible] ११-प्रमाणं [illegible] १२-[illegible] १३ [illegible] १४ [illegible] १५-[illegible] १६ [illegible] १७-[illegible] १८-[illegible] १९ [illegible] २० [illegible] २१ [illegible] २२ [illegible] २३ [illegible] २४ [illegible] २५ [illegible] २६ [illegible] २७ [illegible] ३१ [illegible]

भ्यागृहतम् [!]यथा शुक्तिकायां रजतज्ञानप्रत्ययो दुष्टकारणा(ण)प्रभवत्वेन(नाऽ)प्रमाणं तथा प्रतिक्षणविशरारुषु शब्दप्रदीपादिषु(?)प्रत्यभिज्ञानं दु(दु)ष्टकारणारब्धत्वादेव(वाऽ)प्रमाणम् । न च प्रत्यभिज्ञानमेव स्वविषयस्य सत्यं व्यवस्थापय(यत्)दुष्टकारणारब्ध(त्व)मात्मनो निश्चाय(निश्चाय)यति, इतरेतराश्रयत्वप्रसङ्गात्—अदुष्टकारणारब्धत्वात् स्वविषयव्यवस्थापकत्वम् ततश्चादुष्टकारणारब्धत्वमिति इतथा । लूनपुनर्जातकेशादिषु चैकत्वाभावेऽप्यस्य दर्शनात् कुतः स्वविषयव्यवस्थापकत्वम् ? न चा(च) केशादिप्रत्यभिज्ञानस्यान्यथाभावे दोषः अन्यत्रा(त्रा)पि विपर्यय(?)प्रसङ्गेन व्यभिचारदोषाऽनिवृत्तेः । न च यो जनिता प्रवर्तते 'नेतदेवम्' इति स मिथ्याप्रत्ययः यत्रोपलब्धिप्रत्यभिज्ञानं तु देशान्तरादौ न विपर्येतीत्युचितम् अनुमानस्यापि विपर्ययव्यवस्थापकत्वप्रतिपादितत्वात् । तत्र अदुष्टकारणारब्धत्वमत्र संभवति । अर्थक्रियार्थिभिर्दि(र्हि)र्दैवैः प्रमाणमन्वेष्यते न स्वप्ननिश्चयैरर्थक्रियासाधनविषयं प्रमाणमित्यभ्युपगन्तव्यम् । न च प्रत्यभिज्ञानविषयेण स्थैर्यमनुभवताऽर्थक्रिया काचित् साध्यत इति तैमिरिकज्ञानवत्पूर्वमर्थक्रिया(?) प्रत्यक्षे सामान्याद्यभिधानेऽपि न प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणाभावात् प्रत्यभिज्ञाप्रमाणा(?)मात्मसंबन्धं सता निश्चेतार्थेन प्रत्यभिज्ञानजनकाभिमतेनेन्द्रियाणां संप्रयोगासिद्धेस्तद्रूपव्यवस्थापकप्रमाणाभावा(वात्) । भावे वा तत एव तन्निर्देशः व्यर्था प्रत्यभिज्ञा । न च सादृश्यसाधकेऽप्येतत् समानम् । कार्यक्रियाज्ञानात् तेषां तथाभावसिद्धेः । न च यद्दृष्टौ भावेऽप्यर्थक्रियाज्ञानस्य भावात् तत्साध्यसिद्धिः, तदन्या(न्य)योर्द(र्त)थाविधत्वात् तद्व्यतिरेकेणापरस्यार्थव्यवस्थापकस्याभावात् । न चैकत्वे संवादकं प्रमाणं किञ्चित् सिद्धमिति न प्रत्यक्षतोऽपि प्रत्यभिज्ञानेनैवेति नातः स्थैर्याधिगतिः ।

. . . . .विषयस्य धर्मं सूचयति, तदा-
. . . . प्रत्यभिज्ञानं सैवालम्बनतया-
. . . . सर्वेषामुदयप्रसक्तिः सन्नि-

हितकारणत्वात् आद्यज्ञानवत्, अनुदये वा तस्य तानि प्रत्येकजनकत्वमेव । नहि यदा यद् यत्र जनयति तदा तत्र जननस्वभावम्, पश्चादपि तत् तत्स्वभावमेव नैव तदापि जनयेत् अथान्येन तदा स्वभावे(व)भेदात् कथं न प्रत्यभिज्ञाविषयस्य भेदा(दः) स्वभावभेदनिबन्धनत्वादर्थभेदस्य ? अपि च, सहकारिसहकारिसन्निधाने येन स्वभावेन तदालम्बनं प्रत्यभिज्ञानं जनयति स्व(स) स्वभावस्तस्य तदुपोत्तर(योत्त)प्रागभ्या(ण्या)सीत् ? यदि तदैव कथं पूर्वस्मात्भेदस्तस्य प्रागसतः तदैव सैषाभ्युपगमात् ? अथ अवस्थानां भेदः अवस्थातुरभेदः, न; अवस्थातुरपि तदवस्थाभावितो जनकाजनकस्वरूपतया भेदस्य न्या(न्या)यप्राप्तत्वात् । न चावस्थाया(वान् अ)वस्थाव्यतिरिक्तोऽस्ति उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य तस्यानुपलम्भेनासत्त्वात्, अनुपलब्धस्वभावत्वे च तस्य न प्रत्यभिज्ञाविषयत्वमिति

१–कारणप्रभवत्व–बा॰ बा॰ । २–प्रसक्तेरदुष्टकारणारब्धत्वमात्मनो निश्चयतीतरेतराश्रयप्रसक्तेरदुष्टकारणारब्धत्वात् स्वविषयव्यवस्थापकत्वम् बा॰ बा॰ । ३–पर्क सत–बा॰ बा॰ । ४–रब्धमिति हा॰ वि॰ । ५ न चा के–भा॰ मा॰ विना । ६–न्यथो पि आ॰ वि॰ । ७–दादूताऽ–आ॰ विना । ८ च या ज–भा॰ मा॰ । य जो ज–बा॰ बा॰ । ९–स्तते नै–भा॰ मा॰ । १०–भा तु दे–बा॰ बा॰ विना । ११–तत्यात्यत्र बा॰ ।–तत्यान्यत्र हा॰ वि॰ । १२–र्याथी तर्दि बा॰ बा॰ । १३ सर्वे प्र–आ॰ । १४–याक्रिया सा–बा॰ बा॰ । १५–यमित्युप–बा॰ बा॰ । १६–यपण बा॰ बा॰ । १७ न प्रमाणलक्षणा–भा॰ मा॰ । १८–ज्ञायमाणमानप्रत्यक्षं भा॰ मा॰ ।–ज्ञायमाणमानास्यर्थप्रत्यक्षं बा॰ बा॰ । १९–स्पर्शं सता भा॰ । २०–भावे वा भा॰ मा॰ । २१–यादृश्यस्ति–भा॰ मा॰ ।–याद्र्श्यपत्ति–हा॰ वि॰ ।–याप्यस्ति–बा॰ बा॰ । २२ न प्रत्यभिज्ञा–भा॰ मा॰ । २३–नस्येति भात स्थै–बा॰ बा॰ विना । २४–यति बा॰ बा॰ विना । २५–स्यायासतास्यपि बा॰ बा॰ २६ तथालम्ब–बा॰ बा॰ । २७–दार्थां ज–आ॰ विना । २८–भावीति त–मा॰ । २९–द्वायतनज्ञान–बा॰ बा॰ विना । ३०–दयो वा बा॰ बा॰ विना 'अनुदये वा तस्य न प्रत्यभिज्ञानजनकत्वमेव' इति पाठः स्यात् । ३१–स्ययः ज–आ॰ । ३२ यदार्थं [illegible] [illegible] विना । ३३ जनयति स्वभावं पश्चा–बा॰ बा॰ । ३४ य प– बा॰ बा॰ मा॰ विना । ३५–[illegible] स्वभेदात् बा॰ बा॰ । ३७–स्व भेदा निबन्धनत्वा–बा॰ बा॰ । ३८ तदैवो–बा॰ बा॰ विन [illegible] ।–आ॰ । ४०–भाविनो जनकस्य बा॰ बा॰ । ४१ नायं भा–बा॰ बा॰ । ४२ न [illegible] बा॰ बा॰ । ४३–व्यतिरिक्तोऽ–बा॰ बा॰ ।

नाभेदसिद्धिः । सहकारिप्रत्ययोपजनितस्य था(वा)तिशयस्यालम्बनात् (नात्) व्यतिरेके व्यतिरेकाभावी दोषो दुर्निवार इत्युक्तं प्राक् । अथ प्रागपि स स्वभाव आसीत्, तदोभयकालभावीति प्रत्यभिज्ञाना(भिज्ञा)कार्याणि प्रागेवोद्भवति(वन्ति) स्युरिति क्रमवता प्रत्यभिज्ञामानेन स्वसंवेदनेनोपलक्षितेनाभिन्नत्वेनोपलक्षितस्यापि स्वा(चाला)लम्बनस्य क्रमः प्रदर्शित एव । अथ दर्शनाविशेषेऽपि
५ प्रत्यभिज्ञाकार्यक्रमानुभवः किमिति सत्यत्वेन व्यवस्थाप्यते न पुनरभिन्नतदालम्बनानुभवेन (भवः) उच्यते, क्रमसंवेदने बाधकाभावादितरस्य तद्विपर्ययात् । यदि ह्यसतो ज्ञानक्रमस्य स्वसंविदा(त्या) विषयीकरणं भवेत् तदा तदभावे स्वसंविदोऽपि तद्व्यतिरिक्ताया(याः) तत्प्रमाणात्र केनचित् कस्यापि विषयीकरणं भवेदिति तत्क्रमानुभवः सत्यः बाह्यालम्बनाभेदानुभवस्तु लूनपुनर्जातकेशादिष्विव बाधितत्वादसत्यः । यथा चानुसन्धानप्रत्यया बहिरेकत्वाद्यालम्बनाभावेऽप्यान्तरमेव(मेका)-
१० कारं बहिरिव अवभासमानाः प्रवर्त्तन्ते तथाऽन्यत्र प्रतिपादितम् ।

यत् पुनः परैरुच्यते—आलम्बनैकत्वाध्यवसायि प्रत्यभिज्ञाकार्यक्रमदर्शनं सहकारिप्रत्ययैरनाधेयातिशयतामालम्बनस्य बाधनो(धते?) कार्यस्यानुत्पादयौगपद्याभावाच्च पुनरभेदम् भेदावभासिनोऽनुभवस्याभावादिति, तदप्यसङ्गतमेव; यतो यद्यालम्बनस्याभेदो न बाध्यते तर्हि सहकारिसन्निधानेऽप्रतीयमानातिशयानां बीजोपलादीनां अनाधेयातिशयताऽपि कथं बाध्येत ? अथ कार्यानुत्पाद-
१५ यौगपद्याभावाद्वा(यात् सा) बाध्यते, नन्वेवमनुपलभ्यमानोऽपि भेदस्तस्यामवस्थायां अतिशयवत् किं नाभ्युपगम्यते ? यतोऽनतिशयानुभवस्याप्यनुमानत एवाऽप्रामाण्यं परोऽभ्युपगतवान् अन्यथा भेदानुभवमनादृत्य कथमतः सातिशयत्वं तस्यामवस्थायामभिमन्येत ? तथा, यद्यालम्बने भेदोऽप्यङ्गीक्रियते तदा को दोषो विशेषाभावादिति क्रमेत(व)त्प्रत्यभिज्ञालक्षणकार्यदर्शनात् तदालम्बनस्यापि क्रमः सिद्धः । तदुक्तम्—

२० "नाक्रमात् क्रमिणो भावो नाप्यपेक्षा विशेषिणः ।
क्रमाद् भवन्ती धीले(र्ये)यात् क्रमं सत्या(मं तस्या)ऽपि सत्स(सेत्स्य)ति"[ ]इति ।

तदेवं न बहिरवस्थितैकार्थसम्प्रयोगेणेन्द्रियेण जन्यते प्रत्यभिज्ञा वदा(द)भावान्न प्रत्यक्ष(क्षं?) नापि प्रमाणमिति स्थितम् । तथा च 'नहि स्मरणतो यत्' इत्यादि वचनं सिद्धसाधनमेव, यतो यदेवंभूतं तद् भव(वे)त् प्रत्यक्षम् नैवेवं प्रत्यभिज्ञानमिति का नः क्षतिः ? यतः पूर्वानुभूतधर्मा-
२५ रोपणाद् विना 'श (स) एवायम्' इति ज्ञानं नोपजायते तच्चाक्षजे प्रत्ययेऽसंभवि ।

यदप्युक्तम् 'देशादिभिन्नं सामान्याद्यालम्बनम्' इति, तदप्यसङ्गतम्, सामान्यादेरभिन्नस्य तद्विषयस्याभावात् भावेऽप्यनेकप्रमाणगोचरत्वेन तत्र प्रवर्त्तमानस्य प्रत्यभिज्ञानस्याऽनधिगतार्थाधिगन्तृत्वायोगात् भिन्नाभिन्नालम्बनत्वेऽपि च प्रत्यभिज्ञानस्य न प्रामाण्यम् अपूर्वप्रमेयाभावात् । नहि देशादयस्तत्र प्रत्यभिज्ञानांते(ज्ञायन्ते) प्रागदर्शनात् तेषाम् पूर्वोपलब्धे तु सामान्यादौ न प्रमेयाधि-
३० क्यम् । न च पूर्वप्रसिद्धमेवाग्निसामान्यं देशादिविशिष्टतयानुमानस्याधिगच्छति(गच्छतः) प्रमेयातिरेकात्(कात्) यथा न प्रामाण्यव्याहतिस्तथा प्रागुपलब्धमेव सामान्यादिदेशादितिविशिष्ट(देशादिविशिष्ट)तया प्रतिपद्यमानस्याप्यपूर्वप्रमेयसङ्गतेर्न प्रामाण्यक्षतिरिति वक्तव्यम्, द्वितीयप्रत्यक्षव

१-क्षभवो दो-आ० । २-सीत् तनोत्त-वा० बा० । ३ प्रतिज्ञा-वा० बा० । ४-लक्ष्यते-वा० बा० । ५-भतः वा० बा० । ६-स्तु नपुन-भां० मां० हा० वि० । ७-था वा-वा० बा० । ८-रवहिर्वेदनासमानाः वा० बा० । ९-स्य बाधतो का-वा० बा० ।-स्य बाला का-आ० । १० कार्यस्य नु-वा० बा० । ११ बाधते आ० । १२-व्य वर्तियमा-वा० बा० । १३-यानापि भां० मां० । १४-शयेना-वा० बा० विना । १५-स्याया मति-वा० बा० । १६ यतोऽयनेति-भां० मां० । १७-नुभाव-वा० बा० मां० विना । १८-थाऽभे-वा० बा० । १९-चालम्बल भे-वा० बा० । २०-वादित क्रम-वि० विना । २१-मत्प्र-वा० बा० । २२ भवं धी क्षेयात् क्रमं तस्यापि सरसतीति वा० बा० विना । २३-पि सेरस-वि० । २४-कार्यसम्प्र-आ० वि० विना । २५-क्ष नोपि वा० बा० । २६ च । ते हि वा० बा० विना । २७ पृ० ३१९ पं० ४ । २८ भव प्र-वा० बा० । २९ नन्वेवं वा० बा० आ० । ३० संभवति वा० बा० । संभववि आ० । ३१ पृ० ३१९ पं० ११ । ३२-दादिभिन्न सा-वा० बा० । ३३-च्छति वा० बा० । ३४-माण्याव्या-भां० मां० । ३५-था नागुप-वा० बा० । ३६-दादिविविशि-वा० बा० । ३७-व्यक्षति-वा० बा० आ० विना ।

तत्र सन्निर्देशि प्रत्यभिज्ञान(न)स्यापूर्वप्रमेयाभावयोगात् । तेन (न च) तत्रानुपलब्धपूर्वदृष्टार्थभावोऽधिकः प्रत्यक्षाभावतः(प्रत्यक्षतः) प्रत्यभिज्ञानेन प्रतीयत इति अपूर्वप्रमेयसद्भावः, यतः पूर्वदृष्टार्थभावो न प्रत्यक्षप्रत्यक्षगोचरादतिरिक्त इति कथं तस्य ततोऽतिरेकसिद्धिः? व्यतिरेक(के) वा कथं न मिथ्याप्रत्ययः? 'स एव' इत्यभेदोल्लेखनात्, अनुसन्धानं च (च) 'योऽयमिदानीमुपलभ्यते प्रागप्येष मया दृष्टः' इति कोऽपरः प्रवर्तते अतः 'स एवायम्' इति नहि पूर्वदृष्टस्मरणतः 'स एवायम्' इत्यनुसन्धानसंभवः ५
[?? तस्मात् स्मृतिरूपतां नातिक्रामति, प्रत्यभिज्ञानं च यथावस्तुस्वरूपग्राहिणाऽध्यक्षेण तद्व्यतिरिक्ते क्षणक्षयेऽधिगतेऽपि तत् निश्चितम् तेनाऽनिश्चितत्वात् नानुमितिः प्रमाणम्, तथा च स्वव्यतिरिक्ते पदार्थे दर्शनद्वयगृहीतेऽमपि तेऽपि च न प्रमाणमभिधीयते, अनुमितिः साध्याविनाभूतलिङ्गसमुत्था दर्शनमात्रनिबन्धना न भवतीति प्रतिपक्षेऽर्थांशे समारोप्य व्यवच्छेदं कुर्वाणा प्रमाणम्, नत्वेवं प्रत्यभिज्ञा दर्शनबलात् तदुत्पत्तेः समारोपव्यवच्छेदविषयो चैवं स्यात् न वस्तुग्राहिणी तथा १०
चाऽस्याः कुतः प्रत्यक्षता स्वतन्त्रायाः प्रामाण्यं चेति । यदपि 'प्रमेयातिरेकाभावेऽपि सन्देहाऽपाकरणात् प्रमाण(णं) प्रत्यभिज्ञा' इत्यभ्यधायि, तदप्यसङ्गतम्; स्मृतेरपि 'किं मया दृष्टं उत न' इति संशयव्यवच्छेदेन 'दृष्टम्' इत्युपजायमानायाः प्रमाणताप्रसक्तः(क्तेः) । आलोचनाज्ञानान्तरं विकल्पकप्रत्यक्षाभ्युपगमात् कालान्तरं सविकल्पकप्रत्यक्षाभ्युपगमात् कालान्तरादिभावोऽपि तत एवं निश्चित इति कुतो भवदभिप्रायेण संन्देहं(हः)? नहि निश्चयविषयीकृतमनिश्चितं नाम, न च १५
कालान्तरादौ सद्भावः ततो व्यतिरिक्तः अन्यत्वप्रसङ्गात् इति प्रमेयाऽऽधिक्या(क्य)मेव प्रामाण्यनिबन्धनमभिधातुमु(धातुं यु)क्तम् अन्यथा निष्पादितक्रिये कर्मविशेषाधायि कथं साधनं स्यात्? ??]

यत् तु 'इदानीन्तनमस्तित्वं नहि पूर्वधिया गतम्' इत्युक्तम्, तदुक्तमेव इदानीं(नीन्त)नत्वस्य भेदात् अन्यथा प्राक्तनविशेषणयुक्त्या वस्तुव्यतिरेकि इदानीन्तना(नीन्तना)स्तित्वस्य कथमग्रहणम्? यदि च सविकल्पकं प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षमर्थग्राहकमभ्युपगम्यते तदा सर्वात्मनार्थस्य निश्चितत्वात् प्रमा- २०
णान्तरप्रवृत्तेर्वै(र्वै)यर्थ्यप्रसक्तेरिति विचारितमन्यत्रेतीह न प्रतन्यते । यैस्तु निर्विकल्पकं प्रत्यभिज्ञानं प्रमाणतया अभ्युपगतम् तेषां तदुत्तरकालभाविसविकल्पकाध्यक्षभावो घटादिविषयः प्रमेयातिरेकाभावात् कथं प्रमाणतामश्नुवीत? न च प्रमेयातिरेकमन्तरेणापि सन्दिग्धवस्तुनिश्चयनिबन्धनत्वा(त्वात्) प्रमाणमसौ, निर्विकल्पक-सविकल्पकयोर्द्वयप्रत्यययोर्नियतपौर्वापर्ययोरपान्तराले सन्दे-

---

१-रितसिद्धि प्र-आ० । २ तद्य वा० बा० विना । ३-लप्यपू-आ० । ४-क्षाभवतः वा० बा० विना । ५-सिद्धि व्यतिरेक ता कथं वा० बा० विना । ६-न्धान च वा० बा० विना । ७-नसंधान संभ-वा० बा० । ८-तानति-वा० बा० । ९-ज्ञान च भां० मां० आ० हा० ।-ज्ञाने च वा० बा० । १० तन्निश्चयत्या नानु-वा० बा० । ११-था च स्वव्यति-वा० बा० ।-था च स्तुल्यति-भां० मां० । १२-त पि वा० बा० । १३ त-न्निश्चया न वि० विना । १४-त भि-आ० हा० वि० विना । १५-यतो अ-वा० बा० । १६-नुमिति सा-आ० हा० वि० । १७-मानप्रनियन्ध न भ-भां० ।-माननिनियन्ध न भ-मां० ।-मात्रनियन्धन भ-आ० हा० वि० । १८-प्यंशो स-भां० मां० । १९ नत्येयं प्रत्यभिज्ञानद्-हा० वि० । २०-दर्शनं च-भां० मां० । २१-या चैवं हा० वि० ।-या चैव आ० । २२-माणा प्र-हा० । २३ पृ० ११९ पं० २५ । २४ स्मृतिर-आ० । २५-ल्पकं प्र-वा० बा० । २६-मात् कालान्तरादिभा-वा० बा० । २७ चयं नि-हा० । २८ सन्देह न-वा० बा० ।

२९ "निष्पादितक्रिये चार्थे प्रवृत्तेः स्मरणादिवत् । न प्रमाणमिदं युक्तं करणार्थविहानितः" ॥
—तत्त्वसं० का० ४५१ पृ० १५९ ।

३० पृ० ११९ पं० १७ । ३१-दानीमनन्वितस्य वा० बा० ।-दानींनन्वयस्य आ० ।
"नन्विदानींतनास्तित्वं यदि भिन्नं त्वयेष्यते । पूर्वभावात् तदा भेदस्त्वयैव प्रतिपादितः" ॥
—तत्त्वसं० का० ४५७ पृ० १६० ।

३२ "अनन्यत्वेऽपि तत्त्वस्य कथं पूर्वधियाऽगतम् । तत्त्वागतौ हि सकलं नोपलब्धं प्रसज्यते" ॥
—तत्त्वसं० का० ४५८ पृ० १६० ।

३३-कल्पाधु-वा० बा० विना । ३४-दा सर्वदारमनार्थस्य वा० बा० ।-दा सर्वात्मते तदा सर्वात्मनार्थस्य भां० मां० । ३५-चारिताम-आ० विना । ३६-भुयते न वा० बा० विना । ३७-न्धनियस्तुनिश्चय-आ० मां० हा० वि० ।-न्धनियतनिश्चय-वा० बा० । ३८-हाम-वा० बा० ।

हासंभवात् तदपाकरणाभावान्न निर्विकल्पकप्रत्यक्षेण समाना [?? प्रत्यभिज्ञानेनैकत्वमवगन्तुं श[illegible]
यतोऽर्थसाक्षात्कारि प्रत्यक्षं लोके प्रतीतम् पूर्वापरसंवेदनाऽधिगतभावैकत्वग्राहकं च प्रत्यभि[illegible]
तत् कत(थ)मध्यक्षस्य स्वरूपम्? तथाहि—न तावत् प्रथमसंविदस्तत्त्वग्रहणसंभवः, तत्सं[illegible]
भाविसमयादिग्रहणमिति तदेव स्तम्भादेरुदयमप्यास्ते(स्त)मयादिप्रतीतिप्रसक्तिः। न च भ[illegible]
५ समय-वे(दे)श-दशादश(र्श)नादि न गृह(ह्य)ते ते तत्सम्बन्ध्यं(न्धि) तु रूपं पूर्वदर्शने प्रतिभा[illegible]
भाविकालाद्यग्रहे तत्सम्बन्धिरूपस्याप्यग्रहाद् यदेव हि तद्देशाद्यनुस्यूतं रूपं तत्र प्रतिभाती[illegible]
तद्दर्शनाऽवसेयम्, यदि तु भाविकालाद्यग्रहेऽपि तत्संबन्धिरूपग्रहस्तथासति सर्वे भावाः सम[illegible]
कालदर्शनसंबन्धिन आद्यदर्शनाऽवसेयाः स्युः, एवं च सति सर्वे नित्या भवेयुः भ(य)दि चैवं प्र[illegible]
दर्शनं(नि) सर्वकालैस्थायिता प्रतिभातीति नैते तथाऽभ्युपेयन्ते तर्हि तत्र भाविदशादिपरिच्छता[illegible]
१० न प्रतिभातीति साऽपि न तत्र सती। न च तस्यैवोत्तरकाले प्रतीतेः भाविविज्ञानग्राह्यतापत्तः तद[illegible]
पलब्धिः किं पूर्वदशा, उत उत्तरकालीम(कालभा)विन्या? यदि पूर्वदशा तदा सोऽसत्कालत्र[illegible]
कथं प्रतिपद्यते? नह्यसद् ग्राहकम् अतिप्रसङ्गात्। यदापि सा सती आसीत् तदा न पश्चाद् दर्शन
संभवतीति न तत्प्रतिभासिरूपग्रहः प्राक्। अथोत्तरकालभाविनी दृक् तस्योपलब्धि(ब्धिर)[illegible]
मेतत्, यतो द्वितीयदृगपि स्वप्रतिभासिनमेव पदार्थात्मानमवभासयतु न पुनस्तरम्। यत[illegible]
१५ दृश्यमानस्याऽर्थस्य पूर्वदेशादिपरिगतत्वम् (गतत्वम् दृष्टता) वा? ??]

न तावदाद्यः पक्षः, पूर्वदेशादीनामसन्निधानेनाप्रतिभासन(ने) तत्सम्बद्धस्यापि रूपस्याग्रहप[illegible]
प्रत्यक्षेण न ह्यऽसन्निहिता देशादयः प्रतिभान्ति दर्शनस्य निर्विषयत्वप्रसङ्गात्, सकलातीत[illegible]
परम्परापरिच्छेदप्रसक्तेश्च कालत्रयप्रदर्शि प्रत्यक्षं भवेत्। न च तथाऽभ्युपगन्तुं युक्तम्, अती[illegible]
[illegible]प्रतिभासाभावात्, तमन्तरेण च प्रत्यक्षेणाग्रहणात्, न च पूर्वदेशादीनां तदा सन्निधान[illegible]
२० सन्निधौ वा तद्दर्शने प्रतिभासनात् पूर्वरूपतात्यागः वर्तमानताप्राप्तेः—यदि तद्दर्शनप्रतिभासनम[illegible]
[illegible] वर्तमानता [illegible]नामपि। तथापि पूर्वरूपत्वे वर्तमान[illegible]। न च [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
२५ [illegible]। [illegible] पूर्वदेशादिसिद्धं दृश्यमानस्य तत्त्वम्।

[illegible] दृश्यमानस्य [illegible] किं साम्प्रति दर्शने प्रतिभासना, आहोस्विद् पू[illegible]

---

१ [illegible] १-[illegible] २ [illegible] ३-[illegible] ४ [illegible] ५-[illegible] [illegible]

दशि ? यद्याद्यः पक्षः तदा वर्त्तमानतैव न पूर्वापरैकत्व(गवक)नैकत्वम् । अथ द्वितीयः तदा पूर्वदर्शनमपेतत्वाद् असत् कथं वर्त्तमानदर्शने प्रतिभाति ? तदप्रतिभासे च तद्ग्राह्यतापि अच्युतत्वाद् न प्रतिभाति, तद्ग्राह्यं तु रूपमधुना सन्निहितत्वाद् वर्त्तमानदृगधिगम्यं भविष्यति पूर्वदर्शनस्यापरिच्छेदे तदधिगम्यस्यापि रूपस्याधिगमासंभवात् । यतो न वर्त्तमानं दर्शनं पूर्वदृष्टामगृह्णद् तदधिगम्यमधिगन्तुं क्षमम् तद्दिशा(तद्दृशो) ग्राह्यमधिगच्छतु पूर्वदृग्ग्राह्यतां तु कथमधिगच्छेत् ? यदि तु पूर्वदृगम(गत)वगमेऽपि तद्ग्राह्यता प्रतीयते तथासति सका(क)लानागतग्राह्यताऽपि प्रतीयताम् । न च पूर्वदृष्टता नाभाति पूर्वदृष्टरूपं ना(चा)भातीति पूर्वदृष्टताऽप्रतीतौ

गोचरताऽपि वर्त्तमानदृशि प्रतिभाति पूर्वदृग्गोचरसकलपदार्थप्रतिभासप्रसङ्गः । न च भिन्नं पूर्वदृगर्थगतं नावभाति अभिन्नं तु तत्प्रतिभासविषयोऽवभासत एव नीलादेर्भिन्नस्यापि वर्त्तमानदर्शनप्रतिभासनात् पूर्वदृष्टत्वादेव तस्य न तत्र प्रतिभासः, तच्चाभिन्नेऽपि समानम् इति कुतस्तस्य प्रतिभासः ? न चाभिन्नस्य पूर्वदृग्गोचरस्य सन्निहिततया(स्यात्) प्रतिभासः नैतस्य विपर्ययात् तत्सन्निधेरेवासिद्धेः । न च सम्प्रति दर्शनात् तत्सन्निधिसिद्धिः, यतः किं तत् तस्य दर्शनम्, उतान्यस्य ? यद्यन्यस्य कथं तत्सन्निधिसिद्धिः सर्वस्य तत्प्रसूतिः(तेः) । न चाप्रतिभासात् सर्वस्या(स्य) सन्निधिः इतरेतराश्रयदोषात्-तदप्रतिभासात् सर्वासन्निधिः सैतस्य सर्वाप्रतिभास इति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम् । अथ तस्यैव दर्शनात् सत्स(तत्स)न्निधिः, असदेतत्, यतः पूर्वदर्शनावगतस्य वर्त्तमानदर्शनमिति न कुतश्चिदवगंस्यते ? न तावद् दर्शनात्, सन्निहित एव तस्य वृत्तेः । न च पूर्वदृष्टसन्निहितयोरैक्यात् वर्त्तमानदर्शनवृत्तिः, इतरेतराश्रयप्रसक्तेः—तयोरैक्यात् तद्दर्शनवृत्तिः तद्वृत्तेश्च तयोरेकत्वमितीतरेतराश्रयत्वम् ।

अपि च, तद्दर्शनवृत्तेर्नायं दोषः तदप्रच्युतौ प्रमाणाभावात् । न च प्रत्युत्पन्नदर्शनमेव तत्र प्रमाणम्, इतरेतराश्रयदोषप्रसक्तेः । तथाहि—पूर्वदृष्टस्याप्रच्युतौ प्रवर्त्तमानं दर्शनं प्रमाणं सिध्यति तत्प्रामाण्याच्च(च) पूर्वदृष्टस्याप्रच्युतिरिति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम् । न च परिस्फुटप्रतिभासादेव वर्त्तमाना दृक् प्रमाणम्, काम-शोकाद्युपप्लुतविनिर्दृशः प्रमाणताप्रसक्तेः । न च विसंवादात् सा अप्रमाणम् इयं तु विपर्ययात् प्रमाणम्, यतः संवादकमपि पूर्वदृष्टेऽर्थे प्रवर्त्तमाना न प्रमाणतया सिद्धा अर्थेनाऽप्रसूता न(?)संवादकता, ततः पूर्वदृष्टार्थग्राहित्वे दृग् प्राप्ता प्रसक्ता । अपि च, उक्त-

---

१-भाग न पू-वा० बा० । २-दग्पूर्वैकत्वम् भा० ।-दग्पूर्वैकत्वम् भ० ।-दगैकत्वम् ब० ब० । ३-शतोऽपि वा० बा० विना । ४ भविष्यति वा० बा० विना । ५ पूर्वभागदृष्टम् तदधिगम्यमधिगन्तु दृ-वा० बा० । ६-गच्छतु पू-वा० बा० विना । ७ यदि पूर्व-वा० बा० । ८-दगव-ब० ब० वि० । ९ न च पूर्वदृष्टता नाभातीति पूर्वदृष्टताऽप्रती-दा० वि० । न च पूर्वदृष्टता नाभाति पूर्वदृष्टं ना भाति पूर्वदृष्टं कथं नाभातीति पूर्वदृष्टताऽप्रती-भा० मा० । न च पूर्वदृष्टता नाभाति पूर्वदृष्ट ना नाभातीति पूर्वदृष्टताऽप्रती-वा० बा० । १० नीलादौ-भा० मा० । ११-या प्रति-भा० मा० ब० ह० वि० । १२-स्वयैव एव नावेद्यतया प्रतिभासमानः स्वयैव एव नान्यवेद्यतया-भा० मा० । १३-ह-दाऽपाये वा० बा० विना । १४ भा मतद्गोचरः सर्वात्मा भावे-ब० ब० । १५ तदापा-ब० ब० । १६-र्शनागो-वा० बा० । १७-वरार्थो भा० । १८-वर्त भा० मा० ।-वसतं ह० ।-वर्तते वि० ।-वर्तन मा-भा० । १९-पयोऽभा-वा० बा० । २०-दर्शनाप्र-वा० बा० । २१ तत्पाभि-भा० ब० ब० । तत्प्रभि-दा० वि० । २२ न चाभि-वा० बा० । २३-चातिदेर्न त तस्य ब० ब० ।-चातिदेर्मि च तस्य-भा० ।-चातिदेर्मि च तस्य-दा० वि० । २४ न चा प्र ब० बा० मा० विना । २५-दर्पि इत्यितरेतराश्रयत्वात्-वा० बा० । २६ ततश्च सर्वाप्रतिभासात् सर्वाप्रतिभास इति भा० मा० । २७-दर्शने ब० बा० । २८-यम-वा० बा० । २९-माणभा-भा० । ३० च्युतौ प्र-भा० । च्युतौ प्र ह० वि० । ३१-भाग दृ-दा० । ३२-हादृशः भा० ह० वि० ।-हाद् दशः ब० ब० । ३३-भा न प्र-ब० ब० विना । ३४-स्पथा-दा० वि० ।

ज्ञान(नि) पूर्वदर्शनग्राह्यं किं तद्रूपेण रूपेण प्रतिभाति, उत रूपान्तरेण? यदि पूर्वदृष्टेन तथात्वे पूर्वदृष्टरूपावभास एव न वर्त्तमानरूपपरिच्छेदः। अथ रूपान्तरेण तत्रापि वर्त्तमानदर्शनग्राह्यरूपत्वे न पूर्वज्ञानग्राह्यता इति वर्त्तमानमेव तत्। न च ज्ञानद्वयावभासि रूपं तत्र प्रतिभातीति वक्तुं शक्यम्, ज्ञानद्वयाऽभावे तदवभासिनो रूपस्याप्यभावात् यदेव हि ज्ञानमस्ति भवतु तदवभास्येव तद्रूपम् न
५ तु नष्टज्ञानं न तदवभासि युक्तम् अन्यथा सकलातीतज्ञानावभासिरूपप्रतिभासप्रसक्तिरित्युक्तम्, तस्माद् इदानीन्तनज्ञानावभासमेवैतद् युक्तम्। न च निर्विकल्पके वर्त्तमानग्रहणे सति प्राक्तनज्ञानाव-भासिभावपरिच्छेदः समस्ति विकल्पद्वयानतिवृत्तेः। यतः 'सः' इति पूर्वपरिच्छेदः 'अयम्' इति प्रतिभासानुप्रवेशेन प्रतिभाति, उताननुप्रवेशेन? यद्याद्यः पक्षः, तदा 'सः' ति(इति) वा परोक्षाकार-प्रतिभासः 'अयम्' इति वा वर्त्तमानमात्रावभासः। अथाननुप्रवेशेन प्रतिभासस्तदापि प्रतिभासद्वय-
१० परस्परविविक्तमापातम्, तथा च तद्ग्राह्यस्यापि भेदः प्रतिभासभेदात्। न च तदवभासद्वयमेकाधि-करणम् परोक्षाऽपरोक्षरूपनिर्भासद्वयस्यैकाधिकरणत्वासिद्धेः अन्यथा भिन्नाधिकरणसर्वसंविदामेका-धिकरणत्वापत्तेः। तन्नैककालम् भिन्नकालं वा प्रतिभासद्वयमेकार्थम् प्रतिभासभेदात्। न चा प्रतिभास एव भिन्नो न प्रतिभास्यः, तद्भेदे तदभेदासिद्धेः। तथाहि—न स्वतः प्रतिभास्याभेद-सिद्धः, स्वसंविन्मात्रप्रसक्तेः। नापि प्रतिभासात् तस्य भिन्नत्वादिति नैकत्वसिद्धिः। उत्तरकाल-
१५ भाविनोऽपि दर्शनात् सन्निहितमात्रस्यैव तत्र प्रतिभासात् पूर्वकालादीनां तत्र प्रतिभासने वर्त्तमान-तापत्तेः, तदनवभासे च तत्परिकरितरूपस्याप्यपरिच्छेदः। न च तद्गतत्वेनाऽप्रतिभासेऽप्यतुल्य-रूपतया प्रतिभासात् प्रतिभास्यस्यैकत्वम् यतो विद्युदादिष्वपि पूर्वरूपाप्रतिभासनं यदि तुल्यरूपत्वमभ्यु-पगम्यते तर्हि पूर्वदृष्टाप्रतिभासनं वर्त्तमानं(?)वरदृशः स्तम्भादावस्तीति कथं न तुल्यरूपप्रतिभासः स्तम्भादेर्भेदः? अथ प्राक्तस्याविरतमुपलब्धिरतुल्यरूपता विद्युदादौ त्ववभासस्य विरतिरिति तुल्यरूपता
२० न युक्ता, नन्वविरतोपलब्धिरपि किं तस्य, आहोस्विदन्यस्य इति वक्तव्यम्। यद्यन्यस्य कथमेकत्वम्? अथ तस्यैव, सा न सिद्धा। नहि पूर्वदृष्टस्य पुनरुपलब्धिरिति सिद्धम्।

यदपि 'पूर्वदृष्टं पश्यामि' इति व्यवसायबलात् निर्विकल्पकं दर्शनं 'पूर्वापरैकत्वग्राहि' इत्युक्तम् [illegible]मारम्, यतो(यतो) न व्यवसायबलाद् ग्राहकं दर्शनं व्यवस्थाप्यते किन्तु प्रतिभासबलात्, अन्यथा अश्वविकल्पसमये गोदर्शनमवस्था न स्यात् प्रतिभासश्च निराकृतपूर्वापरभावो वर्त्तमानैक-
२५ [illegible] परिस्फुटं सर्वं प्रतिभाति साक्षात्का(स्क)रणं हि परिस्फुटता तस्य(च) सन्निहितप्रतिभासनम् [illegible] पूर्वदृष्टं सन्निहितं पश्यामीति न तद्ग्रहः प्रत्यक्षप्रमाण[illegible]। [illegible] पूर्वदृष्टं रूपमाभातीति किन्तु धर्मिरूपं नीलादिस्वलक्षणम्, [illegible]। पूर्वदर्शनाप्रतिभासि [illegible] नीलादिरूपस्य धर्मिणस्तद्भेदे [illegible](स्ये) तर्हि पूर्व[illegible] मुक्त्वा [illegible] नीलादिको धर्मी प्रतिभाति, अप्रतिभासमानेन [illegible]
३० [illegible] प्रतिभासेनैव [illegible]। तत [illegible] [illegible]।

[illegible] नीलदर्शनस्य तद्वेदनं [illegible] तथापि

१-[illegible]। २-[illegible]। ३-[illegible]। ४-[illegible]। ५-[illegible]। ६ [illegible]। ७-[illegible]। ८-[illegible]। ९-[illegible]। १०-[illegible]। ११-[illegible]। १२ [illegible]। १३-[illegible]। १४ प्रतिभास[illegible]। [illegible]

…नपुनर्जातकेशादिषु 'पूर्वदृष्टं पश्यामि' इत्यध्यवसायप्रमाणान्यथापि प्रवृत्त्युपलब्धेः कथं तद्रूपार्थ-स्यानुभवव्यवस्थापकत्वम्? न च विच्छेदाभिमतस्तत्र भेदस्य ग्रहणाद्भेदग्राहिता मा भूत् अनुभवस्य तन्निबन्धना न पुनरिदंधी भेदाध्यवसायस्यैव कस्यचिदभावादि(दिति) वक्तव्यम्, भेदाध्यवसाय प्रत्यक्ष पश्चाद्विजातीयदर्शनमात्रादसिद्धेः। अपि च, अवगतविच्छेदानामपि प्रमातॄणां समानवर्ण-संस्थान-प्रमाणेषु केशादिषूपलम्भसमये न प्रत्यक्षनिबन्धनस्तदन्येषामियाऽन्यत्वनिश्चयः अपि त्वेनु-भूतविच्छेदेषु पूर्वरूपाऽसम्भवादेकाकारप्रत्ययगोचरेष्वेतेष्वनुमाननिबन्धन एव, तथा(था)ऽन्य-त्रापि समानम् विकल्पपक्षाध्यायमनुभवस्य विषयव्यवस्थां कुर्वतन्यथापि विकल्पस्य सम्भवदर्शनात् समुत्पन्नाशङ्कः कथं सर्वत्र कुर्वीत? अर्थं बाधकप्रमाणबलेनाऽन्यथात्वस्य प्रतीतेः, अत्र च तद्-भावात शङ्कासम्भवः। तदुक्तम्—

"बाधा ज्ञाने त्वनुत्पन्ने का शङ्का निष्प्रमाणका" [ ]

इत्युच्यते, असारमेतत्, यतो यत्र बाधकप्रमाणवृत्तिस्तत्रैव विपर्ययनिश्चय एवं न पुनर्बाधकनि-बन्धना शङ्का युक्ता, सा हि तुल्यजातीये प्रतियोगिदर्शनाद्दृष्टप्रतियोगिष्वपि विशेषादर्शिनामुप-जायत इत्युक्तमनन्तरम्। तथैकत्वाध्य(ध्य)वसायिविकल्पस्याविकल्पकप्रत्यभिज्ञानस्य पूर्वदृष्टार्था-धिगन्तृत्वं व्यवस्थापयितुं शक्यम्।

यदपि कैश्चिदभ्युपगम्यते—निर्विकल्पकं ज्ञानमेकत्वग्राहि तदनन्तरभावि च सविकल्पकं प्रमाण-मिति, तदपि प्रतिविहितमेव; निर्विकल्पकेनैकत्व परिच्छेदात् स्वरूपप्रतिभासनं निर्विकल्पकमुच्यते सविदितमेव च स्वरूपमाभाति अन्यविदितप्रतिभासस्य वस्त्वसंविदेभ्रान्तत्वात् पूर्वदर्शनादिसम्ब-न्धित्वं च(च) तदा संविदिता नास्ति। तत्र तत्र दर्शना(न)वृत्तिः स्मृतेरेव तत्र प्रवृत्तेः, पूर्वदर्शन-धुरासंगतेः स्मरणमन्तरेण पूर्वदृष्टादिकं स्मरत एव 'पूर्वदृष्टम्' इत्यध्यवसायोदयाद् विसरणे तद्-भावा(वात्) स्मृतिविकलेन्द्रियजप्रतिभासस्य निर्विकल्पकत्वात्। [?? न स्मृतिकृतदर्शनमवि-कल्पकमाकारसेयमेकत्वम्। अत एव कल्पनाज्ञानमप्येकत्वाध्यवसाये शुक्तिकायां रजतबुद्धिवत्स्यात् ??] न च तत्र बाधकप्रवृत्तेर्भ्रान्तता संविदितविषये तु प्रत्यभिज्ञाने न कदाचिद् बाधावृत्तिरिति सत्यार्थता, यतस्तथापि यदि तत्त्वमधिकृत्यं(धिगतं) भवेत् प्रथमदर्शन एवं प्रतिभासेत अप्रतिभास-नादसत्यम्। अथ स्मृतिसहिताया दशान्तरे व्यापाराय प्राक्तनेंदर्शने प्रतिभासनम्, असारमेतत्, यतः स्मरणसहायमपि दर्शनं नैकत्वग्रहणक्षमम् तस्य वर्तमानमात्र एव व्यापारात् वर्तमानमेवाद्र-प्रभवे ज्ञाने प्रतिभातीति तदेव तद्विषयो मे तत्त्वम्। यच्च यैदगोचरस्तद् अन्यसद्भावेऽपि न तत्र प्रतिभाति, यथा गन्धस्मृतावपि न दृशि परिमलः, दृगविषयश्च पौर्वापर्यम् तच्च स्मृतावपि तत् तत्र प्रतिभाति। तथा, स्मृतिरपि नैकत्वमवगच्छति, वर्तमानदृग्विषये तस्या अप्रवृत्तेः। नहि वर्तमान-दर्शनग्राह्यं रूपं स्मृति(तिः) परामृशति परोक्षाकारतया तस्याः प्रवृत्तेः, असंस्पर्शी च न स्वविषयस्य

१-दृष्ट प-वि० विना। २-स्तत्र भेदग्राहिता भां० मां०।-स्तत्राभेदस्य ग्रहणाद्भेदस्य ग्रहणाद्भे-दग्राहिता वा० बा०। ३-दर्शनाभा-वा० बा०। ४ रयभू-भां० मां०। ५-च्यतिरेच-वा० बा०। ६-ना स-वा० बा०। ७-थ बाधनबाधकबलेनान्यथा-वा० बा०। ८-म्भवतस्तु-वा० बा०। ९ बा-ध्यासा-आ० हा० वि०। १०-स्तद् विप-वा० बा०। ११-य पु-वा० बा०। १२-योगिवपि वा० बा०। १३ पृ० ३३९ पं० २८। १४-कल्प ज्ञा-भां० मां०। १५-क प-वा० बा०। १६-रूपाप्र-आ०। १७-भासं निर्वि-आ०।-भासन निर्वि-मां०। १८-संनिधे प्रा-वा० बा०। १९-ता च तु त-वा० बा० विना। २०-वृत्ते पू-वा० बा०। २१-वधग-वा० बा० विना। २२-मन्तरेऽपूर्वेहागादि-वा० बा०। २३-दया वि-आ०। २४-रणा म-वा० बा०। २५-कलेन्द्रियाजनप्र-वा० बा०। २६ स्मृतिकृतं दर्शनं निकल्पकमिति नाधिकल्पकरूपकज्ञानाय-वा० बा०। २७-त्याध्यवसायं शुक्तिकायां र-वा० बा०। २८-बुद्धितयं न भा०।-बुद्धितयं न हा० वि०। २९-धकं प्रवृत्तेः भ्रान्तता स-वा० बा०। ३० बाध्यावृ-आ०। ३१-थं सत् प्रतिभासेताप्रतिभासेनाऽप्रतिभासनादसत्य-वा० बा०।-च प्रतिभासेताप्रतिभासेताऽप्रतिभा-सनादसत्य-मां०। ३२-नप्रद्-वा० बा०। ३३-दर्शनं चैकत्वप्र-वा० बा०।-दर्शनं चैकप्र-भां० मां०।-दर्शनं चैकत्वं प्र-हा० वि०। ३४ नन्वेवं य-वा० बा०। ३५-यद्गो-वा० बा० विना। ३६ रूपं स्मृ-आ०।-ग्राह्यरूपां स्मृ-हा० वि०।-ग्राह्यं रूपः स्मृ-वा० बा०। ३७-वृत्ते दर्स-वा० बा०।

तेन सहैक्यमवगमयति । न च दर्शन-स्मरणयोरेकाधिकरणता तत्त्वम् तथाप्रतीत्यभावात् तयोः स्फुटास्फुटावाकारौ बिभ्राणे दर्शन-स्मरणे नैकाधिकरणतामभ्युपगच्छतः सर्वसंविदामेकाधिकरणतापत्तेः । न च तत्र प्रतिभासभेदाद् भिन्नार्थता, स्फुटेतरप्रतिभासभेदाद् दर्शन-स्मरणयोरपि भिन्नार्थताप्रसक्तेः—दर्शनं हि साक्षात्करणाकारम् स्मृतिश्च परोक्षाध्य(ध्य)वसायस्वभावेपि(ति) कथं ५तयोः प्रतिभासभेदादि(दाद्) भिन्नार्थत्वम् । तन्न ताभ्यामपि एकत्वप्रतिपत्तिः ।

नाप्यात्मा एकत्वं प्रतिपद्यते दर्शन-स्मरणाभावे स्वापाद्यवस्थायां प्रतिपत्तेस्ततोऽभावात् । दर्शन—स्मरणे च पूर्वापरार्थैः(र्थ)परिहारेण प्रवर्तमाने न तयोरेकत्वमधिगच्छत इति न तद्द्वारेणात्मापि तत्त्वमवैति । न चात्मनोऽपि पूर्वापरावस्थयोरेकत्वावगमः पूर्वबोधेन भाविविबोधसम्बन्धितानु(ताननु)भवात् उत्तरानुभवेन पूर्ववित्सम्बन्धिताऽनवगमात्, अनुभवे वाऽनाद्यनन्तसकलजन्म- १०परम्परापरिच्छेदप्रसक्तिः । न च शुद्ध एवात्मा स्वसंवेदने प्रतिभाति दशा(शा) परिगतः तासाम-प्रतिभासे तद्गतत्वेन तस्याप्यप्रतिभासनादित्युक्तत्वात् । न च दर्शन-स्मरणव्यतिरेकेणाऽन्योऽनुसन्धाना(ता) भाति, 'ते चान्योऽन्यपरिहारेण स्थिते इति कथमेक आत्मा? न च द्रष्टु(ष्टुः) स्वरूपं स्मर्तृरूपतया 'द(द्र)ष्टाऽहं स्मरामि' इति प्रतीतौ प्रतीतिः(प्रतीयत इति) कथं नैक आत्मा? यतो द्रष्ट(ष्टृ)स्वरूपं किं स्मर्तृस्वरूपानुप्रवेशेन प्रतिभाति, उताननुप्रवेशेन? य(यद्य)नुप्रवेशेन तदा द्रष्टृ- १५स्मर्तृरूपता (द्रष्टृस्वरूपता स्मर्तृस्वरूपता) वा, एकस्य रूपस्येतरत्रानुप्रवेशात् । अथाननुप्रवेशेन तदा द्रष्टृ-स्मर्तृरूपे अन्योन्यं भिन्ने स च नैक आत्मा । न च द्रष्टृ-स्मर्तृरूपो विकार एव भिद्यते नात्मेति क्रमभाविविकारप्रतिपत्तौ तद्गतत्वेन तस्याप्य(स्यापि) प्रतिपत्तेः विकारव्यतिरेकेण तस्याऽनुपलब्धे-रित्युक्तत्वाच्चेति नात्मनोऽप्येकत्वप्रतिपत्तिः । न च स्मरणोत्तरकालभाविनी 'स एवायम्' इत्यनु-सन्धानप्रतिपत्तिरक्षान्वयव्यतिरेकानुविधायितया प्रत्यक्षं प्रमाणम्, तस्याः प्रत्यक्षतायानुपपत्तेः । यदि २०प्रत्यक्षप्रभवेयं भवेत् पौर्वापर्ये वृत्तिमती न स्यात् अक्षस्य वर्त्तमान एव व्यापारात् । न च स्मरणो-पढौकिते पूर्वापरभावेऽक्षस्य वृत्तेः तत्प्रभवायास्तस्यास्तत्र वृत्तिर्युक्ता, अक्षस्य स्मरणोपढौकितेऽपि पौर्वापर्येऽविषयत्वेनाप्रवृत्तेस्तदुद्भवायास्तस्या अपि प्रवृत्त्यनुपपत्ते(तेः) । य(न)नुपलब्धपूर्वेऽपि मदर्थं स्मरणोपनीतेऽपि गन्धादौ प्रतिपत्तिजननं (?) स्मरणम् न च चक्षुषो गन्धाविषयत्वात् न च मेत्र लोचनसंनिकृष्टमयः स्मरणोपनीतपौर्वापर्येऽप्यक्ष(क्षा)विषयत्वस्य तुल्यत्वात् । अथ कथमक्ष- २५व्यापारानन्तरं प्रत्यभिज्ञा उदयमासादयति यद्यक्षप्रभवा(वा न) भवेत्? न; तत्र सति पुरोव-स्थितवस्तुदर्शने पूर्वदृष्टे स्मृतेरुदयात् यथा दूरव्यवस्थितचन्दनाद्यर्थदर्शनात् गन्धस्मृतेः 'सुरभि चन्दनम्' इति प्रतिपत्तिः । न च लोचनाविषयत्वात् गन्धस्य तद्विशिष्टं(ष्ट)चन्दनप्रतिपत्तिस्तद्गतकार-दर्शनाल्लिङ्गजन्येति वक्तव्यम्, प्रकृतेऽपि समानत्वात् । तथाहि-वर्तमानदर्शनात् पूर्वकालाद्यनु-स्मरणात् तद्विशिष्टपुरोऽवस्थितार्थप्रतिपत्तिरानुमानिकी पूर्वकालादिसम्बन्धितायास्तत्र प्रत्यक्ष- ३०गतेनोऽनवगतत्वात् तामप्यप्रत्य(त्य)क्षी प्रत्यभिज्ञा कथं प्रत्यक्षतामनुभवेत्? अन्यथा परोक्षपति-पत्तेः सर्वस्याः प्रत्यक्षताप्रसक्तिः । अथ परोक्ष(क्षा)कारैव प्रतीतिरप्रत्यक्षा प्रत्यभिज्ञा तु पूर्वरूपा-दर्शनेऽपि परोक्षांशस्य वर्तमानत्वे प्रत्यक्षाकारेति स्मरणाऽध्यक्षरूपा एका प्रतीतिः, नैतदेवम्,

१-ग्रन्थ्या द्—ब० का० भिन्ना । २-रुते मध्युपीयातनाम् भा० मा० । ३-मध्युपगच्छीयताम् भा० मा० [illegible] । ४-र्थं न तयोः प्रतिभासभेदाद्भिन्नार्थत्वम् भा० मा० भिन्ना । ५-रणा च भा० मा० । [illegible] [illegible] । ६-वाये च भा० [illegible] ।-वायां च-भा० मा० । ७ पूर्वापरो-भा० मा० । [illegible] [illegible] । ८ [illegible] । ९ ते चान्यो-भा० भिन्ना । १०-या द्रष्टाऽ-भा० मा० । ११ [illegible] । १२ यतो द्रष्टृ-भा० मा० भिन्ना । १३-न द्रष्टु-भा० मा० भिन्ना । १४ [illegible] । १५ [illegible] । १६ एवं भि-भा० [illegible] । [illegible] । १७-[illegible] । १८-[illegible] । १९-[illegible] । २०-[illegible] । २१ [illegible] । २२-[illegible] । २३ [illegible] । २४ [illegible] । २५-[illegible] । २६-[illegible] । २७ [illegible] । २८ [illegible] । २९ [illegible] । ३०-[illegible] ।

आकारद्वयायोगात् एकवस्तुनं आकारलक्षणत्वात् तद्भेदे ज्ञानस्यापि भेदात् अन्यथा पैरोक्षाऽ-
परोक्षाकारभेदेऽपि स्मरण-दर्शनयोरभेदप्रसक्तिर्भवेदिति सर्वमपि ज्ञानं स्मृतिः प्रत्यक्षं वा भवेत् ,
प्रथमपक्षेऽस्पष्टप्रतिभासप्रसक्तिः । द्वितीये तु सर्वप्रतिभासो विशदः(दः) स्यात् । न च स्मरण-दर्श-
नयोरस्पष्ट-स्पष्टप्रतिभासभेदेऽपि भेदः, प्रत्यभिज्ञानेऽपि 'सः' इति पूर्वोल्लेखस्याष्ट(स्यास्पष्ट)प्रति-
भासतया 'अयम्' इति वर्तमानोल्लेखः(खस्य) स्पष्टप्रतिभासरूपतया प्रतिभासभेदात् भेदस्य ५
स्यायमानत्वात् । न च 'स एवायम्' इत्येकत्वाव ···· ॱ
कत्वम्, यद् वा अध्यवसीयमानस्य ? न तावद् ·
वात् । तथाहि—'सः' इति पूर्वरूपाध्यवसायो ·
इति च वर्तमानाकारावभासः पूर्वावभासनिभिन्नतनुराभाति, परस्पररूपानुप्रवेशे वा 'सः' इति
वा प्रतिभासः स्यात् 'अयम्' इति वा, तयोः च कुतः 'स एव' इत्येका प्रत्यभिज्ञा ? परस्परव्यतिरेके १०
च पैरोक्षाऽपरोक्षप्रतिभासयोर्भेद एवेति कथमेका प्रत्यभिज्ञा ? नाप्यध्यवसीयमानस्याऽभेदः, अध्यवसाय-
भेदे तदध्यवसीयमानस्यापि भेदात् । न च 'स ———' इ———————
ज्ञानम्, अभिधानम्, प्रवृत्तिर्वा ? तत्र यदि
यदि निर्विकल्पकं तत् पूर्वापरकालभावि ? ·
भिन्नम् । अथ स्मृतिः सापि दर्शनाद् भिन्नैव कथं तदर्थस्यैकत्वं साधयति ? न च पूर्वदर्शनविषय १५
स्मृतिः स्मृतिः, तद्विषयत्वस्य तथासिद्धेः । तदा(था)हि—न तावद् दर्शनो(नात्) स्मृतेस्तद्विषयत्वं
सिध्यति दर्शनकाले स्मृतेरभावात्, तदभावे च न तदर्थवेदनं ततः सिध्यति । नापि स्मृतेरेकार्थता
स्मृतिः तत्काले दर्शनस्याभावात्, तद्भावे वा स्मृतेरयोगात् । नहि दर्शनावस्थायां स्मृतिरुदयवती
उपयोगवती वा, दर्शनादेवार्थप्रतिपत्तेः । ततो दर्शनकालपरिहारेण प्रवर्तमाना स्मृतिर्न दर्शनार्थ-
विषयतामात्मनोऽधिगन्तुं समर्था । अस्पष्टप्रतिभासा च स्मृतिः कथं स्पष्टप्रतिभासा(स)दर्शनविषय २०
मर्थमधिगच्छति ? इति न तदर्थविषया स्मृतिर्वृत्तिः सिद्धा प्रतिभासभेदस्य भेदकत्वात् अन्यथा
भेदोच्छेदप्रसक्तिरित्युक्तत्वात् । न च कल्पनाप्येका स्वयंस्फूर्तिः यतः पूर्वापरैरवभासा(भासा 'स एव)
अयम्' इत्युल्लेख(वती) सापि भिन्नैवेत्युक्तम् । अभिधानमपि 'सः' इति 'अयम्' अपि
(इति) च भिन्नम् भिन्नार्थं च प्रतिभाति एकार्थत्व(त्वे) पर्यायतामसक्तेः । तेन अभिधान्येका व्यव-
हृतिः । प्रवृत्तिरपि क्रियारूपत्वात् पूर्वापरभाविनी भिन्नैवेति कुतो व्यवहारैकत्वादप्येकत्वम् ।   २५

अथैकत्वाध्यवसायः 'स एवायम्' इति, संवादश्च तत्र विद्यते एवेति कथं न तत्र प्रत्यभिज्ञा
प्रमाणम् ? उच्यते, प्रतिभास एवाध्यवसाय-संवादौ प्रतिसरव्यन्ये(?)वा सकल एव निरस्तपूर्वापर-
भावः स्वापचिकर्मैव वेत्ति भिन्नकालावभेस्तस्य संवेदनासम्भवात् । तथाहि-संवेद्यमानरूपसद्भावे
वस्तु संवेद्यते वेदनकाल एव च संवेद्यमानं रूपमस्ति, कालान्तरे तस्य सद्भावाभ्युपगमे स्वत एव
संवेदनैस्वप्रांते:(?)तत्संवेदनसमयाध्यासितमेव सर्वमाभाति नान्यसमयादियोगि अन्यकालादि- ३०

१-वादेयस्तु-वा० बा० । २-न भवता-हा० रि० विना । ३ परोक्षप-आ० विना । ४ ज्ञान स्मृ-
बा० बा० । ५ सर्वे अयस परोऽस्य-वा० बा० । ६-स्पष्टप्र-बा० बा० विना । ७-अत्र 'ष्ट'स्थाने
लिपिकारेण 'पू' इति लिपिः कृता । ८-दा प्रतिज्ञा-बा० बा० । ९ पूर्वोल्लेखोस्पष्टप्र-बा० बा० विना ।
१०-स्यो च-बा० बा० विना । ११-था वस्तु कुतः भां० मां० । १२ इत्येको प्र-आं० मां० । १३ परो-
क्षस्य प्रतिभासयो भेदे एवेति बा० बा० । १४ तथाप्य-बा० बा० । १५-कल्पा स्मृ-बा० बा० विना ।
१६-मपि पूर्वमाहि प्रभास-वा० बा० ।-मपि पूर्वतिभास-भां० मां० । १७-स विया स्मृ-बा० बा० ।
१८ स्मृति त-बा० बा० । १९-ना स्मृ-बा० बा० । २०-दर्थाये-बा० बा० । २१ स्मृतेरुद्-बा० बा० ।
२२-नार्थ वि-बा० बा० विना । २३-वृत्ति सि-आ० हा० मि० २४-यद्भतिर्य-आ० हा० रि० । २५-राभा
स एवायमित्युल्लेखवती सापि बा० बा० । २६-धानाम-बा० बा० । २७-कार्थस्य पर्यायतो प्र-बा०
बा० । २८ तत्राभि-हा० रि० । २९-धान्यका बा० बा० । ३०-स्तुमि मि-आं० मां० । ३१-स्या-
ऽध्यय-बा० बा० । ३२-च्यतो प्र-बा० बा० । ३३-ध्यवसाय-बा० बा० । ३४-प्रतिसव्यन्ये वा बा०
बा० ।-प्रतिसरव्यत्ये वा आ० हा० ।-प्रतिभासत्येत्ये वा मि० । ३५-मर्थ वेति भि-बा० बा० । ३६-
न्तर तस्य बा० बा० । ३७-नमो स्व-बा० बा० । ३८-न समया-बा० बा० । ३९-प्राप्ते तत्व-मां० मां० ।

योगिनोऽपि तदा प्रतिभासेने तदेव प्रकाश
नातीता। प्रकाशमानरूपविरहे च न तदा
ध्येन प्रत्यभिज्ञा कथञ्चिदपि सम्भविनी। न
म(न)एकत्वे पुनः ज्ञानवृत्तिः इत्युक्तम्। तज्जातीये तु पुनर्दर्शनं प्रवर्तते तदेव च संवादात् समभिमानो
५ लोकस्य तत्त्वाध्यवसायात्। तथाहि–'स एवायम्' इति तदर्थक्रियाकारी अयं भाव इत्युच्यते तदर्थकारित्वं च भिन्नस्याप्युपलब्धम् यथा चक्षुरादेस्तज्ज्ञानजननम् तत्रैव च 'स एवायम्' इति भेदेऽप्येकत्वव्यवहारः अथवा पूर्वोऽपरदर्शनाभ्यां परस्परपरिहारेण प्रवृत्ताभ्यामेकत्वलक्षणस्य तदर्थस्य बाधितत्वादनादिकाला भ्रान्तिरेव प्रत्यभिज्ञा। तन्न क्षणिकाभिव्यक्तिषु शब्दमात्रासु निर्विकल्पकप्रत्यभिज्ञावसितं स्थैर्यम् निर्विकल्पकस्य सविकल्पकस्य वा प्रत्यभिज्ञानस्य प्रामाण्यासिद्धितस्तस्या
१० साधकत्वात्। तन्न प्रत्यक्षविरोधमनुभवन्ति क्षणभङ्गवादिनः।

यदपि 'नाशस्य कारणाधीनत्वादसन्निहिते(त)कारणस्य घटादिषु अनुदयात् विनाशकारणात् प्रागनिवृत्तरूपा एव घटादयः, तदपि प्रतिक्षणध्वंसितामात्रे सर्वसामर्थ्याभावलक्षणस्यासत्त्वस्य भावात् स्वरसविनाशितया [?? नापि संयोगाद् विनाशमनुभवन्तीन्ध(न्ध)नादय इति ??] प्रतिविहितमेव। तथापि किञ्चिद् उच्यते–तत्रेन्धनादीनामग्निसंयोगावस्थायां वितयमुपलभ्यते–तदे
१५ वेन्धनादि, कश्चिद् विकारः, तुच्छरूपस्त्वभावः कल्पनाज्ञानप्रतिभासी, तत्राग्न्यादीनां क व्यापार इति वक्तव्यम्। न तावद् इन्धनादिजन्मनि स्वहेतुत एवैषामुत्पत्तेः। नाप्यङ्गारादौ विवादाभावात् अग्न्यादिभ्योऽङ्गाराद्युत्पत्तावपीन्धनादेरनिवृत्तत्वात् तथैवोपलब्ध्यादिप्रसङ्गः। न चाङ्गारादिभ्यः काष्ठादेर्ध्व(ध्वं)सार्थोऽयं दोषः। ततो वस्तुरूपापरध्वंसोपगमेऽपि काष्ठादेस्तदवस्थात् पुनरपि स्वार्थक्रियानिवृत्तेर्यत्क(?)प्रसक्तिः। ततोऽप्यपरतथाभूतध्वंसोत्पत्त्यभ्युपगमेऽप्यनवस्था वाच्या। अथ भावान्तरमेव
२० प्रध्वंसाभावः नापरः तत् कथं काष्ठादेस्तथोपलब्ध्यादिप्रसङ्गः? नैतदेवम्। यतः 'काष्ठादेरङ्गारादिरेव ध्वंसो नापरः' इत्यत्र किञ्चिन्निबन्धनं वाच्यम्, तस्मिन् सति तन्निवृत्तिरिति चेत्, न; तुच्छस्य भावनिर्वृत्त्यनङ्गीकरणेऽङ्गारादिकमेवार्थान्तरं निवृत्तिशब्देनोक्तम्। ततश्चायं वाक्यार्थः–अङ्गारादिभावभावात्(?)काष्ठादेरङ्गारादिकं ध्वंस इति। न(?)चाङ्गारादेर्भावस्यात्मनि हेतुत्वविरोधात् अप्रस्तुताभिधानं च प्रसक्तम् अत्र्या(ग्न्या)दिभ्यस्तदुत्पादाभिधानात् काष्ठादीनां निवृत्तौ प्रस्तुतायामर्था
२५ न्तरविधाने तेषामनिवर्तनात्।

यदप्यभ्यधायि 'बुद्धि-प्रदीपादयो येऽप्यनु(नुप)जातविकारा ध्वंसमासादयन्ति तेऽप्यात्मा-व्यक्तरूपां(पतां)विकारान्तरम(मे)व ध्वंसमनुभवन्ति' इति, तदप्यसङ्गतम्; बुद्ध्यादीनामात्मरूपविकारापत्तौ प्रमाणाभावात् आत्मनश्चासत्त्वात् कथं तद्रूपता बुद्ध्यादीनां विकारः? 'न च परिणामः सम्भवति' इति प्राक् प्रतिपादितम्। प्रदीपादेस्तु अर्थक्रियाभावः कार्यदर्शनादनुमेयः तस्याती-
३० न्द्रियत्वात्। न च ध्वस्तस्य प्रदीपादेः किञ्चित् कार्यमुपलभ्यते यतस्तद्व्यक्तभावानुमितिः स्यात्। तच्च भावान्तरं प्रध्वंसाभावः। भावान्तरस्य च प्रध्वंसत्वे तद्विनाशाद् घटाद्युन्मज्जनप्रसक्तिः। न च

१-ता भवेत्प्रतीता भां॰ मां॰ आ॰।-ता भावेप्रतीता हा॰ वि॰। २-रहे चेत वा॰ बा॰ विना। ३-सम्भविते-भां॰ मां॰ आ॰ हा॰ वि॰ ४-कत्व सि-वा॰ बा॰ विना। ५ तिदे॰ वा॰ बा॰। ६-वृत्तिनंवेश-वा॰ बा॰ विना। ७ तत्रा क्ष-आ॰। तत्या क्ष-हा॰ वि॰। ८ स्थैर्य नि-वा॰ बा॰ विना। ९-त्वात्न-भां॰ मां॰। १० पृ॰ १२० पं॰ ११। ११-घटामुनुद-वा॰ बा॰। घटादिष्वनु-हा॰। घटादृवनुद-वि॰। १२-र्ताभूता-भां॰। १३ स्थायां त प्रतय-वा॰ बा॰। १४ न वा-वा॰ बा॰ हा॰ वि॰। १५-ष्ठादेर्ध्वतापार्थ दो-भां॰ मां॰।-ष्ठादेर्ध्वतान्नायं आ॰।-ष्ठादेर्धतात्तायं हा॰ वि॰।-ष्ठादेर्दिग्मत्तत्वार्थ वि॰सं॰। १६-वाच्यं दो-वा॰ बा॰। १७-निवर्तत्र-वा॰ बा॰।-निवृत्तेर्वर्तत्र-भां॰ मां॰।-निवृत्तेर्वतवंत्र-हा॰।-निवृत्तेर्वर्तत्र-वि॰।-निवृत्तेर्वर्तत्र-वि॰ सं॰। १८-वृत्त्यसंगी-वा॰ बा॰। १९-न्तर नि-वा॰ बा॰ विना। २०-रादिभावित्रा-वा॰ बा॰। २१-रादिक ध्वं-भां॰ मां॰। २२-रादिभावेङ्गारादिर्भावः स्वात्मनि भां॰।-रादिभावेङ्गारादेर्भावः स्वात्मनि आ॰।-रादिभावे देगार आत्मन्नि वा॰ बा॰। २३-वामनय-वा॰ बा॰। २४ पृ॰ २११ पं॰ २। २५-ति तत्पा स्वरूपापां वि॰ वा॰ बा॰। २६-मवान्तर-बा॰। २७-भावता हा॰ वि॰।

कपालादेर्भावरूपत्वेन ध्वस्ता प्रागभावात्मकतेति नायं दोषः भावान्तररूपध्वंसाभावस्य तद्भावे प्रच्युत-त्वात् । न च एतस्य प्रागभावस्याविनाशितायामनित्यत्वेन कृतकत्वस्य व्याप्तिः सिध्येत् अकृतकत्वे त्वभ्युपगम्यमाने भावान्तरकार्यात्मकत्वं(त्वं ध्वंसो)न भवेत् । प्रध्वंसाभावाविनाशे तु सर्वदा प्रध्वंसकता(सत्कता)यात् घटादीनां सत्ता न भवेत् । ततो यथा कारणस्वरूपः प्रागभावः कार्यो-दये कारणनिवृत्तौ निवर्तते—अन्यथा तदात्मकत्वायोगात्—तथा कार्यात्मा ध्वंसाभावोऽपीति नष्टेघ- ५ टादिभिः पुनर्भवितव्यमेव । न च यथा हेतुवधे देवदत्तस्य न पुनः प्रादुर्भावः तथेहापीति वक्तव्यम्, देवदत्तहेतुर्देवदत्तमरणरूपत्वात् तस्य दण्डादिकृतत्वात् । तत्र कपालादिरूपं भावान्तरं घटादे-र्ध्वंसः तत्र कारकव्यापारानभ्युपगमात् क्रियाप्रतिषेधमात्रप्राप्तेः अकारकत्व वा हेतुकत्वादहेतुमत्त्वा-भ्युपगमोऽभावस्य विरुध्येत । हेतुमत्त्वेऽभावस्य कार्यत[illegible]
त्वाभ्युपगमात् । तथाहि—यत् स्वकारणसद्भावे भवति [illegible]
धर्मो च कथं न भावः ? यतो 'भवति' इति भावः [illegible]
भावरूपलभ्यते, तच्चेदभावेऽप्यस्ति कथमसौ न भा(भा)वः ? न चाभावस्यासामर्थ्य भावशब्द-प्रवृत्तिनिमित्तम् तथा(तथा)भावे नास्तीति वक्तव्यम्, सर्वसामर्थ्यविकलत्वे तस्य प्रतीतिविषयताऽ-भावात् कथं हेतुमत्त्वावगतिः ? प्रतीतिजनकत्वे वा कथं न सामर्थ्ययोग्यता ? अथ कार्यत्वे सत्यपि यथा घट-पटादीनां भेदः प्रतिनियतविज्ञानविषयतया तथा भावाऽभावयोः समानेऽपि कार्यत्वे १५ सत्प्रत्ययविषयस्य भावता असत्प्रत्ययविषयस्य चा(चा)भावरूपतेति, असदेतत्, असत्प्रत्ययविषयत्वे कार्यताऽप्यस्य दूरोत्सारितैव । अथ स्वहेतुभावे भावात् कार्यता अस्य तर्हि कथं न सत्प्रत्ययं(य)-विषयता ? तथाहि—यदसौ 'भवति' इति प्रतीयते 'सन्' इत्यपि प्रतीयेत, नहि 'अस्ति' 'भवति' 'सद्भावः' इति शब्दानां कश्चिदर्थभेदो विद्वद्भिरिष्यते, अथ वा(चा)भावात्मकतयैवासौ भवति, न; व्याहतत्वात् । यतो 'न भवति' इत्यभाव उच्यते स कथं भवतीति ? स्वमाहिणि ज्ञाने प्रतिनियतेन २० रूपेणाऽप्रतिभासनात् 'अभावः' इत्येतदपि न वक्तव्यम्, अत्यन्तपरोक्षचक्षुरादीनामप्यभावता-प्रसक्तेः । न चाभावस्य भवतिषु पर्युदासात् प्रसज्यप्रतिषेधो भिद्यते, नञाऽसद्रूपत्वस्य विधानात् स पर्युदासाद् भिद्यते असद्रूपस्य भवनविरोधात्, 'भवति' इति हि भूत्वा सत्तयाऽभिसम्बध्यते, एवं कथमसद्रूपस्य विधानं विधिः सर्वदा प्राधान्यात् ? नञर्थश्च पर्युदास एवैको भवेत् यतो यदि कुत-श्चित् किञ्चिन्निवर्तेत तदा तत् पर्युदासेन तद्व्यतिरेकि परामृश्येत न चैवं भवति, 'निवृत्तिर्भवति' २५ इत्युक्तेऽर्थान्तरस्यैव कस्यचित् सर्वत्र विधानात्, एवं वस्त्वन्तरमेवोक्तं स्यात् न तयोर्विवेकः, अवि-वेके च न पर्युदासः । अपि च, यद्यग्न्यादिभ्योऽभावो भवेत् तद्भावे काष्ठादयः किमिति नोपल-भ्यन्ते ? न ह्यग्न्यादिभ्यो ध्वंससद्भावेऽपि काष्ठादयो निवृत्ताः ध्वंसोत्पादन एव अग्न्यादीनां चरि-तार्थत्वात् काष्ठोपमर्देन ध्वंसस्योत्पत्तेः । न तेषामुपलब्धिरिति चेत्, कुतः पुनस्तदुपमर्दः ? नैं तावत् प्रध्वंसाभावात् काष्ठादिसत्ताकाले तस्याभावात् । नाग्न्यादिभ्यः ध्वंसाविर्भावि(व)न एव तेषां ३०

१-यतेव बा० बा० विना । २ सिद्धेतुः अकृ-बा० बा० । ३ प्रध्वंस इति वान् च-बा० बा० । ४ पुनर्भवितव्य-बा० बा० । पुनर्भवितव्य-भां० । पुनर्मुक्तव्य-भां० । ५-वा हेतुवन्धे बा० बा० ।-वा हेतुवन्धे दा० वि० । अत्र 'हन्तुवधे' इति पाठः स्यात् । ६ अत्र 'देवदत्तहन्तुर्देवदत्तमरणरूपत्वात्' इति संभाव्यते । ७ वा हेतुमत्त्वाभ्युप-आ० दा० वि० । वा हेतुमत्त्वाभ्युप-भां० भां० । ८ भवतः न चा-बा० बा० । भव नथा-दा० वि० । ९-वा भवे भां० भां० ।-वा भावं ना-दा० वि० । १०-स्य प्र-बा० बा० विना । ११-प्रर्यायो-बा० बा० विना । १२ घटापटादी-बा० बा० भां० भां० । घटादी-दा० । १३-नां भेद प्र-बा० बा० विना । १४-यस्य वा भावरूपतेति बा० बा० विना । १५ तथाय इ-बा० बा० । १६-कतावा चासौ बा० बा० ।-कतायैवासौ आ० दा० वि० । १७-त्वात् यैतो बा० बा० । १८-भावस्येतेतदपि न च च-बा० बा० । १९-शुद्धानीम-बा० बा० । २० यास्य आ० दा० वि० । २१-निविषु प-बा० बा० ।-विवृष्णु प-वि० । २२-चने सद्रू-बा० बा० । २३-यतीतिति हि बा० बा० । २४ एव क-आ० । २५-यनः स-बा० बा० । २६ सर्वदाऽप्रा-भां० । सर्वद प्रधानात् बा० बा० । २७-वर्तते त-बा० बा० । २८ न चैकं भ-बा० बा० । २९-वस्त्वादि-बा० बा० । ३०-द्भावे को काष्ठाद-बा० बा० । ३१ हत्यादि-आ० दा० वि० । ३२ एवात्मादी-बा० बा० । ३३ न भावत् बा० बा० विना । ३४-ध्वंसाद्यात् काष्ठादि-भां० भां० आ० दा० वि० । ३५-त्साविन एव तेषां भां० भां० ।-त्सादेर्भावनं एव तेषां आ० दा० वि० ।

व्यापारात्। न चोत्पन्नः प्रध्वंसाभावः काष्ठादीनुपमर्दयति तद्यौगपद्यप्रसङ्गात्, तथा च सत्त्वविरोध-
प्राप्तिः। ध्वंसेन च काष्ठादेर्विनाशने विकल्पत्रयस्य तदवस्थत्वात् ततश्चानवस्था। न च ध्वंसेनावृ-
त्वात् काष्ठादेरनुपलम्भः तदवस्थे तस्मिन्नावरणायोगात् ततो विकारभावे वा पुनरपि विकल्पत्रयान-
निवृत्तिः। किञ्च, यदि हेतुमान् विनाशस्तदा तद्भेदात् भ(स) भेदं किं नानुभवेत्? कार्या(र्य)-
५णो हि घटादयः कारणभेदाद् भेदमनुभवन्तोऽध्यक्षत एवावसीयन्ते, नैवमनासादितभावान्तरस्व-
रूपः प्रच्युतिमात्रस्वभावो ध्वंसः तस्याप्यभिघातादिहेतुभेदेऽपि तुल्य(च्छ)रूपतयैव सर्वत्र विक-
ल्पज्ञानेऽप्यवभासनात्। नहि 'अभावो भावः' इति तुच्छरूपतामपहायापरं तस्य किञ्चिद् रूपमीक्ष्यते हेतु-
मत्त्वे च तदवस्थस्तस्य विनाशप्रसङ्गः। अथ विनाशस्य विनाशहेतुर्न दृष्ट इति नासौ विनश्यति।
तदुक्तम्—

१० "घटादिषु (?) यथा हेतवो ध्वंसकारिणः।
नैवं नाशस्य सो हेतुस्तस्य सञ्जायते कथम्?" [ ] इति।

नन्वेवं बुद्ध्यादीनामप्यविनाशिताप्रसक्तिः विनाशहेत्वदर्शनात्। अथात्राऽदृष्टोऽपि ध्वंसहेतुः
कल्प्यते अहेतुकविनाशानुपपत्तेः अन्यत्र तस्य हेतुमत्त्वदर्शनात्, बुद्ध्यादीनां चोत्तरकाले स्वरूपा-
संवेदनात् अवस्थितरूपत्वे च तेषां तदयोगादिति, असदेतत्। स्वसंविदितत्वानभ्युपगमे बुद्ध्यादी-
१५नाम् [illegible]। तथाहि—यथा घटादयो भावा न सर्वदैव ज्ञानविषयतामुपगच्छन्ति तथा
बुद्ध्यादयोऽपि ज्ञानान्तरसंवेद्याः सन्तोऽपि नावश्यमनुभवपथमुपयास्यन्तीति कुतस्तेषामनुपलम्भा-
दभावनिश्चयः? न [illegible] नामन्यथा(था)ऽप्यनुपलम्भाद् [illegible] बुद्ध्या [illegible]
[illegible], न च कार्यनिवृत्तिः कारणाभावं गमयति, "न हि अवश्यं कारणानि कार्य-
वन्ति" [ ] इति न्यायात् केवलमनुपलभ्यमाना बुद्ध्यादय उपलम्भप्रत्ययान्तरेण
२०न [illegible] इति [illegible]। येषां त्वर्थान्तरसमधिगम्या बुद्धिस्तेषां चक्षुरादीनामिव कार्या-
[illegible] प्रम(प्रमा)णो भवेत्? अथवा परोक्षार्थस्थितरूपा बुद्धिस्तथा [illegible]
[illegible], न [illegible] घटादीनामिव विनाशकारणमुपपद्यताम्, ततोऽदृष्टोऽपि यथाऽस्या विनाश-
हेतुः [illegible] कल्पनाम्, ततो विनाशोऽपि [illegible]
[illegible] घटादीनां पुनरनुत्पत्तिप्रसङ्गः। य(न)नोऽयमहेतुर्निःस्वभावोऽनुपा-
२५[illegible] काष्ठादिष्वङ्गारादिकमेव जनयन्ति, काष्ठादयस्तु [illegible]
[illegible]। [illegible] प्रतिपद्यते, तदपि(?) वा(वा)ऽनोऽपि
[illegible] [illegible], न चैतद् विपरीतं [illegible] 'अकिञ्चिद्रूपो ध्वंसः' इति।
[illegible] इति [illegible] नागतो बहुना। तत्र "विनाशस्य

[illegible footnotes]

मे तस्य किञ्चिद् भवति, न भवत्येव केवलम्, अन्यथा कदाचिद् विधाने न भावो निवर्तितः स्यात्" [ ] इत्येतदनुपपन्नमभिधानं भवेत्।

गुपलम्भादिति चेत् सैव्यनुपलम्भोऽयं भवत्यात्मादेः सत्तया अनियर्तकोऽन्यत्र कथमन्यथाभावं निवर्तयेत्? न चात्मनोऽनुमानेनोपलम्भादिति वाच्यम्, यतोऽनुमानेऽप्यनुपलम्भ एव हेतोः विपक्षवृत्तिं कथं निवर्तयति? अथ कृतकाकृतकानां पदार्थानां हेतुकृतविनाशेतरस्वभावदर्शनाद्व्यभिचारः यदैवं धर्मेण घटादेः कृतकस्य विनाशकारणवशाद् विनाशो दृष्टः स एव तत्तया निश्चीयताम् नान्या कृतकत्वसाधर्म्यमात्रेण। नहि पक्षे सपक्ष एव स्वहेतुसन्निधिसापेक्षस्याप्यदर्शनभाविना-१०

भाविता भवेत् न चैवं सर्वत्र[!! कृतकः स(विनाश)स्योपलब्धेरिति, असदेतत्, भवतु समस्तवस्तु- ... पजातध्वंसस्य कस्यचित् १५
...दिविप्रकृष्टेषु भावेषु कथं
...तथापि कालान्तरे तदा
...गभावस्तद्विनाशो वा
सम्भवतीति प्रतिपादितम्। ततोऽसमर्थो विनाशहेतुरिति स्थितम् व्यर्थश्च। तथाहि–यदि स्वभावतो नश्वरो भावः न किञ्चिद् विनाशहेतुभिः तत्स्वभावतयैव तस्य स्वयं नाशतः–नहि स्वयं पतति २०
पातप्रयासः फलवान्। अथानश्वरस्तदा तत्स्वभावस्यान्यथाकर्तुमशक्यत्वाद् व्यर्थो नाशहेतुः। न चैवं च(च)रूपतायां तदुपयोगः, यतो नास्माभिः चौर्ये भावानां व्यापारः प्रतिक्षिप्यते किन्त्ववलरूपेण। ... प्रसङ्गः !!]

तथाहि—उदयकाले यः स्वभावः स्थिरः तत्समाय यथायमन्तेऽपीति पुनस्तावन्तमेव कालं तिष्ठेत्, तथा सैदन्तेऽपि तावन्तमपरम् कालान्तरस्थितिरूपस्योदयकालभाविनः स्वभावस्य तदन्तेऽपि भावात्। न हान्तेऽपि क्षणान्तरसम्भवस्तदैवस्वभावत्वात् अकिञ्चित्करस्य च विरोधित्वाऽयोगात् तत् कथं तदपेक्षोऽयं निवर्तेत? दण्डादिप्रपातसमयेऽस्य प्रच्युतिलक्षणः स्वभावः स किं भोगासीत् येनाऽसौ ३०

---

१ "न तस्य किञ्चिद् भवति, न भवत्येव केवलम्"–आप्तमीमां० प० २ श्लो० ५२ अष्टश० पृ० २८ पं० १०। अष्टसह० पृ० २०० पं० ११। २–धाने भावो भो० मो०। ३–स्यप्र–बा० बा० विना। ४–कानां कृतकानां आ०।–कानां कृताकृतानां बा० बा०। ५–सिताक्ष्यै–भो० मो० दा० वि०।–सिताक्ष्यै–आ०। ६ नत्वनु–आ० दा० वि०। नचनु–भो० मो०। ७ न चात्मानु–भो० मो०। न चात्मानु–आ० दा० वि०। ८ न या–आ० दा० वि०। ९ पृ० १४६ पं० १८। १०–स्यान्य–बा० बा०। ११–तवैतस्यो–बा० बा०। १२–पूर्वं ए इदं न विफल्यापत्ति हे–बा० बा०। १३–पि कर–बा० बा० विना। १४–शादिम–बा० बा०। १५–कानां विनाश भो–दा० वि०। १६ सम्भवानि आ० दा० वि०। १७–भाया न आ०।–भाय न दा०।–भावे न वि०। १८–तक प्रा–बा० बा० भो० मो० विना। १९ च बल–बा० बा० विना। २० कार्ये भा–बा० बा०। २१ किन्त्वबल–भो० मो०। २२–नामुद्भूताभावस्वभावपूर्वस्तु पूर्वस्तु पूर्वको भो० मो०।–नागुद्भूताभावस्वभावपूर्वस्तु पूर्वको आ०।–नासद्भूताभावस्वभावपूर्वस्तु को प्रत्युत–दा० वि०। २३ स स्वस्य स्वभा–भो० मो० आ० दा० वि०। २४ न तत्स्वभावे यु–बा० बा०। २५ च स्वभावो युक्तः न च स्वदे–भो० मो०। २६–तुभिरिति च निय–बा० बा० भो० मो० विना। २७–दानां–तरे आ० दा० वि०। २८–पि नाशात् बा० बा०। २९ तदन्तेति ता–बा० बा०। तदान्तेपि ता–आ०। ३०–भाविनश्च भा–आ०।–भाविन स्वभा–बा० बा०। ३१ माद्गामी–बा० बा०।

म निवृत्तः ? तर्हि तदभावेऽपि पररूपेणायं निवर्त्तते स्वरूपं च तदेवास्य प्रागपि कथं न निवृत्तिः ? हेतवश्चानुपकार्यापेक्षायां नियुञ्जानाः स्वकार्यमात्मनोऽस्थानपक्षपातित्वमाविष्कुर्युः, न च भवता- प्यकिञ्चित्करमपि मुद्गरादिकमपेक्ष्य कथं प्रवाहो निवर्त्तते इति वाच्यम् यतो न निरंशक्षणव्यति- रेको(क्य)परः प्रवाहो विद्यते यो निवृत्तावकिञ्चित्करं मुद्गरादिकमपेक्षते किन्तु परस्परविविक्ताः १५ पूर्वापरक्षणा एव, ते च स्वरसत एव विरु(निरु)ध्यन्त इति न क्वचिदकिञ्चित्करापेक्षानिवृत्तिः अतो मुद्गरादिरहिता सामग्री अविभक्तं कार्यं सम्पादयन्ती तत्सन्निधाने विभक्तं कार्यान्तरं जनयति न तु मुद्गरादयः कारणसामर्थ्यं खण्डयन्ति, विकल्पत्रयस्यात्रापि पूर्वोदितस्य प्रसङ्गात् । अतो यदुक्तम्—

"स्वभावोऽपि स तस्येत्थं येनापेक्ष (?) निवर्तते ।
१० (?) विरोधिनं यथाऽन्येषां प्रवाहा मुद्गरादिकम्" ॥ [ ] इति,

तदपि प्रतिक्षिप्तं द्रष्टव्यम् । अथायं विकल्पः सर्वत्रगत्वादसारः (?) तथाहि—उत्पादेऽप्येवं शक्यते एव वक्तुं स्वभावतो ह्युत्पत्तिस्वभावस्य न किञ्चिदुत्पत्तिहेतुभिस्तत्स्वभावतयैव स्वयमुत्पा- दात्, अनुत्पत्तिस्वभावस्य तु स्वभावतो व्यर्था उत्पत्तिहेतवः तद्भावान्यथात्वस्य कर्तुमशक्ना- दिति, नैतत् सारम्; यतो यद्युत्पत्तिरभूत्वा भवनलक्षणैव—अन्यथा तदयोगात्—स्वभावो यस्य १५ स तथोच्यते तदा सिद्धसाधनमेव, यस्य ह्यभूत्वा भ(?)वत्सम्पन्नस्तत्रोत्पादहेतूनां व्यापारो- ऽस्माभिरभीष्टत्वात् सतो निवर्त्तयितुमशक्यत्वात् कार्य-कारणयोः सहभावेनानिवृत्तेः, अथोत्पत्तौ स्वभाव आभिमुख्यलक्षणो यस्य सन्निहितसर्वकारणकलापानन्तरभाविन इत्यभिधातुमभिप्रेतं तदा कथमस्योत्पत्तिहेतूनां वैयर्थ्यम् ? नहि तथाभूतकारणवशात् तथाव्यपदेशहेतोर्व्यर्थता युक्ता । अथ द्वितीयो विकल्पः सोऽप्यनुपपन्नः यतोऽनुत्पत्तिर्भावप्रतिषेधमात्रं स्वभावः सर्वसामर्थ्यविरह- २० लक्षणस्याभावस्य तत्र चानभ्युपगमाद्धेतुव्यापारस्य सिद्धसाध्यतैव, न ह्युत्पत्तिहेतवोऽभावं भावी- कुर्वन्ति, भावेष्वपि परिणामस्तावदयं न सम्भवति मुत(किमुत) नीरूपेऽभावे ? नन्वे(न्वे)वं कथ- मसदुत्पद्यत इत्युच्यते ? कारणानन्तरं यः सद्भावः स प्रागसन्नित्ययमत्रार्थः न पुनरभावो भाव- मापद्यत इति न कश्चिद्दोषः अन्यथानुपपत्त्यावनन्तरभावाभावे धर्मो यस्यासन्निहितकारणस्य च स एवमभीष्टस्तदापि तत्राऽसत्त्वादेव कारणानां व्यापारो न भवतीति न काचित् क्षतिः, लोके योग्यता- २५ धर्मोऽनागत एवोच्यते, न च तस्य शशविषाणस्येव तीक्ष्णतादिगोचराणामिव भावाभावानां विक- ल्पानां सम्भवः, न च यदि निर्हेतुको भावस्य विनाशः उत्पादोऽपि तथैवास्तु भावभाव(?)धर्मत्वा- विशेषात् यतो न विनाशो नामाऽन्य एव कश्चिदुदयापवर्गिणो भावात् भावश्च स्वहेतोरेव तथाभूत उत्पन्नो न कश्चिद्धर्मोऽस्या(?)न्निमित्तः केवलं तमस्य स्वभावं पश्यन्नपि मन्दबुद्धिर्न निश्चिनोति सदृशा- पराऽभावात् यदा तु विसदृशः(श)कपालादिविधुरप्रत्ययोपनिपाताद् उत्पद्यते तदा प्रागेव तस्य ३० विगमात् प्रत्यक्षनिबन्धनो निश्चय उत्पद्यते, अनुमानतो भावानां सुविदुषां प्रागपि भवत्येव, यथैव विपर्यस्तरूपदर्शनेऽप्यतत्कारिपदार्थसाधर्म्यविप्रलम्भो न मारणशक्ति नि(निश्चि)नोति प्राक् पश्चात्तु विकारदर्शनात् तन्निश्चयः, न च शक्तिमन्तः शक्त्यो भेदमनुभवन्तीति प्रतिपादितं सौगतैः । आगम- च स्वभावस्य विनश्वरत्वेऽन्यानपेक्षणान्निर्हेतुको विनाश उच्यते इति स्थितमेतत् यथोक्तप्रकारेण तु

१-थाल्या प्रा-भा० हा० वि० । २-माविष्कु-वा० बा० । ३-यते भावा निवृ-भा० ।-यते भोनि निवृ-हा० वि० । ४ विरुध्यत इ-भां० । विरुध्यत इ-मां० । ५-रादिना र-वा० बा० विना । ६-र्हते हा-भा० । ७-धाने विभ-वा० बा० विना । ८ न तु मु-भां० मां० आ० हा० वि० । ९ । तथा-वा० बा० विना । १०-दर्थसारः वा० बा० । ११ तदयो-भां० मां० । १२-स्या भावस्त-वा० बा० । १३-भ्य स्ता भीष्ट-भां० मां० ।-भावास्ताभीष्ट-भा० ।-भावस्ता अभीष्ट-हा० वि० । १४-व्यापारो व० बा० । १५-ना वृ० वा० बा० । १६-स्य सन्निहि-भां० मां० । १७-मभिप्रेतः त-भां० मां० । १८-स्तु-वा० बा० । १९-पदार्थ-वा० बा० । २० धर्मो यस्या-भां० मां० । २१-धर्मानाग ए-वा० बा० । ध गम ए-हा० वि० । २२ भावनाश्च-वा० बा० । २३ कश्चिद्धर्मो स्या हा० वि० । २४ बुद्धी हा० वा० ।-बुद्धं प्र-वा० बा० । २५ यदा वि-भा० । यदा वि-हा० वि० । २६-विपर्यस्त-वा० बा० विना । २७-साधर्म्य म वा० बा० भा० हा० विना । २८ म कारण-वा० बा० विना । २९-शक्ति निनोति भा० ।-शक्ति निश्चिनोति हा० वि० ।-शक्ति मोति वा० बा० ।

मानतो भावानां क्षणक्षयः सिद्धः, प्रत्यक्षतोऽपि क्षणक्षयाधिगमे तद्व्यवहारसाधनानुमानं साफल्यमनुभवतीत्यपरे प्रतिपन्नाः। तदेवं प्रत्यक्षतः अनुमानतश्च क्षणिकत्वव्यवस्थितेः स्थितमेव तद्मूलाधारः पर्यायनयस्य ऋजुसूत्रवचनविच्छेद इति। तस्य ऋजुसूत्रतरोः 'तु:' अवधारणार्थः तेन तस्यैव न द्रव्यास्तिकस्य शब्दादयः शब्दार्थं गमयन्तः शब्दनयत्वेन प्रतीताः शब्द--समभिरूढैवंभूताख्यो नयाः शाखाप्रशाखा इवं स्थूलसूक्ष्मतर(सूक्ष्मसूक्ष्मतर)दर्शित्वात् ५ सूक्ष्मो भेदो विशेषो येषां ते तथा। यथा हि तरोः स्थूलाः शाखाः, सूक्ष्मास्तत्प्रशाखाः, प्रतिशाखा-अति(शाखाश्च) सूक्ष्मतर [illegible] (शाखा-प्रशाखा)प्रतिशाखारूपा [illegible] (-समभि-रूढैवंभूताख्यो नयाः द्र [illegible] (भिन्ना)दि-भेदाद् भिन्नं शब्दो ब्रूते [illegible] मतं वस्तु १० संज्ञाभेदादपि भिद्यमानं [illegible] एवाभिमतं वस्तु शब्दप्रतिपाद्यक्रियाः [illegible] प्रशाखाः प्रतिशाखामिव सूक्ष्मतममधिगच्छत्येवं बाह्यार्थाभ्युपगमपरः शब्द-समभिरूढैवंभूतभेदो नयगन्तव्यः।

[२ ऋजुसूत्रपदस्य द्वितीयां व्याख्यामाश्रित्य विज्ञप्तिमात्रवादः]

[पूर्वपक्षः-बाह्यार्थवादिभिः सौत्रान्तिक-वैभाषिकैः विज्ञप्तिमात्रस्य निराकरणम्]   १५

अथवा ऋजु बाह्यापेक्षया ग्राहक-संवित्तिभेदविकल्पविभागं बुद्धिस्वरूपमकुटिलं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः शुद्धः पर्यायास्तिकः।

ननु किमविभागबुद्धिस्वरूपावेदकप्रमाणसद्भावतो विज्ञप्तिमात्रमभ्युपगम्यते, आहोस्विदर्थ-सद्भावबाधकप्रमाणसद्भावतेरिति वक्तव्यम्। तत्र यद्याद्यः पक्षः स न युक्तः, यतस्तथाभूतविज्ञप्तिमात्रोप-ग्राहकं प्रत्यक्षं वा तद् भवेत् अनुमानं वा प्रमाणान्तरस्य सौगतैरनभ्युपगमात्। तत्र न तावत् २० प्रत्यक्षमर्थसंस्पर्शरहितं विज्ञप्तिमात्रमेवेत्यधिगन्तुं समर्थमर्थाभावनिश्चयमन्तरेण विज्ञप्तिमात्रमेवेत्य-वधारणाधिगमानुपपत्तेः। उक्तं च-

> "अयमेवेति यो ह्येष भावे भवति निर्णयः।
> नैष वस्त्वन्तराभावसंवित्त्यनुगमादृते" ॥   [श्लो० वा० अभाव० श्लो० १५]

न चार्थाभावोऽध्यक्षसमधिगम्यः अर्थविभागवत्त्वेन तस्योत्पत्तेः, न च तदभावेऽपि तस्या १५ भावः विज्ञप्तेरप्यभावप्रसक्तेः। न च नैमित्तिकाक्षजप्रतिभासे पक्षादिचतुष्टयं यथाऽसत्स्वप्नानुभवति तथा शुद्धस्फटिकप्रतिभा(भास)विषयस्यापि स्तम्भादेरपि नितरा(म)सत्वं यतस्तिमिरपरिकरितदृष्टिवत्-

---

१ तद् मूलधा-वा० बा० भां० मां०। अत्र 'स्थितमेतद् मूलाधारः' इति पाठः स्यात्। २-ऋजुसूत्र-भां०। ३ तस्य ऋ-वा० बा० विना। ४-स्तोर्थस्ते-भां० मां०। ५-दय र्थं ग-भां०।-दय शब्दार्थं ग-ह० वि०।-र्दार्थ ग-वा० बा०। ६-र्दार्थ ग-भां० मां० विना। ७ शाखा इव वा० बा०। ८-व सूक्ष्मसूक्ष्मतर-भां० मां० आ० हा० वि०। ९-खाः प्रतिशाखा अतिसूक्ष्मतरा प्र-भां० मां०।-खा सू-भां०।-खाः सूक्ष्मास्तत्प्रशाखाः सूक्ष्मा तत्प्रशाखाश्च स्वल्पतरा प्र-वा० बा०। १०-तरो स्थूलःसूक्ष्मसूक्ष्मतरा शाखा-रूपा अ-मां०।-तरो स्थूलःसूक्ष्मसूक्ष्मतरा शाखारूपा अ-भां०।-तरो स्थूलसूक्ष्मतराः शाखाः प्रशाखाः प्रतिशाखारूपा अ-वा० बा०। ११ स्थूलाः सू-आ०। १२-तरा शा-आ० हा० वि०। १३-रूपा दा-भां० मां० आ०। १४-वस्तु दिगादि-वा० बा० विना। १५ बुद्ध्यादयो भिन्न सूक्ष्माभिम-वा० बा०। १६ एवं ह्ये-आ० हा० वि०। एवत्संज्ञा स-वा० बा०। १७ तदेव स-वा० बा० विना। १८-य च स्थि-भां० मां०।-य च स्थि-वा० बा०। १९-भूताः भि-वा० बा० विना। २० भूताभेदाद्वा-वा० बा०। २१-भावानु-आ०। २२-शुद्ध-वा० बा०। २३ "तत्र भूताविज्ञप्तिमात्र(स्य)ग्राहकं प्रत्यक्षम् अनुमानं वा?"-प्रमेयक० पृ० २१ प्र० पं० १। २४-हतिति-आ०। २५ प्रमेयक० पृ० २१ प्र० पं० २। २६-भावेऽपि वा० बा०। २७ "न च तैमिरिकप्रतिभासे प्रतिभासमानेन्दुद्वयविवेकस्यैवोऽप्यमसत्त्वं [illegible] असत्त्वमिति अभिधातव्यम्"-प्रमेयक० पृ० २१ प्र० पं० ४। २८-दस्ता बाध-भां० मां०।

स्यार्थस्य बाध्यमानप्रत्ययविषयत्वादसत्त्वं युक्तम् न पुनः शुद्धदृगवसेयस्य तत्र बाध्यबाधो
यद्वा तैमिरिकावभासिनोऽपीन्दुद्वयादेरवैतथ्यमस्तु। न च बाध्यप्रत्ययावसेयस्य कथमवितथत्वमि
वक्तव्यम् बाध्यत्वाऽयोगात्।

तथाहि-दर्शनं वा बाध्येत, तत्रावभासमानो वाऽर्थः, प्रयोजनं वा? न तावदाद्यः पक्षः द
५स्योत्पन्नत्वात्। नाप्यर्थो बाध्यः प्रतिभासमानेन रूपेण तस्य सत्त्वात् अन्यथा प्रतीयमानताऽयोग
न च प्रतिभासोऽस्ति किन्तु तन्निर्भासि रूपमसत्यमिति वक्तव्यम् प्रतिभासमानं रूपं विभ्रतोऽ
सत्त्वे संविदोऽपि तथात्वप्रसक्तेः। अथार्थक्रियाविरहाद् भ्रान्तज्ञानावभासिनो हिमकरादेर्वैतथ्य
अयुक्तमेतत्; यतो यद्य(द्य)र्थक्रिया तत्र नोदिता तथापि पूर्वज्ञानावभासिनः कथं वैतथ्य
नह्यन्याभावादन्याभावः अतिप्रसङ्गात्। न चार्थक्रियानिबन्धनं भावानां सत्त्वमिति यत्र सा नोदि
१०तत् प्रतिभासमानमपि न सत्तामनुभवतीति वाच्यम् यतो यदि भावाः प्रयोजनमुपजनय
सत्तामनुभवन्ति तदा साऽप्यर्थक्रियाजननात् सत्तासंगता स्यात् साऽप्यपरार्थक्रियाजनना
इत्यनवस्थाप्रसक्तिः। अथ अर्थक्रिया प्रतिभासविषयत्वात् सती पदार्थमात्रा अपि तथैव सत
(त्या:) स्युरिति व्यर्थाऽर्थक्रिया अत एव तैमिरिकावभासिनः केशादयोऽपि सत्याः प्रतिभासवि
यत्वात्। न च बाधकवशात् तेषां वैतथ्यव्यवस्था, बाधकस्यैवानुपपत्तेः। यतस्तैमिरिकोत्पन्न
१५केशादेर्दर्शनान्तरं यदि बाधकं तदा वक्तव्यम्-एककालम् भिन्नकालं वा? यदि भिन्नकालं बाधकम
र्धायते तदा पूर्वदर्शनकाले नाऽपरम् अपरदर्शनसमये च न पूर्वमिति परस्परकालपरिहारे
प्रवर्तमानयोः कथं बाध्य-बाधकता? अथैककालं तद्बाधकम् तदा(दा)पि वक्तव्यम्-एकविषय
भिन्नविषयं वा? न तावदेकविषयम् तस्य सुतरां तत्साधकतोपपत्तेः नह्येकविषयं संविदन्त
तद्विषयस्यैव संविदन्तरस्य बाधकमुपलब्धम्। भिन्नविषयं संविदन्तरं स्वविषयमेव भासयि
२०समर्थम् न पुनर्विषयान्तरसंवेदनमुपदलयितुमलम्, नहि स्वविषयमवतरन्ती नीलसंवित् पी
[illegible]ल्लुं समर्था। न च दर्शनान्तरं पूर्वदर्शनाधिगतमर्थमसत्यमधिगच्छत् तस्य बाधकम्
यतस्तदपि दर्शनं स्वविषयीकृतं वा अस्वविषयीकृतं वा पूर्वदर्शनाधिगतमर्थमसत्यमधिगच्छत् त
बाधकं स्यात्? प्रथमपक्षे पूर्वदर्शनाधिगतोऽर्थं उत्तरकालभाविनि दर्शने परिस्फुटमवभासमान
सुतरां सत्यः स्यात् न वितथ इति कथं तत् 'तदसत्यम्' इत्यावेदयति? अथ द्वितीयः पक्षोऽ
२५भिमते तदाऽपि बाध्यदर्शने प्रतिभासमानस्यार्थस्य बाधकसंविदि प्रतिभासाभावात् कथं तस्य त
वैतथ्यव्यवस्थितिः? न च विषयान्तरस्य शुक्तिकादेस्तत्रावभासनात् रजतादेरलीकतेति वाच्यम् यतो
यदि शुक्तिकाज्ञाने केन करेण शुक्तिका प्रतिभातीति रजतादेर्भिन्नकालावभासिनः किमिति वैत
थ्यम् नर्थेन वैतथ्यप्रसक्तेः? अथानुपलम्भो बाधकं प्रमाणमुच्यते तदात्रापि वक्तव्यम्-एककाल
भिन्नकालो वा? तत्रैव यद्येककालः सोऽसिद्धः स्वप्रतिभासमये रजतस्यानुपलम्भायोगात्।
३०कालान्तरभावी रजतानुपलम्भः सैव तस्याभावं न पूर्वकालम्। न च भाविकाले पूर्वदर्श
नस्य[illegible] सद्दर्शनकालावधेरर्थस्याभावः अतिप्रसङ्गात्। तदेवं विचारदर्शनावभासि सर्व
वहिरर्थस्वरूपम् यथा स्वसंविन्निभासमानं विज्ञानस्वरूपम् तथा च तैमिरिकदर्शनावभासिनु-
इन्दुद्वितय[illegible] अतः प्रतिभासायोगात्। अथेन्दुद्वयादेर्बहिः सत्त्वे किमिति शुक्तरि न
[illegible]! यत्र हि बहिरर्थोऽस्ति तत्र योग्यदेशादिः [illegible] प्रतिभा

---

१ अन्यत्र [illegible]। २-त्मानां [illegible]। ३-वानोनां [illegible]। ४ [illegible] ५ [illegible]। ६ [illegible]। ७-काले वा [illegible]। ८ तत्रापि [illegible]। ९ [illegible]। १० [illegible]। ११-दा तथा [illegible]। १२ भाति [illegible]। १३ [illegible]। १४ [illegible]। १५ [illegible]। १६ [illegible]। १७ [illegible]। १८ [illegible]। १९-था [illegible]। २० [illegible]। २१ [illegible]। २२ [illegible]। २३ [illegible]। २४ [illegible]। २५-विदि [illegible]।

समासते यथा नीलादिः न चेन्दुद्वयं नरान्तरस्य तद्देशे प्रतिभाति तद्देशव्यवस्थितपुरुषान्तरसंविदि चन्द्रमण्डलस्य प्रतिभासनात् ततो ज्ञानाकार एवेन्दुद्वयं न बाह्यम्, असदेतत्, यतो न बहिरर्थाः सन्निधिमात्रेण ज्ञाने प्रतिभासमादधति किन्तु स्वसामग्रीवशात् अन्यथा अत्था(न्धा)दिदृशि प्रतिभासमादध्युः । अथ लोचनाद्यभावात् नान्धादिदृशि तत्प्रतिभासः, तद्वे(श्चे)दं तिमिरादिसामग्र्यभावात् शुद्धदृशि द्विचन्द्रद्वयादेरप्रतिभासमानत्व(त्वम्) । न च स्वसामग्रीवशात् ज्ञानाकारयुगलं संवि- ५
दि भासमानं ज्ञानस्वरूपमेव, बहिर्ग्राह्याकारतया प्रतिभासमानस्य इन्दुद्वयस्यान्तर्ग्राहकाकारतया-(भाऽ)प्रतिभासनात् ज्ञानरूपत्वायोगात् तद्रूपत्वे वा ग्राहकाकारतया प्रतिभासमानज्ञानस्यापि तथाप्रतिभासमानस्यार्थरूपताप्रसङ्गः। तत्र(च) बहिर्ग्राह्याकारतया प्रतिभासमानस्येन्दुद्वयादेर्ग्रहीतिरूपता, परिस्फुटविशददर्शनविषयस्य तु स्तम्भादेः सुतरां ज्ञानरूपतानुपपत्तिः । तच्च अध्यक्षं बहिरर्थोऽथवारि तदभावं गमयति । नै चाध्यक्षमभावग्राहि, तस्य तुच्छतया तद्विषयत्वायोगात् । न च वस्तुत्वात्तद- १०
दंशः प्रत्यक्षग्राह्यः इन्द्रियसम्बन्धाभावेन तस्यापि प्रत्यक्षत्वायोगात् तत्सम्बन्धस्तु योग्यताभावात् इन्द्रियस्य । उक्तं च—

"न तावदिन्द्रियेणैषा नास्तीत्युत्पाद्यते मतिः ।

भावांशेनैव संयोगो योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि" ॥ [श्लो० वा० अभाव० श्लो० १८] इति ।

तन्नोभयरूपोऽप्यर्थाभावोऽध्यक्षवेद्यः । १५

नाप्यनुमानं बाह्याभावमावेदयति, प्रत्यक्षाभावे तस्यायोगात् । न च प्रत्यक्षविरोधे अनुमानस्य प्रामाण्यं सम्भवति "प्रत्यक्षनिराकृतो न पक्षः" [ ] इति वचनात् । न च बाह्यार्थावेदकस्याध्यक्षस्य भ्रान्तत्वाच्च तेनानुमानबाधेति वक्तव्यम्, इतरेतराश्रयप्रसक्तेः । तथाहि-अर्थाभावे सिद्धे तद्ग्राहि अध्यक्षं भ्रान्तं सिध्येत्—अन्यथा कथमवितथार्थग्राहिणो भ्रान्तता—भ्रान्तत्वे च तस्य सिद्धे अर्थाभावानुमानस्ये(स्य) न तेन बाध्यते(बाधेति) व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम् । न च तद् २०
अध्यक्षमेव न भवति अनुमानेन बाधनादिति वक्तव्यम्, अनुमानेऽप्यस्य पर्यनुयोगस्य समानत्वात् । [!! तथाहि-बाह्याभावग्राहकस्य भ्रान्तत्वात् तेनानुमानबाधेति वक्तव्यम् इतरेतराश्रयदोषप्रसक्तेः । तथाहि-अर्थाभावे सिद्धे बलादनुमान(नं) प्रमाणमिति दर्शनाभावेऽप्यर्थाभावसिद्धिः तत्प्रतिबन्धसिद्धेः अध्यक्षमिति तस्मात् अन्यथा अनवस्थापत्तेरिति नानुमानवेद्योऽप्यर्थाभावः !!] ।

१-चा दि-भां० मां० ।-था दि प्रति-आ० । २-मध्या भा-भां० मां० । ३-मग्रीसमावेशात् आ० । ४ न चाध्य-आ० हा० वि० । ५ "संयोगो"-श्लो० वा० ।

६ "साध्याभ्युपगमः पक्षः प्रत्यक्षाद्यनिराकृत." । १४ ।
"प्रतिपाद्यस्य यः सिद्धः पक्षाभासोऽक्षलिङ्गत । लोक-स्ववचनाभ्यां च बाधितोऽनेकधा मत." ॥ २१ ॥
—न्यायावता० ।

"पक्षः × × × प्रत्यक्षाद्यविरुद्ध इति वाक्यशेषः"—न्यायप्रवेशसू० पृ० १ पं० ६ ।

"साधयितुमिष्टोऽपि प्रत्यक्षादिविरुद्धः पक्षाभास"—न्यायप्रवेशसू० पृ० २ पं० ११ ।

"प्रत्यक्षादयो वक्ष्यमाणलक्षणास्तैर्विरुद्धः निराकृतः प्रत्यक्षादिविरुद्धः । किम्? पक्षाभास"—न्यायप्रवेशसू० वृ० पृ० ११ पं० १८ ।

"स्वरूपेणैव स्वयमिष्टोऽनिराकृतः पक्ष इति" ॥ ४० ॥—न्यायबिन्दु० तृतीयप० ।

"अनिराकृत इति-एतल्लक्षणयोगेऽपि यः साधयितुमिष्टोऽप्यर्थः प्रत्यक्षानुमानप्रतीति-स्ववचनैर्निराक्रियते न स पक्ष इति प्रदर्शनार्थम्" ॥ ५० ॥ न्यायबिन्दु० तृतीयप० ।

"प्रत्यक्षनिराकृतो न पक्ष इत्यभिधानात्"-प्रमेयक० पृ० २१ प्र० पं० ६ ।

७-माने बा-भां० मां० विना ।

"न च बाह्यार्थावेदकाध्यक्षस्य भ्रान्तत्वात्त तेन अनुमानबाधेत्यभिधातव्यम्, अन्योन्याश्रयात्-सिद्धे ह्यर्थाभावे तद्ग्राहि अध्यक्षं भ्रान्तं सिध्येत् तत्सिद्धौ च अर्थाभावानुमानस्य तेन अबाधेति"-प्रमेयक० पृ० २१ प्र० पं० ६ ।

८-त्वात् तथाहि अर्था-आ० । ९-त्वा तेना-बा० बा० । १०-यम-बा० बा० । ११-ति त्वत्वात बा० बा० ।

अपि च, तदनुमानं किं कार्यलिङ्गप्रभवम्, स्वभावहेतुसमुत्थं वा, उतानुपलब्धिप्रभवमिति विकल्पत्रयम्। न तावत् प्रथम-द्वितीयपक्षौ कार्य-स्वभावहेत्वोर्विधिसाधकत्वाभ्युपगमात् "अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ" इधि वचनात् ("अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ" [न्यायबिन्दु० परि० २ सू० १९] इति वचनात्)। नापि अनुपलब्धिप्रसूतमिति पक्षः अनुपलब्धेरसिद्धत्वान्(रसिद्धत्वात्) बहिरर्थस्य प्रति-
५भासनात्। उपलभ्यानुपलब्धिस्वा(स्व)भावा(व)साधनी सा च नियतदेश-कालमेवार्थाभावं गमयति न सर्वत्र सर्वदेति न ततोऽपि सर्वथा अभावसिद्धिः। तद् भावबाधकप्रमाणाभावात् नार्थाभावतो विज्ञप्तिमात्रसिद्धिः।

अथापि स्यात् नार्थाभावद्वारेण विज्ञानमात्रं साध्यते अपि त्वर्थ-संविदोस्सहोपलम्भनियमा- [illegible] असदेतत्; अभेदस्य [illegible] विम्राणा संविका- [illegible] ऽश्रावणवत्(णत्ववत्) पक्षस्य प्रत्यक्षेण निराकृतेः, न वा(चा)भेदेऽपि प्रत्यक्षं भेदावभासमनुपलब्धामेन्दुद्वयादिवत् इति न तेव(तेन) बाधा यतो द्विचन्द्रादौ बाधादर्शनात् तस्य भ्रान्तत्वमस्तु स्तम्भादौ त्वर्थक्रियाकारिरूपोपलब्धि(ब्धे)स्तदभावास्त(त्स)त्यता ततो नील-बुद्ध्योर्भेद एव। असिद्धश्चायं हेतुर्मीमांसकमतेन वि-
१५ज्ञानव्यतिरेकेण बाह्यार्थस्यैवोपलम्भात् प्रत्यक्षार्थव्यतिरिक्तस्य तदा ज्ञानस्यानुपलक्षणात्। न चान्तः-सुखाज्ञा(द्या)कारज्ञानोपलम्भात् सिद्धो हेतुरिति वक्तव्यम्, सुखादेर्बाह्या(ह्य)संवेदनं प्रति व्यापारासंवेदनात्। नहि सुखादयः स्वरूपनिमग्नतया प्रतिभासमानास्तदैवार्थग्राहितया प्रतीयन्ते। न च समकालप्रतिभासनात् व्यापारमन्तरेणापि नीलादिग्राहकाः, तेषामपि तद्ग्राहकतापत्तेः। यदि च नीलां-(लादी)नां सुखादिकं ग्राहकं तथासति तदभावे नीलादीनां ग्रहणं न स्यात्। नहि यद् यद्ग्राह्यं तत्
२०तदभावे प्रतिभाति चक्षुरभाव इव रूपम् चक्षुःसमवधाने व(च) सुख(खा)भावेऽपि नीलमाभाति [!!] नापि तस्य तद्ग्राहकम्। यदि च सुखादिरूपैव संविद् नान्या एवंसति सुखाद्यभावेऽपि नीलादिकस्य स्फुटतया प्रतिभासात् तदा मानसस्य च सुखादेर्नीलाद्यवभासात्वेप्यवभासनत्वासिद्धो नीलादीनां ग्रहणं न स्यात् नहि यद् यद्ग्राह्यं तत् तदभावेऽिद्धयोः सहोपलम्भनियमः नियतकादाचित्कसहोपलम्भतो यो-

१ अत्र न्द्वो वा० वा० विना।

"अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ एकः प्रतिषेधहेतुः" ॥ १९ ॥–न्यायबिन्दुप्र०।

" 'अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ' इत्यभिधानात्"–प्रमेयक० पृ० २१ प्र० पं० ८। २-धनादिवचनाप्राप्यनु-भां० मां० हा० वि०।- धनाप्राप्यनु-आ०। ३-लब्धिर-भां० मां०। ४-द्धा च-आ०।

"अनुपलब्धेरसिद्धत्वात् बाह्यार्थस्याध्यक्षादिनोपलम्भात्। किञ्च, अदृश्यानुपलब्धिस्तदभावसाधिका स्यात् दृश्यानुपलब्धिर्वा ? प्रथमपक्षे अतिप्रसङ्गः। द्वितीयपक्षे तु सर्वत्र सर्वदा सर्वथा अर्थाभावाऽप्रसिद्धिः प्रतिनियतदेशादावेव अस्यास्तदभावसाधकत्वसंभवात्"–प्रमेयक० पृ० २१ प्र० पं० ९। ५-लब्धिस्थाने भा-वा० वा० विना। ६ तद्ग्रा-वा० वा०। ७-विदोपलम्भं-वा० वा० विना। ८-"द्विचन्द्रदर्शनवदिति विधिद्वारेणैव साध्यते"–प्रमेयक० पृ० २१ प्र० पं० १२। ९-दस्य प्रत्युक्षेण वा० वा०।-दस्य प्रत्युपेक्षण हा० वि०।-दृश्यस्य प्रत्युपेक्षण भां० मां०। "अभेदपक्षस्य प्रत्यक्षेण बाधनात् शब्दे श्रावणत्ववत्"–प्रमेयक० पृ० २१ प्र० पं० १२। १० पुरस्य कुटय-(पुरस्थं स्फुटय)-वा० वा०। ११ कुतोध्वंतंसं-मां०। कुतोध्वतंसवि-भां०। कुतोध्वंतसंविरि-वा० वा०। १२ शब्दे श्रावणाव-वा० वा०। १३-धिगमुप-भां० मां०।-धिगंमुमंप-वा० वा०। १४ बाध्य-द्-भां० मां०। १५ "अर्थक्रियाकारित्वस्यानुपलब्धौ तु तदभावात् सत्यता"–प्रमेयक० पृ० २१ प्र० पं० १४। १६-बुद्ध्यार्भे-आ०।-बुद्ध्यादेर्भे-वि० सं०। १७ न वान्तसु-भां० मां०। न वान्तासु-वा० वा०। न वान्तसु-हा० वि०। १८-पारसं-आ०। १९-लादीना सु-वा० वा० विना। २०-दिकं ग्रा-वा० वा० आ० विना। २१-भाति भाति चक्षु-वा० वा० मां० मां०। २२ एवंसन्ति भां० मां० हा० वि० विना। २३-लाद्याभावे आ० विना। २४ तदा ग्रा-वा० वा०। २५-खादेनी-वा० वा० विना। २६-लावभासायप्येवभा-आ० हा०।-लावभासायप्यवभा-वि०।-लावभासाभावेप्यवभा-वि० सं०।-लावभावप्येवभा-मां०।-लायप्येवभा-भां०। २७-भावाद्धियोः भां० मां० आ० हा० वि०। २८-म्भनियमःऽनयतका-वा० वा०।-म्भनियतका-भां० मां०। २९-म्भतो—यो नि-हा० वि०।-म्भन्तो योर्नि-वा० वा०। -म्भतोयपोर्नि-वि० सं०।

र्थयात्। अर्थस्य हि ज्ञानाधीनः प्रकाशः जडत्वात् न त्व(स्व)यम् ततो यदि स्वप्रकाशनं तथा-संवेदनं हेत्वर्थस्तदाऽसिद्धः(द्धिः) तदर्थस्य। अथ संवेदनसामान्यं स्वपरसंविदो हेतुः तस्य प्रतिबन्धो वाच्यः यतः साधारणं सत् तदर्थ-ज्ञानयोः ज्ञानात्मतामेव साधयति। अथापि 'संवेदन'शब्दो हेतुः सोऽपि प्रतिबन्धाभावादेव न साध्यं साधयति। किञ्च, तदा(था)संवेदनं नीलादीनामभावसा-
५ धनत्वेनोपन्यस्यते, उत ज्ञानात्मकताप्रसाधकत्वेन? यद्याद्यः पक्षः स न युक्तः, हेतोर्विरुद्धत्वप्रसक्तेः उपलब्धेः सत्तया व्याप्तत्वात् नह्यसदुपलभ्यते तथाभ्युपगमे वा ज्ञातावप्यसत्त्वप्रसक्तिः। न चार्थतो-ऽनुपलम्भे द्विचन्द्रादेरनुपलब्धिप्रसक्तिः तस्यापि सत्तायोगित्वप्रतिपादनात्। यदि वा संवेदनं सति ज्ञाने असति च चन्द्रद्वये उपलब्धमित्यनैकान्तिकमस्तु। अथ ज्ञानात्मकता तथासंवेदनात् साध्यते तत्रापि वक्तव्यम्-किं ज्ञानात्मकत्वेन नीलादेः संवेदनम्, उत व्यतिरिक्ततया? प्रथमपक्षे ज्ञानात्मकं
१० संवेदनं नीलादेर्हेतुः स चाध्यक्षसिद्धोऽभ्युपगन्तव्य इति नापरं साध्यमस्ति यदर्थं हेतुः स्यात्। द्वितीयपक्षेऽपि हेतुर्विरुद्धः भिन्नरूपं हि संवेदनं भेदमेव साधयति नैकत्वमन्यथा भेदोपरतिप्रसक्तेः तद्रूपमपि हेतुर्न युक्तः। इति न कुतश्चित् विज्ञप्तिमात्रसिद्धिः।

[उत्तरपक्षः-विज्ञानवादिभिर्योगाचारैः विज्ञप्तिमात्रस्य स्थापनम्]

अत्र प्रतिविदधति-यत् तावदुक्तम् 'कथं प्रत्यक्षप्रतीतवपुषां नीलादीनामभावः साधयितुं
१५ शक्यते' इति, तत्र प्रत्यक्षेणार्थपरिच्छेदाऽसंभवात् कथं नीलादीनां प्रत्यक्षपरिच्छेद्यता? तथाहि-प्रत्यक्षमर्थं तुल्यकालं वा प्रकाशयति, भिन्नकालं वा? तुल्यकालमपि प्रत्यक्षम्, परोक्षं वा? यदि प्रत्यक्षं ज्ञानमर्थात्मानं तुल्यकालमवभासयति तथासति यदैव ज्ञानमवभासतेऽध्यक्षतया तदे(दै)व नीलादिस्वरूपमपि परिस्फुटमाभाति स्वरूपनिष्ठयोर्द्वयोरपि प्रतिभासनात् कथं ग्राह्यग्राहकभावः? तथाहि-ज्ञानं नीलाकारविविक्तं स्वरूपनिमग्नं हृदि संवेद्यते अर्थस्तु तद्रूपपरिहारे(रेण) बहिः
२० स्फुटवपुः प्रतिभाति। न च दर्शनप्रतिभासकाले नीलं स्वरूपनिष्ठं प्रतिभातीति तद्ग्राह्यं ज्ञानस्यापि नीलावभासकाले प्रतिभासनात् तद्ग्राह्यतापत्तेः। न च दर्शनं बहिरर्थसंस्थितं प्रति ग्रहण-क्रियामुपरचयतीति तद् ग्राहकम् नीलं तु तत्प्रतिपत्तिप्रकाशतया ग्राह्यमिति वक्तव्यम्, नील-दर्शन-व्यतिरिक्ताया ग्रहणक्रियाया अभावात् यतो न तथाभूततद्वयव्यतिरिक्ता ग्रहणक्रिया प्रतिभाति न तामन्तरेण कर्तृ-कर्मते नील-बोधयोर्युक्ते अतिप्रसङ्गात्। भवतु वा तद्व्यतिरिक्ताऽपरा क्रिया तथा-
२५ पि परोक्षायां तस्यां नीलादेः कर्मत्वम् बोधस्य (कर्मत्वं बोधस्य) च कर्तृत्वमतिप्रसङ्गतोऽनुपपन्नं प्रतिभासमाना(समान)तनुः अभ्युपगन्तव्या तथाभ्युपगमेऽपि च किंचित्(किं) सा स्वरूपेण प्रतिभाति उत तद्ग्राहकतयेति वक्तव्यम्। प्रथमपक्षे क्रिया स्वरूपनिमग्ना प्रतिभातीति नीलम् बोधः प्रतिभाति चेति त्रितयं स्वतन्त्रमाभातीति न कर्म-कर्तृ-क्रियाव्यवहृतिर्युक्तिमती। न च परस्परस्वरूपविभिन्नानामेव कर्म-कर्तृ-क्रियाव्यवहारः, स्तम्भादेरपि तथापरस्परव्यवहारप्रसक्तेः। अथ ग्राहकतया
३० क्रिया प्रतिभाति तदा तस्या अन्यपरक्रिया विषयीक्रियमाणायाः कर्मता तत्क्रियाया अप्यपरक्रियान्तरविषयीक्रियमाणायाः कर्मतेति निरवधिः क्रियापरम्परा प्रसज्येत। अथा(थ) क्रियान्तरमन्तरेण स्वग्रहणक्रियाया ग्राह्यता, तन्नैवं नीलादेरपि ग्रहणक्रियाव्यतिरेकेण स्वप्रकाशवपुषः ग्राह्यता तथा च नीलादीनां स्वरूपमेव प्रकाशात्मकमिति विज्ञप्तिमात्रमेव तथ्यं भवेत्। अपि च, बोधकाले (बोधकाले) यदि संवेदनक्रिया विद्यमाना तदा समानकालतया प्रतिभासनात् कथं ग्राह्यता?

१ प्रकाशः प्रकाशः [illegible]। २-स्यात्स्वयम् ततो [illegible]-स्यात्स्वार्थं ततो [illegible]। ३-लिप तद्-[illegible]। ४-[illegible]। ५-दाव्दे हे-[illegible]। ६ [illegible]। ७ [illegible]। ८-[illegible] नु-[illegible]। ९ [illegible]। ११ [illegible]। १२-[illegible]। १३ [illegible]। १४-[illegible]। १५ [illegible]। १६ [illegible]। १७-र्द् बहिरर्थग्रहणक्रिया-[illegible]। १८-[illegible] क्रिया [illegible]। १९-[illegible]। २०-[illegible] कर्तृ-[illegible]। २१-[illegible]। २२-[illegible]। २३ [illegible]। २४ [illegible]। २५ [illegible]।

(यां) प्रति कर्तृता? नहि समानकालयोः सव्येतरगोविषाणयोरिव हेतुफलभावः। अथ बोधोत्तरकाल-
भाविनी क्रिया तथापि यदा ज्ञानसत्ता न तदा संवित्क्रिया यदा तु संवेदनक्रिया प्रतिभाति न तदा
ज्ञानप्रतिभास इति कथं हेतुफलभावः? न च पूर्वं स्वरूपेण बोधः प्रतिभातः पश्चात् नयनादिसामग्री-
वशात् संवेदनक्रियायुक्तो भातीति कर्ताऽसाविति वक्तव्यम् यतो यदा संवित्क्रियायुक्तो बोधः प्रती-
यते न तदा तत्पूर्वदशावगमः यदा च तदवगमः न तदा संवित्युक्तावस्थाधिगतिरिति न पूर्वापरका-
लावगतिस्तयोरवस्थयोः तदभावे च कथं बोधस्य ग्रहणं प्रति कर्तृतावगतिः? अथ नीलानुभवसमये
पूर्वदशां स्मरन् बोधस्यानुभवं प्रति कर्तृतां प्रतिपद्यते, अयुक्तमेतत्, नीलपरिच्छेदकाले बोध-ग्रहणयोः
परस्पराऽसंसक्तयोः समानकालयोः प्रतिभासनात् कर्तृतावगमासम्भवात्। न च बोधस्य पूर्वावस्था-
मध्यवस्था(स्थ)इपि स्मरणं ग्रहणावस्था(स्थां) प्रतिपद्यत इति कथं तत् कर्तृतामुद्द्योतयितुं प्रभुः(भु)?
न च बोधात्मैवात्मानमुपलभत इति कर्तृतावगतिः यतो यदा नीलग्राहकमात्मानं बोधः प्रतिपा(प)- १०
द्यते न तदा पूर्वसत्तामुभयकर्त्री(र्त्री) प्रतिपद्यत इति कथं ग्रहणं प्रति अनवनामात्मनोऽसावधिग-
च्छति? न च भाविनीमग्रहणावस्था(स्थां) नीलाऽवभासकालेऽसावध्यवसी(स्यति) प्रतिभासयोः
युगपद्विरुद्धयोरापत्तेः तस्मात् समानकाले(लो) बोधो न ग्रहणक्रियामुपजनयितुं समर्थ इत्य-
ग्राहक एव।

'किञ्च, यदि बोधो व्यतिरिक्तां ग्रहणक्रियामुपरचयति नीलस्य किमायातं येन तद् ग्राह्यं भवेत्? ५
विज्ञानं तद्ग्राहकमिति। न च संविदुत्पत्तावपरोक्षतया नीलमाभातीति ग्राह्यं संविदुत्पादेऽपि नैल्या-
प्रकाशात्मकस्य प्रतिभासायोगात्। तथाहि-नीलादिरर्थो जडरूपत्वात् न स्वयं प्रतिभासगोचरताम-
वतरतीति दर्शनं प्रकाशकमभ्युपगतम्, यदि पुनः स्वप्रकाशात्मकं नीलं स्यात् तदा 'निर्भासितं
नीलम्' इति पर्यायः एवाभ्युपगतो भवेत्। यथाप्रकाशात्मकं वस्तु तत् प्रकाशनक्रियायोगेऽपि नैव
प्रकाशते यतो न प्रकाशात्मा नीलं तद्वत्प्रति भेदप्रतिहतिप्रसङ्गात्। न चार्थाकारकार्यतया प्रकाश- २०
स्यार्थस्य प्रत्यक्षता, यतोऽपरोक्षाकाररूपत्वे तस्य प्रत्यक्षता युक्ता यथा नीलस्यार्थतायां नीलस्य
नीलरूपता न तु प्रकाशात्मनं(नः) कार्यस्योद्भूतेः अर्थकार्यतया हि तत्सन्निधिना प्रकाशस्य तद्रूपता
यथा नयनकार्यतया तत्सन्निधिना मे तु तत्स्वरूपं प्रकाशः। अथेन्द्रियाणां ज्ञाने स्वरूपाऽनर्पणाद्-
(दृमस्य)श्रता अर्थस्य तु तत्र स्वरूपपरिच्छेदात् प्रत्यक्षता, असदेतत्, अर्थस्य प्रत्यक्षरूपासम्भवात्
यतो न नीलादेः स्वरूपं बहिर्मुखतयाऽप्रतीतिः(?)यथाप्यपरा बहिर्मुखता तत्रापि तथापि स्वरूप- २५
मात्रनिमग्ना प्रतिभासमानमूर्तिः सा तृतीया सिद्धेति न तद्वशात् बोधस्य ग्राहकता सिद्धो(द्धा) तथा
नील-संविदोस्तुल्यकालं प्रतिभासनादपरव्यापाराभावतः स्वस्वरूपनिमग्नयोर्वेदक(कता) न च नीला-
त्तत्संवेदनद्वयस्य स्वरूपनिमग्नस्य सतत्त्वतयाऽवभासने तदुत्तरकालभावी कर्म-कर्तृमितिनिर्देशो 'नीलमहं
वेद्मि' इत्यवसायो न स्यात् नहि पीतदर्शने नीलोऽपि उपजायमानः संलक्ष्यते भवति च तदापश्च-
पश्चाद्भावी विकल्प इति तयोर्ग्राह्यग्राहकतेति वाच्यम्, मिथ्याविकल्पनया ग्राह्यग्राहकरूपताभावः पटि १०
च्छेदासम्भवात्। तथाहि 'नीलम्' इति प्रतीतिः पुरोवर्ति नीलमुल्लिखन्ती वर्तमानदर्शनानुसारिणी
भिन्ना लक्ष्यते, 'अहम्' इत्यात्मानं व्यवस्यन्ती स्वानुभवावस्था स्वरूपेण प्रतीयते, 'वेद्मि' इति
प्रतीतिरप्यपरैव क्रियाध्यवसितिरूपा परस्पराऽव्यतिमिश्रावभिन्नतया(प)मेतत्। अतः कर्म-
-कर्तृ क्रियाव्यवस्था।

भवतु वैवं व कल्पनाप्रतीति कर्म-कर्तृ क्रियाव्यवसायिनी तथापि नासौ ग्राह्यग्राहकता [illegible] १५
मृगतृष्णिकासु [illegible] । न चात्र बाधाभावः [illegible]
गम्यात्। तथापि कल्पनोल्लिख्यमानस्य कर्म-कर्तृभावस्य [illegible]
बाधक इति कथं न ग्राह्यग्राहकभावोऽसत्य? किञ्च आन्तरेऽपि प्रत्यये ग्राह्यग्राहक [illegible]

ग्राह्यग्राहकाकारद्वयस्य संवेदना(न)मेकं ज्ञानं भवेत् न चाकारद्वयमाभाति नीलं
भासनात्, नैतदेयम्, दृश्य-दर्शनयोरेकाद्विनिर्भासादेवाकारद्वयप्रतिभासाभावात्। यदि पु
ग्राहकाकारश्च पृथक् प्रतिभातस्ततो भेदप्रतिभासा(सात्) ज्ञानाद्वैतमेव न भवेत्
दर्शनयोरेकाकारोपलम्भादेकत्वं व्यवस्थितमिति भ्रान्तज्ञानायसेय इव रजताकारः
५ धिगम्योऽप्यसौ ज्ञानस्वभाव एव।

[?? न च बहीरूपतया प्रतिभासनाद् भ्रान्तसंविद्द्वयभासिनोऽपि रजतासिद्धाचसंवि
ज्ञस्य बाह्यार्थत्वेऽप्यव्यवहारो भेदप्रसक्तेः। न चे सत्यासत्ययोर्लौकिकेतराभ्यां व्यवहारभेदः
वभासिनस्तस्यालौकिकत्वपरिज्ञानाभावात्र तावदस्यालौकिकत्वम् तज्ज्ञानादेव तत्र तस्या
यदि तु तत्र प्रतिभासेत तदर्थक्रियार्थिनस्तत्र वृत्तिर्न भवेत्। अथालौकिकोऽपि रजतादि
१० तत्रावभासत इति प्रवृत्तिरेत्वे(स्त्वे)वमलौकिकतया तत्र भातीति विपरीतख्यातिरिति
प्रतिभासमानानां सत्यता। किञ्च, अलौकिके लौकिकं रूपं तस्य सिद्ध्यत् किं सत्यम्, उत
मवभाति? अथ सत्यम् न व्यवहारभेदः। यदि पुनरलौकिके यल्लौकिकं रूपमाभाति तद
पतया सत्यम्, नन्वत्राप्यलौकिके यल्लौकिकं प्रतिभातं तत् किं सत्यतया, उत असत्यतया
तया कथं प्रवृत्तिः? अथ सत्यतया कथमलौकिकं रूपं तस्य सिध्येत्? किञ्च, येन
१५ प्रतिभातं स्वरूपेण न गृह्यते किं वा लौकिकत्वं परेणालौकिकेतररूपेण गृह्यते तदप्यपरे
(र)वसानो(ना) लौकिकपरम्परा समासज्येत। ??]

विरोधस्तथाहि यदि तदा ख्यातिः कथं स्वरूपविरहलक्षणा विपरीतताऽथ स्वरूपप्रच्युतः
ख्यातिः सती अथोत्तरकालं ख्यातेरभावस्तथापि कथं विपरीता ख्यातीनामुत्तरकालप्रच्यु
ख्यातिप्रसक्तेः। अथ द्वितीयो विकल्पस्तत्रापि ख्यात्यन्तरापेक्षया सर्वे(र्वं)व ख्यातिर्विपरीत
सर्वख्यातेर्वैपरीत्यप्रयु(प्रस)क्तिः, यदि पुनर्वैपरीत्यं शुक्तिकादि रजताद्याकारेण विपरीतन
२५ विपरीतख्यातिरित्यय पक्षाभ्युपगमः सोऽप्ययुक्तः, अन्यरूपेणान्यस्य परिच्छेदायोगात्।

---

१ ग्राह्यग्रा-भा० विना। २ न घा-वा० बा० विना। ३-तदेव इ-भां० मां०। ४-
मा० बा० विना। ५ भवेत् तस्माद् दर्शन-आ०। भवेत् त तस्माद् दर्शन-वि०। ६-
आ०। ७ तस्या घा-श्रा०। ८-र्थत्तेऽ-वा० बा०। ९ च सत्ययोर्लौ-भां० मां०। १०-र
ा० विना। ११-भासितस्त-भां०। १२ तज्ञा-बा० बा०। १३ तव प्र-भां०। तद् प्र-मां०
१४-भासेन तदर्थ-भां०।-भासित तदर्थ-वि०। १५-रत्वेवसलौ-द्दा० वि०।-रन्येवमलौ
आ०। १६ सर्वेषां प्रवृत्तिभास-द्दा० वि०। १७-नानां सर्वेत्यता। किञ्च, अलौकिके
सिध्येत् किं सत्य-वि०। १८ सत्यता किंवा लौकिके लौकिकं रूपं तया सत्यं नन्व
सत्यता किंवा लौकिके रूपतया सत्यं नन्वत्रा-वि० सं०। १९-किकं रूप सत्य सिध्यत्
मां०।-किकं रूप सत्य सिध्यत् कि सत्य-भां०।-किकं रूप तस्य सिध्येत् किं स
२०-भासिति बा० बा० विना। २१-रलौकिक य-द्दा० वि०।-रलौकिके य-भां० मां०।
लौकि-भां० मां०। तदो लौकि-द्दा०। २३-या यचस-वा० बा० भां० मां० द्दा० वि०।-या
त्यतया? यचस-वि० स०। २४ तस्या सिद्धौल् आ०। २५ यद्यलौ-वा० बा० विना।
लौकि-द्दा० वि०। किं वा लौकि भा० मां०। २७-सानोऽलौकि भां० मां० द्दा० वि०।
वि मां० आ० वि०। २९ आहोस्वित ख्यानन्तरांप-वा० बा०। ३० ख्याति विपरीतख्याति
द्दा० वि०। ख्यातिर्विपरीतख्याति. अहो वा० ब०। ३१-र्यं किं तदेका चौरा-भां०।
वि-भां० मां०। ३३-वर्तमेऽप्यरा भां०। पर्तानोऽप्या आ० द्दा० वि०। ३४-कारेण
-कारेण आ०

रूपद्वयनिर्भासेऽध्यारोपः कल्प्यते, उतैकरूपनिर्भासे? यदि प्रथमः पक्षः तदा इयं शुक्तिका रजतस्वरूपं चात्मस्वरूपेणापेक्षया नैवे(वे)व चेयातिः। अथैकं रूपं तत्र चकास्ति तथापि यदि रजतमेकं स्वरूपेण भाति कथमध्यारोपोऽन्याकारपरिहारेण तस्यैवैकस्य प्रतिदा(तिभा)सनात्। अथ शुक्तिका स्वरूपेण प्रतिभाति तथापि न विपरीतख्यातिः अन्यरूपविविक्तायास्तस्या एव परिच्छेदादन्यस्यान्याकारेण प्रतिभासना(भासन)मन्तरेण ना रजतदृग्माह्यो परिमलादेरपि रूपदृग्माह्यताप्रसक्तेः। ५ किञ्च, यद्यपरो(रो)क्षतया 'रजतम्' रजतसंविदवभासयति कथमस्या विपरीतख्यातित्वम्? न चान्यदेव देशादिमद् रजतमन्यदेशादितयाऽवभासयतीति विपरीतख्यातिः यतो देशान्तरादिमत्ता रजतादेः किं तेनैव दर्शनेन गृह्यते, आहोस्वित् पूर्वदर्शनेन? तत्र न तावत् तेनैव तत्र वर्त्तमानदेशादिमत्तया रजतादेरवभासनात् तद्धि तद्देशादिमत्तयैव तावद् गृह्णाति न पूर्वादिमत्तया। अथ पूर्वकालादिमत्त्वं रजतादेरवभासयति, ननु तदपि तद्देशादिमत्त्वमेव तस्याव- १० भासयति तदानीन्तनदेशादिमत्त्वं तदनवभासने च कथं भ्रान्तदर्शनावसेयस्य रजतादेस्तत्पूर्वदेशादिमत्तावगतेस्तस्यान्यदेशादिनादिमानर्थोऽन्यदेशादितया वितथदर्शने प्रतिभातीति वक्तव्यम्, न च बाधकप्रमाणं भ्रान्तदृगवगतरजतादेरन्यत्र देशादितामावेदयति यतो बाधकप्रतीतिरपि रजतादिकमलीकतया आवेदयति नत्वन्यदेशादितया नहि सा 'अन्यदेशादी(दि) रजतम्' इत्यवगच्छति किन्तु 'नेदं रजतम्' इति। यदि च भ्रान्तदृशि प्रतिभासमानो रजतादिस्तद्देशादौ नास्ति तर्हि ज्ञा- १५ नस्यैवाभावाकारो नार्थस्येति कथं न ज्ञानस्य निरालम्बनता? निरालम्बनत्वं ह्यर्थसन्निधिनिरपेक्षस्य ज्ञानस्य जन्म तथोपरतप्रमेयाणामर्थसन्निधिनिरपेक्षत्वात् स्वप्नादिप्रत्यया(याना)मस्तीति न दृष्टान्तासिद्धिः। यदि च स्वप्नादिदर्शनं विसंवादकत्वेऽप्यन्यदेशोऽर्थविषयं परिशुद्धदर्शनमपि यथा प्रतिभासमानं पूर्वदृष्टानां चलं किं नाभ्युपेयते अथ परित्यागो भवेत्। अथ बाधकेऽपरबो(धा)धकान्तराभावात् तस्य वर्त्तमानावभासकत्वं न तु बाधकाभावप्रत्यये ऽभावप्रत्ययावतारात् पूर्वदृष्टार्थमाहिता ननु २० बाधकैर्विवेकरपि पूर्वपरिज्ञातरजता(तरजता)द्यभावप्रवेदित्वं भवेत् नहि कश्चिद् विशेषो वर्त्तमानानुभवं प्रति बाधक-दर्शनयोः यतो रजतदर्शनमतीतविषयग्राहि बाधकं तु वर्त्तमानार्थस्वरूपावेदकमिति विभागो भवेत्। अथ बाधकैः अपरबाधकान्तराभावात् तस्य वर्त्तमानावभासकत्वम् न तु बाधकावभासप्रत्ययेऽभावप्रतीतिः पूर्वमभावप्रतीति किं नोपेयते। न चापरबाधकाभावात् तथापि वर्त्तमानार्थग्राहित्वमिति वक्तव्यम्, तथापि तत्पर्यनुयोगादनवस्थाप्रसक्तेः। न च मरुदर्शने(व्यदर्शने) २५ संवादेनात(वादात्) सांप्रतिकार्थग्राहित्वम् भ्रान्तज्ञाने तु विपर्ययात् पूर्वदृष्टावस्थानितसंवादसंवादयोगात्। तथाहि-किमुत्तरज्ञानोदयः संवादः, उतार्थक्रियाप्राप्ति(प्त)तिः? यद्युत्तरज्ञानोदयः स किमेकविषयः, भिन्नविषयो वा? यद्येकविषयस्तदा तैमिरिकस्य "केशादु(केशोण्डु)कादिविषयो ज्ञाना-

---

१ कल्पते ह्रा० विना०। २-थम प-बा० बा० विना ३-तस्वरूपं चात्मरूपेणापेक्षया स-स० बा०।-तस्वरूपं चात्मरूपेणापेक्षायां स-हा०।-तस्वरूपेणापेक्षया स-भा० मा०। ४ स्यैव आ० ह्र० रि०। ५ चकास्ति धैर्यं बा० बा०। ६-ध्यारोपोन्याकारवत्-भा०। ७ स्तस्य प-स० स०। ८ ना-मन्तरेण रजतदृग्माह्या प बा० बा०। ९ पर्वातिरूपम् आ०। १० न वा बा० आ० विना। ११ तावद् पू बा० बा०। १२ तादिमद्रजता आ०। १३-ति ननु त भा० ह०। १४ पूर्वदेशादिमत्तावगतेस्तस्यान्य देशादितया भा०। १५-न्यथान्य बा० बा०। १६ न्यथान्य बा० बा० विना। १७ [illegible] विना। १८-भासस्याप्य-[illegible] विना। १९ ह्यन्यथं [illegible] २०-भ्रान्त पृ आ०। २१ यत्ते ऽप पवि [illegible] [illegible]

[illegible]

स्वरूपं संवेदनमुच्यते विज्ञानस्यापि ह्यभेदः सिद्धः नीलादीनां प्रत्यक्षं च स्वरूपं संवेदनमुच्यतेऽवि-
ज्ञानस्यापि ह्यपरोक्षमेव स्वरूपं संवेदनतद्व्यतिरिक्तस्य तस्यायोगात् अतो न नील-तद्धियोः संवे-
दनभेदः अन्योन्यस्य संवेदनायोगात्। यदप्युक्तम् 'संविदो भिन्नमभिन्नं वा नीलस्य संवेदनं भेदहेतु
विरुद्धः अभेदश्चासिद्धः' इति, तदप्यसंगतमेव; नीलादीनामपरोक्ष आत्मा संविदिति प्रतिपादि-
५ तत्वात् तथा च ज्ञानव्यवहारयोगात् साध्यते परपरिकल्पितबोधवत् अन्यथा बोधव्यवहारोच्छेद-
प्रसङ्गात्। ननु कः सहोपलम्भनियमादस्य भेदः? एकोपलम्भ एव तस्याप्यर्थः अत्रापि स एव,
नैतत्; सहोपलम्भेन पृथग्भावनिराकरणात् तद्द्वारेण संविद्रूपा नीलादयः प्रसाध्यन्ते। अनेन तु
त एवं बोधरूपा विधिरूपेणेति द्वयोरपि हेत्वोर्व्यापारभेदोऽस्त्येव परमार्थतस्तु न कश्चिद् भेदः।
द्वयोरपि स्वभावहेतुत्वात् तथाह्यबोधव्यतिरिक्तमभ्युपगम्य सहोपलम्भनियमान्नीलादेः संवि-
१० द्रूपता साध्यते नहि सकृदुपलभ्यमानयोः ग्राह्यग्राहकभावो नील-बोधयोर्युक्तस्तदन्यक्रियाविरहा-
च्चन्द्रद्वयस्येव परस्परं बोधेन सहेति प्राक् प्रतिपादितम् ग्राह्यग्राहकभावाभावे स्वसंविद्रूपाः
सिद्धा एव नीलादयः तेन नील-तद्धियोः स्वरूपभेदेऽपि चन्द्रद्वयादेरिव परस्परं बोधरूपत-
योऽभेदः सहोपलम्भनियमात्। अयं चार्थः स्वयमेव शास्त्रकृता स्पष्टीकृतः—"नहि भिन्नावभा-
सित्वेऽप्यर्थान्तरमेव रूपं नीलस्यानुभवात्।" [ ] इत्यनेन प्रतिभासभे-
१५ दात् स्वरूपभेदेऽपि नीलस्यानुभवादर्थान्तरं जडतया विजातीयमेव रूपं न भवतीति यावत् स्वरूप-
भेदेऽपि प्रकाशरूपत्वात्। यदि तु सर्वात्मना नील-तद्धियोरभेदः साध्यः तथा सति एवकारो न युक्तः
नार्थान्तरमेवमिदं वाच्यं स्यात् प्रत्यक्षबाधश्च दुर्निवारो नीलादेः सुखादिरूपस्य च बोधस्य भेदे साध्ये
यदा तु तयोर्भेदेऽपि साम्यं बोधरूपतया साध्यते तदा न कश्चिद् दोषः रूपाऽऽलोकयोरपि परस्परं
न प्रकाश्यप्रकाशकभावः सहोपलम्भनियमादेवं चित्ताचित्तानामपि स्वसंविद्रूपत्वेवेति न तत्रापि
२० व्यभिचारः सर्वविदोऽपि स्वसंवेदनामेव स्वसत्त्वं परचित्ततदनं तु व्यवहारमात्रेण विद्वेता व(च)दूरो-
त्सादितैवास्मिन् व्याख्याने स्वरूपैकत्वासाधनादेवासिद्ध इति नैव सुखादेरतन्नी(रन्तर्नी)लादेर्बहि-
श्चावभासनात्। तयोरेव ग्राह्यग्राहकभावाभावतः सहोपलम्भनियमात् स्वप्रकाशरूपता साध्यते
व्यतिरिक्तस्य "बोधोऽग्राहकोऽप्रतीतेरेवं"। अथवा परोक्षो बोध(धः) पुरोव्यवस्थित(ता)र्थान् प्रति-
पद्यत इति परेषामभ्युपगमः तदभ्युपगमान्नीलकालो बोधात्मा भवतु प्रत्यक्षस्तथापि न तयोर्वेद्यवेद-
२५ कभावः सहोपलम्भनियमादिति प्रतिपाद्यते तेनायमदोषः संवेदनं तु प्रत्यक्षरूपं बोधरूपता
नीलसुखादेर्वस्तुस्थित्यैव साधयति बोधव्यवहारस्य तत्रैव सिद्धेरन्यथाभूतस्यानुपलब्धेस्तथा-
भावात् ततो नीलादेः सुखादेश्चात्मैवानुभवः चक्षुरादिव्यापारेण परोऽपि तदा स स्यात्।

१-च्यतेऽवि-मां०। २-च्यते वि-वा० बा०। ३-दनाभे-वा० बा० विना। ४ अन्योन्य संवे-
वि०। अन्योन्यस्य संवेदनं भेदहेतु-मां०। अन्योन्यस्य संवेदन भेदहेतु-भां०। ५ अभेद इति अथा-
सिद्ध इति शा०। ६ तदप्य-वा० बा० विना। ७ तया च ज्ञा-भां० हा०। तया प ज्ञा-भा०। तया
च ज्ञा-वि० सं०। ८-कल्पितं बो-मां० शा० हा० वि०। ९ तद्वा-वा० बा० हा०। १० एवा बो-वा० बा०। ११ तद्वा
द्वो-मां० हा० वि०। तद्वो-शा०। तद्वा बोधेन सहेति प्राक् प्रतिपादितम् वा० बा०। १२-भावा भी-भा०।-
भातियो नी-हा० वि०। १३-स्परयो-भां० शा०। १४-त प्रा-मां०। १५-भावो स्व-आ०। १६-द्रूपाः
सिविद्रूपाः सिद्धा-मां०।-द्रूपा सिविद्रूपाः सिद्धा-शा०।-द्रूपाः सिंचिद्रूपाः सिद्धा-मां०। १७-या भे-
वा० बा०। १८ अयं यार्थः वा० बा०। अयं तार्थः हा० वि०। अयं भार्थः भां०। १९ युक्तो वा भाष-
तिमित्येवं वाच्यं वा० बा०। २० वाच्यं स्या-भां० मां०। २१ साध्ये य-भां० मां०। २२ तयोऽभे-
मां०। २३-द्वयोर-वा० बा०। २४-काशभा-वा० बा० विना। २५-च चित्तानामपि भा०।-च
चित्तानामपि हा०।-च चित्ताचित्तानामपि मां० मां०। २६-चार सर्व-हा०।-चारः सर्वविदोऽपि
स्वस्व-भा०। २७-स्वसत्व पर-हा०। स्वतत्त्वं पर-वा० बा०। २८-रचित्ततदनं तु व्य-वा० बा०।-
रचित्तानदनं तु व्य-भा०।-रचित्तातदनन्तरं तु-वि० सं०। २९-द्वता च दूरोत्सा-मां०।-द्वता च
दूरोत्सा-वा० बा०।-द्वतां च दूरोत्सा-मां०। ३०-रिक्तस्य शा०। ३१ बोधोभा-भा०। बोधो अग्रा-
वा० बा०। ३२-च अथवा शा०। ३३-वस्थितार्था-भा०।-वस्थितच्छिन्नार्था-वि०।-वच्छिन्नार्था-भा०
मं० हा०। ३४-तु प्रत्र-वा० बा०। ३५-दनं प्र-वा० बा० शा० हा० वि० विना। ३६-द्रूपं बोधरू-
बोध-भा०। ३७-पता नी-भां० मां०। ३८-स्तुस्थित्येव सा-वा० बा० हा० वि०।-स्तुस्थानेव सा-
मां०।-स्तुस्थत्येवं सा-मां०। ३९-रा वि त-वा० बा०। ४० स्यात् व यथु-भा०। स्यात् न यथु-नी०।

न च चक्षुरादिव्यापारादेव नीलादयोऽनुभवरूपा जायन्ते येतश्चक्षुरादयोऽपि नानुव्य(नुभवव्य)तिरिक्ताः तस्य(स्या)र्थवादप्रसक्तेः, नैतदेवम्, स्वप्नादशावेज्ञा(शावज्ञा)मद्दशायामपि वासनावशादेव नियतावभासोदयो भविष्यतीति न कार्यव्यतिरेकादप्यर्थवादकल्पना युक्तिमतीति सर्वत्र विज्ञप्त(प्ति)मात्रतैव। ??]

[?? ननु यदि विज्ञप्तिमात्रतैव(वा)भ्युपेय(या) तथासति मेय-मानमिति व्यवहारविलोपः तस्य ५ भेदपूर्वकत्वात्—अर्थो हि प्रमितिक्रियया व्याप्यमानत्वात् प्रमेयम् कर्मणि कृत्यविधानात्। तथा नीलादयो यदि बोधः स्यात् तदाऽसौ स्वतन्त्रा(न्त्रो) नीलदशां प्रतीत्य प्रमाता भवेत् चक्षुरादयश्च करणतया मानं भवेयुरर्थमितिम् उपलम्भसाध्यत्वात् स्यात् तदभावे तु न नीलादयः संविद्रूपाः सिध्यन्ति सिद्धः प्रमाणनिबन्धनत्वात्। न च स्वसंवेदनमेव प्रमाणं व्यवस्थाकारि तत्र दृष्टान्तासिद्धेः। प्रदीपादयोऽपि हि परप्रकाश्या एव च (न च) तेनैवात्मना स एवाधिगन्तुं शक्यम् १० न ह्यङ्गुल्यग्रेण तेनैव तदेवाङ्गुल्यग्रं स्पृश्यत इति, असदेतत्; यतो यथा बाह्यार्थवादे सुखादीनामात्मा विषये प्रमाणम् तेषामेव वेदनं वित्तिः फलं सुखादयश्च मेयं यथैवापरेषामात्मा अपरोक्षो म(मे)यः तस्य च प्रकाशरूपता मानम् तत्प्रतिभासः फलम् तदन्यग्राहकाभावेऽप्यनवस्थाप्रसंगमतनि(मतमि)यमेव म(मे)य-मान-फलानां व्यवस्था सर्वत्र नीलादौ योजनीया विज्ञा(ज्ञान)वादे। ??]

[?? अथ नीलादीनां जडत्वान्न संविदस्ति सुखादेरात्मनश्च प्रकाशरूपत्वात् संविदिति, अत्रो- १५ च्यते; तत्रापि ज्ञानवादेऽनुभवात्मकत्वात् प्रकाशरूपत्वापत्तेः नीलादेर्वः स्वात्मनः संविदि कर्त्तव्यायां योग्या नहि ते तत्र दर्शने जडरूपाः संविदस्तथाऽयोगादित्युक्तेरिति तस्मात् सा नीलादीनां प्रकाशात्मभेदोल्लेखः। यथा स्वरूपमेयं स्वसंवित् फलमित्यस्ति प्रमाणादिव्यवस्थेत्यर्थः श्लोकद्वयस्य

"तत्रात्मनि सुखादीनां यथा वित्तिः फलं तथा। २०
तथा सर्वत्र संयोज्या मान-मेय-फलस्थितिः"॥ [ ]

यत्राप्यनुभवात्मत्वायोग्योऽस्ती संविदि इति सा योग्यता मानं मेयं रूपं फलं स्वविल्याचार्योक्तस्य यदि तर्हि नीलादीनां स्वप्रकाशो वित्तिश्च 'कथमहं नीलं वेद्मि' इति कर्तृ-कर्म-क्रियाभेदोल्लेखः यथा ललितसुखादीनामात्राप्यहमात्मानं वेद्मि सुखादीनि वासी दृष्ट एव। अथान्यग्राहकाभावात् तत्रासौ मिथ्योल्लेखस्तर्हि नीलादावपि व्यतिरिक्तप्रकाशाभावात् भेदोऽर्थसेयः कर्तृ-कर्मादितया २५ सिद्ध्यो वा परोक्षस्य नीलादेरेव प्रकाशनात्। अथास्याः कर्म-कर्तृ-क्रियाभेदाध्यवसितेर्वी(निर्वी)जं वक्तव्यम् निर्वीजं धीन्ययोगात्, नैव; तत् क्वचिदपि कर्त्रादिभेदस्य वास्तवस्यानुपलब्धेर्वातिपरम्परामात्रं अनादिवासनाप्रभवप्रधानादिविकल्पवदसावभ्युपगन्तव्यः। यदपि 'विरोधान्न संवेदनं मपलक्ष्य-

१ यश्चसु-आ०। २-रिक्तः स-बा० बा०। ३-दशावेजाप्रद्-बा० बा० भा० हा० वि० विना। ४-त्रतैवाभ्युपेय तथा-बा० बा० विना। ५ प्रमितिक्रि या व्याप्य-भा०। ६-मितिस्तु पलम्भ-बा० बा०। ७ सिध्यं सि-बा० बा० आ० हा० वि० विना। ८-माण दृ-भा० हा० वि०। ९ तथ दृ-बा० बा० विना। १०-गन्तुं शक्य न बा० बा०। ११-वादे सुखा-बा० बा०।-वादे सुखा-आ०। १२-मात्मविषाये प्रमाण तेषा-बा० बा०। १३ फलं तु सुखा-आ०। १४-प्रासेमंतिनि-भा०। १५ सर्वत्र नी-बा० बा०। १६-नश्चा प्र-आ०।-नश्चऽप्र-मो०।- नश्चा प्र-मो०। १७-दयः संवि-बा० बा० विना। १८ नहि ते त्र बा० बा०। १९-थायो-बा० बा० विना। २०-काद्यात्स्या-बा० बा० विना। २१-स्याभेदेल्ले-बा० बा०। २२ तथं। त-आ० हा० वि०। ततं। त-बा० बा०। २३ संयोज्य मान-मो० आ० हा० वि०। संयोज्य मानं मे-मो०। २४-स्वाप्य यो-बा० बा०। २५-न्यास्ता संविद् इति बा०। २६ मान मेयं रूप फलं आ०। मान मेयं रूपं वि०। २७-चार्योक्तस्य बा० बा० विना। २८-थात्मनि सु-वि० वे०। २९-मादौ वा मा-मो० आ० हा० वि०।-मादौ वामत्रा-बा० बा०। ३०-नि मासौ आ०। ३१-रिक्तप्र-वि०।-रिकाप्र-मो०। ३२-वसायः बा० बा०। ३३-कर्मादितया सिद्धो वा प-आ०। ३४ सिध्यो वा प-बा० बा० हा० वि०। ३५-लादेरव प्र-आ०। ३६-व्यं तिर्वीज वा-आ०।-व्यं निर्वीजं वा हा० वि०। ३७ धान्यं वा योगात् बा० बा०। ३८-दस्य वास्तवस्या-बा० बा०।

स्वरूपं संवेदनमुच्यते विज्ञानस्यापि ह्यभेदः सिद्धः नीलादीनां प्रत्यक्षं च स्वरूपं संवेदनमुच्यते [illegible]
ज्ञानस्यापि ह्यपरोक्षमेव स्वरूपं संवेदनतद्व्यतिरिक्तस्य तस्यायोगात् अतो न नील-तद्वेदनयोः संवे-
देनभेदः अन्योन्यस्य संवेदनायोगात्। यदप्युक्तम् 'संविदो भिन्नमभिन्नं वा नीलस्य संवेदनं भेदे तु
विरुद्धः अभेदश्चासिद्धः' इति, तदप्यसंगतमेव, नीलादीनामपरोक्ष आत्मा संविदिति प्रतिपादि-
५ तत्वात् तथा च ज्ञानव्यवहारयोगात् साध्यते परपरिकल्पितबोधवत् अन्यथा बोधव्यवहारोऽपि
प्रसङ्गात्। ननु कः सहोपलम्भनियमादस्य भेदः? एकोपलम्भ एव तस्यार्थः अभेदे स [illegible]
नैतत्; सहोपलम्भेन पृथग्भावनिराकरणात् तद्द्वारेण संविद्रूपा नीलादयः प्रसाध्यन्ते। अतएव [illegible]
त एवं बोधरूपा विधिरूपेणेति द्वयोरपि हेत्वोर्व्यापारभेदोऽस्त्येव परमार्थतस्तु न कश्चिद् भेदः।
द्वयोरपि स्वभावहेतुत्वात् तथाह्वोधव्यतिरिक्तमभ्युपगम्य सहोपलम्भनियमाभावादेः [illegible]
१० दूषणा साध्यते नहि सकृदुपलभ्यमानयोः ग्राह्यग्राहकभावो नील-बोधयोर्युक्तः [illegible]
चन्द्रद्वयस्येव परस्परं बोधेन सहेति प्राक् प्रतिपादितम् ग्राह्यग्राहकभावाभावे [illegible]
भिन्ना एव नीलादयः तेन नील-तद्धियोः स्वरूपभेदेऽपि चन्द्रद्वयादेरिव परस्परं बोधस्व-
योऽभेदः सहोपलम्भनियमात्। अयं चार्थः स्वयमेव शास्त्रकृता स्पष्टीकृतः—"नहि भिन्नाव-
भिन्नेऽन्यर्थान्तरमेव रूपं नीलस्यानुभवात्।" [ ] इत्यनेन प्रतिभासभे-
१५ दात् स्वरूपभेदेऽपि नीलस्यानुभवादर्थान्तरं जडतया विजातीयमेव रूपं न भवतीति [illegible]
भेदेऽपि प्रकाशरूपत्वात्। यदि तु सर्वात्मना नील-तद्धियोरभेदः साध्यः तथा सति [illegible]
[illegible] स्यात् प्रत्यक्षबाधश्च दुर्निवारो नीलादेः सुखादिरूपस्य च बोधस्य भेदे [illegible]
यदा तु तयोर्भेदेऽपि मात्रं बोधरूपतया साध्यते तदा न कश्चिद् दोषः [illegible]
न [illegible] सहोपलम्भनियमादेवं निराकृतानामपि [illegible]
२० [illegible] संवेदनामेव [illegible] तु व्यवहारमात्रेण [illegible]
[illegible] इति नैव सुखादेरत्यन्त(तत्व)[illegible]
[illegible]। तयोरेव ग्राह्यग्राहकभावाभावः सहोपलम्भनियमात् [illegible]
[illegible] 'बोधोऽन्यदुःखोऽन्यो' [illegible]। अथवा परोक्षो बोध(धः) [illegible](ना)[illegible]
[illegible] सदा [illegible]
२५ [illegible] सहोपलम्भनियमादिति प्रतिपादने नैवापरोक्षः संविदे तु [illegible]
[illegible] बोधस्वरूपस्य तथैव [illegible]
[illegible] सुखादेरप्यैवानुभवः [illegible] परोक्षो तदा न [illegible]

---

१ [illegible] । २-[illegible] । ३-[illegible] । ४ [illegible]
[illegible] संवेदनं भेदे तु [illegible] । अन्योन्यस्य संवेदन भेदे तु-[illegible] । ५ [illegible]
[illegible] । ६ [illegible] । ७ [illegible]
[illegible] । ९ [illegible] । १० [illegible]
[illegible] सहेति प्राक् प्रतिपादितम् [illegible] । ११-[illegible]
[illegible] । १३ [illegible] । १४ [illegible] । १५ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

न च चक्षुरादिव्यापारादेव नीलादयोऽनुभवरूपा आयान्ते चेतनाश्चक्षुरादयोऽपि नानुभ(नुभव)-निरिन्धाः स्मर(स्या)र्थवादप्रसक्तेः, गतदेव। स्वप्नादिदशायेऽज्ञ(दशाय ज्ञा)नदशायामपि वासनाव-शादेव नियतार्थभासोदयो भविष्यतीति न कार्यव्यतिरेकाद् व्यर्थपादकल्पना युक्तिमतीति सर्वत्र विज्ञप्ति(प्ति)मात्रतैव। ??]

[?? ननु यदि विज्ञप्तिमात्रतैव(वा)भ्युपेय(या) तथा सति मेय-मानमिति व्यवहारविलोपः तस्य ५ भेदपूर्वकत्वात्—अर्थो हि प्रमितिक्रियया व्याप्यमानत्वात् प्रमेयम् कर्मणि कृत्यविधानात्। तथा नीलादयो यदि बोधः स्यात् तदाऽसौ स्वतन्त्रा(न्त्रो) नीलदर्शी प्रतीत्य प्रमाता भवेत् चक्षुरा-दयश्च करणतया मानं भवेयुरर्थमितिश्च उपलम्भसाध्यत्वात् स्यात् तदभावे तु न नीलादयः संविद्रूपाः सिध्यन्ति नियतः प्रमाणनिबन्धनत्वात्। न च स्वसंवेदनमेव प्रमाणं व्यवस्थाकारि तत्र दृष्टान्तासिद्धेः। प्रदीपादयोऽपि हि परप्रकाशका एव च (न च) तेनैवात्मना स्व प्रकाशयितुं शक्यम् १० न ह्यङ्गुल्यग्रेण तेनैव तदेवाङ्गुल्यग्रं स्पृश्यत इति, असदेतत्; यतो यथा बाह्यार्थवादे सुखादीनामात्मा विषये प्रमाणम् तेषामेव वेदनं वित्तिः फलं सुखादयश्च मेयं यथैवापरेषामात्मा अपरोक्षो म(मे)यः तस्य च प्रकाशरूपता मानम् तत्प्रतिभासः फलम् तदन्यग्राहकाभावेऽप्यनवस्थाप्रसक्तेरिति(मतमि)-दमेव म(मे)य-मान-फलानां व्यवस्था सर्वत्र नीलादौ योजनीया विज्ञा(ज्ञान)वादे। ??]

[?? अथ नीलादीनां जडत्वात् संविदस्ति सुखादेरात्मनैव प्रकाशरूपत्वात् संविदिति, अत्रो- १५ च्यते, तत्रापि मानवादेऽनुभयात्मकत्वात् प्रकाशरूपत्वापत्तेः नीलादेर्यः स्वात्मनः संविदि कर्तव्यायां योग्या नहि ते तत्र दर्शने जडरूपाः संविदस्तथाऽयोगादित्युक्तेरिति तस्मात् सा नीलादीनां प्रकाशात्मकभेदोल्लेखः। यथा स्वरूपमेयं स्वसंवित् फलमित्यस्ति प्रमाणादिव्यवस्थेत्यर्थः श्लोकद्वयस्य

"तत्रात्मनि सुखादीनां यथा वित्तिः फलं तेरं। २०
तथा सर्वत्र संयोज्या मान-मेय-फलस्थितिः" ॥ [ ]

यत्राप्यनुभयात्मत्वयोग्योऽस्ती संविदि इति सा योग्यता मानं मेयं रूपं फलं स्ववित्त्यार्थार्थो-क्तम् यदि तर्हि नीलादीनां स्वप्रकाशो वित्तिश्च 'कथमहं नीलं वेद्मि' इति कर्तृ-कर्म-क्रियाभेदोल्लेखः यथा हतिसुखादीनामात्राप्यहमात्मानं वेद्मि सुखादीनि वासौ दृष्ट एव। अथान्यग्राहकाभावात तत्रासौ मिथ्योल्लेखस्तर्हि नीलादावपि व्यतिरिक्तप्रकाशाभावात् भेदोऽर्थसेयः कर्तृ-कर्मादितया २५ मिथ्यो वा परोक्षस्य नीलादेरेव प्रकाशनात्। अथास्याः कर्म-कर्तृ-क्रियाभेदाध्यवसितेर्वी(र्वा)जं वक्तव्यम् निर्बीजं वाऽन्ययोगात्, नैव; तत् कश्चिदपि कर्त्रादिभेदेस्य वास्तवस्यानुपलब्धेर्वातिपरम्परामात्रं अनादिवासनाप्रभवप्रधानादिविकल्पवदसायम्युपगन्तव्यः। यदपि 'विरोधाच्च संवेदनं भवत्यङ्गुल्य-

---

१ यद्यक्षु-आ०। २-रिक्तः स-वा० बा०। ३-दशावेजाप्रद्-वा० बा० आ० हा० वि० विना। ४-व्रतैवाभ्युपेय तथा-वा० बा० विना। ५ प्रमितिक्रि या व्याप्य-आ०। ६-मितिस्तु पलम्भ-वा० बा०। ७ सिध्यं सि-वा० बा० आ० हा० वि० विना। ८-माण द्य-आ० हा० वि०। ९ तच द-वा० बा० विना। १०-गन्तुं शक्य न वा० बा०। ११-वादे सुखा-वा० बा०।-वादे जुखा-आ०। १२-मा-त्मविषये प्रमाण तेषा-वा० बा०। १३ फलं सु सुखा-आ०। १४-प्रासेर्मतिनि-आ०। १५ सर्व-त्र नी-वा० बा०। १६-नथा प्र-आ०।-नथऽप्र-भा०।- नथ्या प्र-भा०। १७-दयः संवि-वा० बा० विना। १८ नहि ते त्र वा० बा०। १९-थायो-वा० बा० विना। २०-काद्याख्या-वा० बा० विना। २१-स्याभेदेहे-वा० बा०। २२ तरं। त-आ० हा० वि०। ततं। त-वा० बा०। २३ संयोज्य मान-भा० आ० हा० वि०। संयोज्य मानं मे-भा०। २४-स्याश्च यो-वा० बा०। २५-स्यास्ता संविद इति आ०। २६ मान मेयं रूप फलं आ०। मान मेयं रूपं वि०। २७-चार्योक्तस्य वा० बा० विना। २८-थात्मनि सु-वि० से०। २९-खादौ वा मा-भा० आ० हा० वि०।-खादौ वामत्रा-वा० बा०। ३०-नि नासौ आ०। ३१-रिक्तप्र-वि०।-रिकाप्र-भा०। ३२-वसायः वा० बा०। ३३-कर्मादितया सिद्ध्यो वा प-आ०। ३४ सिध्यो चा प-वा० बा० हा० वि०। ३५-लादेरेव प्र-आ०। ३६-च्यं तिर्बीज वा-आ०।-च्यं निर्बीजं वा हा० वि०। ३७ वान्यं वा योगात् वा० बा०। ३८-दस्य वास्तवस्या-वा० बा०।

स्वरूपं संवेदनमुच्यते विज्ञानस्यापि ह्यमेदः सिद्धः नीलादीनां प्रत्यक्षं च स्वरूपं संवेदनमुच्यतेऽवि-ज्ञानस्यापि ह्यपरोक्षमेव स्वरूपं संवेदनतद्व्यतिरिक्तस्य तस्यायोगात् अतो न नील-तद्धियोः संवेदनभेदः अन्योन्यस्य संवेदनायोगात्। यदप्युक्तम् 'संविदो भिन्नमभिन्नं वा नीलस्य संवेदनं मेदहेतु-विरुद्धः अमेदश्चासिद्धः' इति, तदप्यसंगतमेव; नीलादीनामपरोक्ष आत्मा संविदिति प्रतिपादि-
५ तत्वात् तथा च ज्ञानव्यवहारयोगात् साध्यते परपरिकल्पितबोधवत् अन्यथा बोधव्यवहारोच्छेद-प्रसङ्गात्। ननु कः सहोपलम्भनियमादस्य मेदः? एकोपलम्भ एव तस्याप्यर्थः अत्रापि स एव, नैतत्; सहोपलम्भेन पृथग्भावनिराकरणात् तद्द्वारेण संविद्रूपा नीलादयः प्रसाध्यन्ते। अनेन तु त एवं बोधरूपा विधिरूपेणेति द्वयोरपि हेत्वोर्व्यापारमेदोऽस्त्येव परमार्थतस्तु न कश्चिद् मेदः। द्वयोरपि स्वभावहेतुत्वात् तथाद्बोधव्यतिरिक्तमभ्युपगम्य सहोपलम्भनियमान्नीलादेः संवि-
१० द्रूपता साध्यते नहि सकृदुपलभ्यमानयोः ग्राह्यग्राहकभावो नील-बोधयोर्युक्तस्तदन्यक्रियाविरहाच्चन्द्रद्वयस्येव परस्परं बोधेन सहेति प्राक् प्रतिपादितम् ग्राह्यग्राहकभावाभावे स्वसंविद्रूपाः सिद्धा एव नीलादयः तेन नील-तद्धियोः स्वरूपमेदेऽपि चन्द्रद्वयादेरिव परस्परं बोधरूपतयोऽमेदः सहोपलम्भनियमात्। अयं चार्थः स्वयमेव शास्त्रकृता स्पष्टीकृतः—"नहि भिन्नावभासित्वेऽप्यर्थान्तरमेव रूपं नीलस्यानुभवात्।" [ ] इत्यनेन प्रतिभासमे-
१५ दात् स्वरूपमेदेऽपि नीलस्यानुभवादर्थान्तरं जडतया विजातीयमेव रूपं न भवतीति यावत् स्वरूपमेदेऽपि प्रकाशरूपत्वात्। यदि तु सर्वात्मनील-तद्धियोरमेदः साध्यः तथासति एवकारो न युक्तः नार्थान्तरमेवमिदं वाच्यं स्यात् प्रत्यक्षबाधश्च दुर्निवारो नीलादेः सुखादिरूपस्य च बोधस्य मेदे साध्ये यदा तु तयोर्भेदेऽपि साम्यं बोधरूपतया साध्यते तदा न कश्चिद् दोषः रूपाऽऽलोकयोरपि परस्परं न प्रकाश्यप्रकाशकभावः सहोपलम्भनियमादेवं चित्ताचैत्तानामपि स्वसंविद्रूपतैवेति न तैरपि
२० व्यभिचारः सर्वविदोऽपि स्वसंवेदनामेव स्वसत्त्वं परचित्ततदनं तु व्यवहारमात्रेण विद्वेता च(च)द्रूरो-रसादितैवास्मिन् व्याख्याने स्वरूपैकत्वासाधनादेवासिद्ध इति नैव सुखादेरतन्नी(रन्तर्नी)लादेर्बहि-श्चावभासनात्। तयोरेव ग्राह्यग्राहकभावाभावतः सहोपलम्भनियमात् स्वप्रकाशरूपता साध्यते व्यतिरिक्तस्य बोधोऽग्राहकोऽप्रतीतेरेवं। अथवा परोक्षो बोध(धः) पुरोऽवस्थित(ता)र्थान् प्रति-पद्यत इति परेषामभ्युपगमः तदभ्युपगमान्नीलकालो बोधात्मा भवतु प्रत्यक्षस्तथापि न तयोर्वेद्यवेद-
२५ कभावः सहोपलम्भनियमादिति प्रतिपाद्यते तेनायमदोषः संवेदनं तु प्रत्यक्षरूपं बोधरूपतां नीलसुखादेर्वस्तुस्थित्यैव साधयति बोधव्यवहारस्य तत्रैव सिद्धेरन्यथाभूतस्यानुपलब्धेर्लक्षणा-भावात् ततो नीलादेः सुखादेश्चात्मैवानुभवः चक्षुरादिव्यापारात् परोऽपि तदा स एव।

१-च्यतेऽवि-मां०। २-च्यते वि-वा० बा०। ३-दनामे-वा० बा० विना। ४ अन्योन्य संवे-वि०। अन्योन्यस्य संवेदनं मेदहेतु-मां०। अन्योन्यस्य संवेदन मेदहेतु-भां०। ५ अमेद इति मध्या-सिद्ध इति आ०। ६ तदप्य-वा० बा० विना। ७ तया च ज्ञा-मां० हा०। तया प ज्ञा-आ०। तया च ज्ञा-वि० सं०। ८-कल्पितं बो-मां० आ० हा० वि०। ९ तद्वा-वा० बा० हा०। १० एवा बो-वा० बा०। ११ तद्वा द्वो-मां० हा० वि०। तद्वो-आ०। तद्वा बोधेन सहेति प्राक् प्रतिपादितम् वा० बा०। १२-भावा मी-आ०।-भातियो नी-हा० वि०। १३-स्परयो-भां० आ०। १४-त ग्रा-मां०। १५-भावो स्व-आ०। १६-द्रूपा स्विविद्रूपाः सिद्धा-मां०।-द्रूपा सिविद्रूपाः सिद्धा-आ०।-द्रूपाः सिचिद्रूपाः सिद्धा-मां०। १७-या मे-वा० बा०। १८ अयं वार्थः वा० बा०। अयं तार्थः हा० वि०। अयं भार्थः भां०। १९ युक्तो वा नार्थ-तिमिलेयं वाच्यं वा० बा०। २० वाचं स्या-भां० मां०। २१ साधे य-भां० मां०। २२ तयोऽमे-भां०। २३-रूद्वयोर-वा० बा०। २४-कादामा-वा० बा० विना। २५-च चित्तानामपि आ०। च चित्तानामपि हा०।-च चित्ताचित्तानामपि भां० मां०। २६-चार सर्व-हा०।-चारः सर्वविदोऽपि स्वसं-आ०। २७-स्वसत्व पर-हा०। स्वतत्त्वं पर-वा० बा०। २८-रचित्ततदनं तु व्य-वा० बा०।-रचित्तानदनं—तु व्य-आ०।-रचित्ततदनन्तरं तु-वि० सं०। २९-द्वता च दूरोरसा-मां०।-द्वता च दूरोरसा-वा० बा०।-द्वतां च दूरोरसा-मां०। ३०-रिक्तास्य आ०। ३१ बोधोग्रा-आ०। बोधो ग्रा-वा० बा०। ३२-च ऽप्रया आ०। ३३-वस्थितार्थां-आ०।-वस्थितच्छिन्नार्थां-वि०।-वस्थितार्थां-वा० बा०। ३४-तु प्रत्र-वा० बा०। ३५-दनुं प्र-वा० बा० आ० हा० वि० विना। ३६-रूपं बोधरूपं-आ०। ३७-पता नी-मां० मां०। ३८-स्तुस्थित्येव सा-वा० बा० हा० वि०।-स्तुस्थत्यैव सा-बा०।-स्तुस्थत्यैवं सा-मां०। ३९-रा वि न-वा० बा०। ४० स्यात् य चक्षु-आ०। स्यात् न चक्षु-मां०।

न च चक्षुरादिव्यापारादेव नीलादयोऽनुभवरूपा आयान्ते चेत्चक्षुरादयोऽपि सानुभव(नुभव)-निमित्ताः स्यु(स्युः)र्भावाद्भवतीत्, मिवदेयम्, तस्मादेताद्वेशा(शावका)मद्भावायामपि यान्ताव-च्छेदेव निदानमान्योः प्रो भविष्यतीति न कार्यव्यतिरेकाद्भ्यर्थापत्त्वल्पना युक्तिमतीति सर्वत्र जि(ति)मार्ग्भ[?]मेव । ??]

[?? ननु यदि मितिमात्रमेव(वा)भ्युपेय(गा) तथागति मेय-मानमिति व्यवहारविलोपः स्यात् ५ चेद्भूर्वेव चान्—भवों हि प्रमितिक्रियया व्याप्यमानत्वात् प्रमेयम् कर्मणि कृत्यविधानात् । तथा नीलादयो यदि बोधः स्यात् तदाऽसौ स्वलम्ना(लम्बो) नीलरूपं प्रतीत्य प्रमाता भवेत् चक्षुरा-दयश्च करणतया मानं भवेयुर्धीमितिम् उपलम्भसाध्यत्वात् स्यात् तद्भावे तु न नीलादयः संविद्रूपाः सिध्यन्ति सिद्धः प्रमाणनिष्पन्नत्वात् । न च स्वसंवेदनमेव प्रमाणं व्यवस्थाकारि तेन स्वात्मनि सिद्धेः । प्रदीपादयोऽपि हि परप्रकाशका एव च (न च) तेनैवात्मना स प्रकाशयितुं शक्यम् १० न स्वात्मनि तेनैव तदेवाहुस्त्वयं स्पृश्यत इति, असदेतत्; यतो यथा चार्वाकवादे सुखादीनामात्मा विषयं प्रमाणम् तेनामेव वेदनं वित्तिः फलं सुखादयश्च मेयं .... । .

सा च प्र........ . .. . .

यमेव प्र(मे . . . . . .

[?? ३ . ... अपुभास्य व्यवहारेण सुखादेरात्मनैव प्रकाशरूपत्वात् संविदिति, अशो-१५ च्यते, तत्रापि ज्ञानवादेऽनुभवात्मकत्वात् प्रकाशरूपत्वापत्तेः नीलादेः स्वात्मनः संविदि कर्तृत्वायां योग्या यदि ते तत्र दर्शने जडरूपाः संविदस्तथाऽयोगादित्युक्तेरिति तस्मात् सा नीलादीनां प्रतीतावत्स्यांभेदोऽनिश्चः । यथा स्वरूपमेयं स्वसंवित् फलमित्यस्ति प्रमाणादिव्यवस्थेत्यर्थः अतोऽवद्भावस्य

"तथात्मनि सुखादीनां यथा वित्तिः फलं तैरे । २०

तथा सर्वत्र संयोज्या मान-मेय-फलस्थितिः" ॥ [ ]

प्रकाशानुभवात्मत्वोपपत्तेऽस्ती संविदि इति सा योग्यता मानं मेयं रूपं फलं स्ववित्त्यादीनाम-स्त्य यदि तर्हि नीलादीनां स्वप्रकाशो वित्तिश्च 'कथमहं नीलं वेद्मि' इति कर्तृ-कर्म-क्रियाभेदोल्लेखः यथा सुखिनुभूयमानमध्यात्ममात्मानं वेद्मि सुखादीनि चासौ दृष्ट एव । अथान्यग्राहकाभावात् तत्रासौ मिथ्योल्लिखते नीलादावपि व्यतिरिक्तप्रकाशाभावात् भेदोऽवसेयः कर्तृ-कर्मादितया २५ सिध्यो वा परोक्षस्य नीलादेरेव प्रकाशनाम् । अथासाः कर्म-कर्तृ-क्रियाभेदाध्यवसितेयो(र्यो)जं यत्स्वेम् निर्बीजं योग्ययोगात्, मैव, तत् कचिदपि कर्मादिभेदस्य वास्तवस्यानुपलब्धेर्यातिपरम्परामात्रं अनादिवासनाप्रभवप्रधानादिविकल्पवदसावभ्युपगन्तव्यः । यदपि 'विरोधात्र संवेदनं भवत्यहुल्य-

१ पयशु-आ० । २-रितः रस-वा० बा० । ३-दृशावेशामद्-वा० बा० आ० हा० वि० विना । ४-ब्रतैवाभ्युपेय तथा-वा० बा० विना । ५ प्रमितिश्चि या व्याप्य-आ० । ६-मितिस्तु पलम्भ-वा० बा० । ७ सिध्यं सि-वा० बा० आ० हा० वि० विना । ८-माण दय-आ० हा० वि० । ९ तच ह-वा० बा० विना । १०-यन्तुं शक्य न वा० बा० । ११-यादे सुखा-वा० बा० ।-यादे सुखा-आ० । १२-मा-त्मविषये प्रमाण सेवा-वा० बा० । १३ फलं तु सुखा-आ० । १४-प्रासेमेतिनि-आ० । १५ सर्व-प्र मी-वा० बा० । १६-मथा प्र-आ० ।-नथाऽप्र-भो० ।- नथा प्र-भो० । १७-दयः संवि-वा० बा० विना । १८ यदि ते प्र वा० बा० । १९-थायो-वा० बा० विना । २०-कादृशाख्या-वा० बा० विना । २१-स्याभेदेते-वा० बा० । २२ तत्रं । त-आ० हा० वि० । ततं । त-वा० बा० । २३ संयोज्य मान-भो० आ० हा० वि० । संयोज्य मानं मे-भो० । २४-स्यास्य यो-वा० बा० । २५-स्यास्ता संविद् इति आ० । २६ मान मेयं रूप फलं आ० । मान मेयं रूपं वि० । २७-चार्वाकस्य वा० बा० विना । २८-यात्मनि सु-वि० सं० । २९-स्वार्हा या मा-भो० आ० हा० वि० ।-स्वार्हा याभश्रा-वा० बा० । ३०-नि नासौ आ० । ३१-रिक्तप्र-वि० ।-रिक्ताप्र-भो० । ३२-यसायः वा० बा० । ३३-कर्मादितया सिद्ध्यो वा प-आ० । ३४ सिध्यो वा प-वा० बा० हा० वि० । ३५-नादेरेव प्र-आ० । ३६-र्यं तिर्बीज या-भा० ।-र्यं निर्बीजं या हा० वि० । ३७ यान्यं या योगात् वा० बा० । ३८-दस्य वास्तवस्या-वा० बा० ।

[illegible] संवेदनमुखेन [illegible] सिद्धः नीलादीनां [illegible]
[illegible] संवेदन[illegible] [illegible]
[illegible] संवेदन[illegible] । [illegible] [illegible]
[illegible] इति, [illegible] नीलादीनाम[illegible]
५ [illegible]
[illegible] । ननु [illegible] भेदः । [illegible]
[illegible] संविदा नीलादेः [illegible] ।
[illegible]
[illegible]
१० [illegible] नीलबोधयो[illegible]
[illegible] सहैव [illegible] प्रतिपादितम् [illegible]
[illegible] नील[illegible] [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible] ।" [ ] [illegible]
१५ [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
२० [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
२५ [illegible]

[illegible]

न च ग्राह्यादिरूपतयैव नीलादयोऽनुभवरूपा जायन्ते येनासुखादयोऽपि नानुभ(नुभय)-निरितेनाः स्वरू(न्ना)पेणाद्यमाने:, भिन्नदेशम् । स्मादेशायेक्षा(शायक्षा)प्रदशायामपि पाग्रवाद-रूदेव निदनायभागोऽयो भविष्यतीति न कार्यव्यतिरेकादप्यर्थपात्रकल्पना युक्तिमतीति सर्वत्र निषा(नि)मार्त्तेव । !!]

[!! ननु यदि विज्ञप्तिमात्रमेव(या)स्युपेय(या) तथापति मेय-मानमिति व्यवहारविलोपः तस्य५ भेदपूर्वकत्वात्—यतो हि प्रमितिक्रियया व्याप्यमानत्वात् प्रमेयम् कर्मणि कृत्यविधानात् । तथा नीलादयो यदि बोधः स्यात् तदाऽसौ स्वतन्त्रा(न्त्रो) नीलदर्शं प्रतीत्य प्रमाता भवेत् चक्षुरा-दयश्च करणतया मानं भवेयुर्यथेतिम् उपलम्भसाध्यत्वात् स्यात् तदभावे तु न नीलादयः संविद्रूपाः सिध्यन्ति भिन्नाः प्रमाणनिबन्धनत्वात् । न च स्वसंवेदनमेव प्रमाणं व्यवस्थाकारि तत्र दृष्टान्तासिद्धेः । प्रदीपादयोऽपि हि परप्रकाश्या एव च (न च) तेनैवात्मना स एवाधिगन्तुं शक्यम् १० न तदन्यरूपेण तेनैव तदेवाहृत्यमं स्पृश्यत इति, असदेतत्, यतो यथा बाह्यार्थवादे सुखादीनामात्मा विषयं प्रमाणम् तेषामेव वेदनं विषिः फलं सुखादयश्च मेयं यथैवापरेषामात्मा अपरोक्षो म(मे)यः तस्य च प्रकाशरूपता मानम् तत्प्रतिभासः फलम् तदन्यग्राहकाभावेऽप्यनवस्थाप्रसक्तेर्मतनि(र्मतमि)-त्येव म(मे)य-मान-फलानां व्यवस्था सर्वत्र नीलादौ योजनीया विज्ञा(ज्ञान)वादे । !!]

[!! अथ नीलादीनां अज्ञानात्म संविदस्ति सुखादेरात्मनैव प्रकाशरूपत्वात् संविदिति, अत्रो-१५ च्यते: तत्रापि ज्ञानवादेऽनुभवात्मकत्वात् प्रकाशरूपत्वापत्तेः नीलादेर्यः स्वात्मनः संविदि कर्मत्वायां योग्या नहि ते तत्र दर्शने जडरूपाः संविदस्तथैऽयोगादित्युक्तेरिति तस्मात् सा नीलादीनां प्रमेयाद्यर्थभेदोल्लेखः । यथा स्वरूपमेयं स्वसंवित् फलमित्यस्ति प्रमाणादिव्यवस्थेत्यर्थः श्लोकद्वयस्य

> "तत्रात्मनि सुखादीनां यथा विषिः फलं मतं । २०
> तथा सर्वत्र संयोज्या मान-मेय-फलस्थितिः" ॥ [ ]

अत्राप्यनुभवात्मत्वयोर्योऽस्ती संविदि इति सा योग्यता मानं मेयं रूपं फलं स्वविस्तार्थायो-ऽस्य यदि तर्हि नीलादीनां स्वप्रकाशो विषिश्च 'कथमहं नीलं वेद्मि' इति कर्तृ-कर्म-क्रियाभेदोल्लेखः यथा स्वतिसुखादीनामात्मन्यहमात्मानं वेद्मि सुखादीनि यासौ दृष्ट एव । अथान्यग्राहकाभावात तत्रासौ मिथ्योल्लेखस्तर्हि नीलादावपि व्यतिरिक्तप्रकाशाभावात् भेदोऽर्थसेयः कर्तृ-कर्मादितया २५ मिथ्यो वा परोक्षस्य नीलादेरेव प्रकाशनात् । अथास्याः कर्म-कर्तृ-क्रियाभेदाध्यवसितेर्वी(तेर्वा)जं यत्कर्म्म् निर्बीजं चोन्ययोगात्, नैव, तद् कश्चिदपि कर्त्रादिभेदस्य वास्तवस्यानुपलब्धेर्यातिपरम्परामात्रं अनादिवासनाप्रभवप्रधानादिविकल्पवदसावभ्युपगन्तव्यः । यद्यपि 'विरोधाश संवेदनं भवत्यकुल्य-

१ यथञ्च—आ० । २-रिकः स्व—बा० बा० । ३-दशावेशाप्रद्—बा० बा० आ० हा० वि० विना । ४-स्तैषाम्युपेय तथा—बा० बा० विना । ५ प्रमितिनि या व्याप्य-आ० । ६-मितिस्तु यलम्भ-बा० बा० । ७ सिध्यं सि—बा० बा० आ० हा० वि० विना । ८-माण दश—आ० हा० वि० । ९ तय ए—बा० बा० विना । १०-गन्तुं शक्य न बा० बा० । ११-वादे सुखा—बा० बा० ।-वादे तुखा—आ० । १२-मा-रमविषयावे प्रमाण तेषा—बा० बा० । १३ फलं तु सुखा—आ० । १४-प्रासेर्मेतिनि—आ० । १५ सर्व-त्र नी—बा० बा० । १६-नथा प्र—आ० ।-नथऽप्र—भो० ।- नथ्या प्र—भो० । १७-दयः संवि—बा० बा० विना । १८ नहि ते त्र बा० बा० । १९-थायो-बा० बा० विना । २०-कादयाख्या—बा० बा० विना । २१-स्याभेदोल्ले—बा० बा० । २२ तथं । त—आ० हा० वि० । ततं । त—बा० बा० । २३ संयोज्य मान—भो० आ० हा० वि० । संयोज्य मानं मे—भो० । २४-स्याश यो—बा० बा० । २५-स्यास्ता संविद् इति आ० । २६ मान मेयं रूप फलं आ० । मान मेयं रूपं वि० । २७-चायोंकस्य बा० बा० विना । २८-थात्मनि सु—वि० सं० । २९-स्वादौ वा मा—भो० आ० हा० वि० ।-स्वादौ घामत्रा—बा० बा० । ३०-नि नासौ आ० । ३१-रिक्तप्र—वि० ।-रिकाप्र—भो० । ३२-यसायः बा० बा० । ३३-कर्मदितया सिद्ध्यो वा प—आ० । ३४ मिथ्यो वा प—बा० बा० हा० वि० । ३५-लादेरेव प्र—आ० । ३६-ज्यं तिर्बीज वा—आ० ।-ज्यं निर्बीजं वा हा० वि० । ३७ वान्यं वा योगात् बा० बा० । ३८-दस्य वास्तवस्या—बा० बा० ।

स्वतः संवेदनमुक्तं विज्ञानमात्रे [illegible] सिद्धः नीलादीनां [illegible] स्वतः [illegible]
[illegible] स्वतः संवेदन[illegible]
[illegible] संवेदन[illegible]। [illegible]
[illegible] इति, [illegible]
५ [illegible]
[illegible]। ननु [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
१० [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]। [illegible]
[illegible] ।" [[illegible]] [illegible]
१५ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
२० [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
२५ [illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

न च चक्षुरादिव्यापारादेव नीलादयोऽनुभवरूपा जायन्ते येनाक्षुरादयोऽपि मानुत्व(नुभवत्व)-निर्देशाः स्यात्(स्या)र्थाद्यनुभवसेः, नित्यदेयम्। समाद्देशापेक्षा(शायका)ग्रहणायामपि चान्ततय-स्वादेव निदायचाभावोदयो भविष्यतीति न कार्यव्यतिरेकादन्यर्थयादकल्पना युक्तिमतीति सर्वत्र चित्ता(ति)मात्रमेव। !!]

[!! ननु यदि विज्ञप्तिमात्रमेव(वा)भ्युपेय(या) तथापीति मेय-मानमिति व्यवहारविलोपः तस्य५ भेदपूर्वकत्वात्—कर्मो हि मेमितिक्रियया व्याप्यमानत्वात् प्रमेयम् कर्मणि कृत्यविधानात्। तथा नीलादयो यदि बोधः स्यात् तदाऽसौ स्वतन्त्रा(तन्त्रो) नीलदृशं प्रतीत्य प्रमाता भवेत् चक्षुरा-दयश्च करणतया मानं भवेयुरर्थमितिम् उपलम्भमापद्यन्ताम् स्यात् तदभावे तु न नीलादयः संविद्रूपाः सिध्यन्ति गिरः प्रमाणनिबन्धनत्वात्। न च स्वसंवेदनमेव प्रमाणं व्यवस्थाकारि तत्र दृष्टान्तासिद्धेः। प्रदीपादयोऽपि हि परप्रकाश्या एव च (न च) तेनैवात्मना स्व एवाधिगन्तुं शक्यम्१० न ह्यङ्गुल्यग्रेण तेनैव तदेवाङ्गुल्यग्रं स्पृश्यत इति, असदेतत्। यतो यथा बाह्यार्थवादे सुखादीनामात्मा निरपेक्ष प्रमाणम् तेषामेव वेदनं वित्तिः फलं सुखादयश्च मेयं यथैवापरेषामात्मा अपरोक्षो म(मे)यः तस्य च प्रकाशरूपता मानम् तत्प्रतिभागः फलम् तदन्यग्राहकाभावेऽप्यनवस्थाप्रमितेर्मतनि(र्मतमि)-त्येव म(मे)य-मान-फलानां व्यवस्था सर्वत्र नीलादौ योजनीया विज्ञा(ज्ञान)वादे। !!]

[!! अथ नीलादीनां जडत्वात् संविदस्ति सुखादेरात्मनैव प्रकाशरूपत्वात् संविदिति, अत्रो-१५ च्यते, तदापि ज्ञानवादेऽनुभवात्मकत्वात् प्रकाशरूपत्वापत्तेः नीलादेर्यः स्वात्मनः संविदि कर्मत्वायां योग्या यदि ते तत्र दर्शने जडरूपाः संविदस्तथैवाऽयोगादित्युक्तेरिति तस्मात् सा नीलादीनां प्रकाशात्मैवाभेदोल्लेखः। यथा स्वरूपमेयं स्वसंवित् फलमित्यस्ति प्रमाणादिव्यवस्थेत्यर्थः तथोक्तश्च

"तत्रात्मनि सुखादीनां यथा वित्तिः फलं स्वरं। २०
तथा सर्वत्र संयोज्या मान-मेय-फलस्थितिः"॥ [ ]

अत्राप्यनुभवात्मत्वयोग्यतोऽस्ति संविदि इति सा योग्यता मानं मेयं रूपं फलं स्ववित्त्याचोद्यो-क्तस्य यदि तर्हि नीलादीनां स्वप्रकाशो वित्तिश्च 'कथमहं नीलं वेद्मि' इति कर्तृ-कर्म-क्रियाभेदोल्लेखः यथा ह्यतिसुखादीचामात्राप्यहमात्मानं वेद्मि सुखादीनि वासौ दृष्ट एव। अथान्यग्राहकाभावात् तत्रासौ मिथ्योल्लेखस्तर्हि नीलादावपि व्यतिरिक्तप्रकाशाभावात् भेदोऽर्थसेयः कर्तृ-कर्मादितया२५ मिथ्यो वा परोक्षस्य नीलादेरेव प्रकाशनात्। अपास्ताः कर्म-कर्तृ-क्रियाभेदाध्यवसितेयी(तेर्या)जं यत्क्वम् निर्बीजं धीन्ययोगात्, नैव। तत् क्वचिदपि कर्त्रादिभेदस्य वास्तवस्यानुपलब्धेर्वासितपरम्परामात्रं अनादिवासनाप्रभवप्रधानादिविकल्पवदसावभ्युपगन्तव्यः। यदपि 'विरोधान्न संवेदनं भवत्यङ्गुल्य-

---

१ यद्यङ्गु-भा०। २-रितः स-वा० बा०। ३-दुत्वावेशाग्रह-वा० बा० आ० हा० वि० विना। ४-मनेवाभ्युपेय तया-वा० बा० विना। ५ प्रमितिर्हि या व्याप्य-भा०। ६-मितिस्तु पलम्भ-वा० बा०। ७ सिध्यं सि-वा० बा० भा० हा० वि० विना। ८-माण दय-आ० हा० वि०। ९ तय द-वा० बा० विना। १०-गन्तुं शक्य न वा० बा०। ११-पादे सुखा-वा० बा०।-वादे सुखा-भा०। १२-मा-त्मविपाये प्रमाण तेषा-वा० बा०। १३ फलं सु सुखा-भा०। १४-प्रासेर्मतिनि-भा०। १५ सर्व-त्र नी-वा० बा०। १६-जाड्या प्र-भा०।-जाड्यऽप्र-भा०।-जाड्या प्र-भा०। १७-दृयः संवि-वा० बा० विना। १८ यदि ते त्र वा० बा०। १९-थायो-वा० बा० विना। २०-काश्याख्या-वा० बा० विना। २१-त्याभेदेल्ले-वा० बा०। २२ तरं। त-आ० हा० वि०। ततं। त-वा० बा०। २३ संयोज्य मान-भा० आ० हा० वि०। संयोज्य मानं मे-भा०। २४-त्यात्म यो-वा० बा०। २५-त्यास्ता संविद् इति आ०। २६ मान मेयं रूप फलं आ०। मान मेयं रूपं वि०। २७-चार्योक्तस्य वा० बा० विना। २८-धात्मनि सु-वि० बे०। २९-त्वादौ वा मा-भा० आ० हा० वि०।-त्वादो धामन्ना-वा० बा०। ३०-नि भासौ आ०। ३१-रिक्तप्र-वि०।-रिक्ताप्र-भा०। ३२-यसायः वा० बा०। ३३-कर्मदितया सिद्धो वा प-आ०। ३४ मिथ्यो वा प-वा० बा० हा० वि०। ३५-त्वादेरव प्र-आ०। ३६-त्यं तिर्बीज वा-भा०।-त्यं निर्बीजं वा हा० वि०। ३७ धान्यं या योगात् वा० बा०। ३८-दस्य वास्तवस्या-वा० बा०।

स्वरूपं संवेदनमुच्यते विज्ञानस्यापि इत्येवं सिद्धः नीलादीनां स्वरूपं च स्वरूपं [illegible] ज्ञानस्यापि स्वरूपमेव स्वरूपं संवेदन[illegible]व्यतिरिक्तस्य [illegible] [illegible] अन्योन्यस्य संवेदनायोगात्। यदप्युक्तम् 'संविदो भिन्नमिति [illegible] [illegible] अभेदप्रसिद्धः' इति, तदप्यसंगतमेव। नीलादीनाम[illegible] [illegible]
५ [illegible] तथा च [illegible]योगात् साध्ये [illegible] प्रसङ्गात्। ननु कः सहोपलम्भनियमार्थस्य भेदः? [illegible] सहोपलम्भेन पृथग्भावनिराकरणात् तद्वारेण संविद्रूपं नीलादेः प्रसाध्यते। [illegible] न चैव [illegible] द्वयोरपि हेत्वोर्व्यापारभेदोऽस्त्येव [illegible] द्वयोरपि [illegible] [illegible]
१० [illegible] नहि सह[illegible]योः [illegible] [illegible] सहेति प्राह प्रतीतावियम् [illegible] [illegible] तेन नील-तद्धियोः स्वरूपभेदेऽपि [illegible] [illegible] । अत्र भाष्यः [illegible] —"[illegible] [illegible] नीलानुभवात्।" [ ] [illegible]
१५ [illegible]
२० [illegible]
२५ [illegible]

[illegible]

न च चक्षुरादिव्यवधानादेव नीलादयोऽनुभवरूपा आपन्ने येनाभ्युपगमेऽपि मानुभ(नुभवन)-वितिंनाः स्यान(न्ना)र्थाकारप्रतीतेः, तिष्ठदेवम्। स्याद्वादापेक्षा(नापेक्षा)मद्वयायामपि ध्यानकाय-द्वारेव विदनाद्याभागोदयो भविष्यतीति न कार्यव्यतिरेकादन्यथानुपपत्त्या युक्तिमतीति सर्वत्र विन्त(नि)मार्गे चेव। !!]

[!! ननु यदि निश्चितमात्रमेव(वा)भ्युपेय(या) तथापि मेय-मानमिति व्यवहारविलोपः तस्य ५ वैरूप्येण तान्—कर्मो हि प्रमितिविषयता व्याप्यमानत्वात् प्रमेयम् कर्मणि कृत्यविधानात्। तथा नीलादयो यदि बोधः स्यात् तदाऽसौ स्वतन्त्रा(न्त्रो) नीलरूपं प्रतीत्य प्रमाता भवेत् चक्षुरा-दयश्च करणतया मानं भवेयुर्थमितिम् उपलभ्यमानत्वात् स्यात् तदभावे तु न नीलादयः संविद्रूपाः निर्विभंत्य निद्रा प्रमाणनिबन्धनत्वात्। न च स्वसंवेदनमेव प्रमाणं व्यवस्थाकारि तेन दर्शनादिति। प्रदीपादयोऽपि हि परप्रकाश्या एव च (न च) तेनैवात्मना स प्रथापयितुं शक्यम् १० न तत्नन्यपेक्ष तेनैव तदेवाहृत्यं स्फुरयत इति, मनस्वेतत्। यतो यथा बाह्यार्थवादे सुखादीनामात्मा विषये प्रमाणम् तेषामेव वेदनं वित्तिः फलं सुखादयश्च मेयं यथैवापरेषामात्मा अपरोक्षो म(मि)यः तस्य च प्रकाशरूपता मानम् तत्प्रतिभासः फलम् तदन्यग्राहकाभावेऽप्यनवस्थापत्तिर्मितनि(मंतमि)-यमेव म(मे)य-मान-फलानां व्यवस्था तथैव नीलादौ योजनीया विज्ञा(ज्ञान)वादे। !!]

[!! अथ नीलादीनां जडत्वाच्च संविद्दस्ति सुखादेरात्मनश्च प्रकाशरूपत्वात् संविदिति, अत्रो- १५ च्यते, तथापि मानवादेऽनुभवात्मकत्वात् प्रकाशरूपतापत्तेः नीलादेरपि स्वात्मनः संविदि अर्थान्तरत्वं योग्या नहि ते तत्र दर्शने जडरूपाः संविदस्तथोऽयोगादित्युक्तेरिति तस्मात् सा नीलादीनां प्रमीतासाम्यमेदोऽहिमः। यथा स्वरूपमेयं स्वसंवित् फलमित्यस्ति प्रमाणादिव्यवस्थेत्यर्थः श्लोकद्वयस्य

"तत्रात्मनि सुखादीनां यथा वित्तिः फलं मतं। २०
तथा सर्वत्र संयोज्या मान-मेय-फलस्थितिः" ॥ [ ]

यत्राप्यनुभवात्मकोपयोगोऽस्ती संविदि इति सा योग्यता मानं मेयं रूपं फलं स्ववित्याचार्यो-क्तम् यदि तर्हि नीलादीनां स्वप्रकाशो विदितम् 'कथमहं नीलं वेद्मि' इति कर्तृ-कर्म-क्रियाभेदोल्लेखः यथैव सतिसुखादीषामाश्रयमहमात्मानं वेद्मि सुखादीनि चासौ एव एव। अथान्यग्रहकाभावात् तत्रासौ निष्फलोऽस्तर्हि नीलादावपि व्यतिरिक्तप्रकाशाभावात् भेदोऽपैसेयः कर्तृ-कर्मादितया २५ मिथ्यो वा परोक्षस्य नीलादेरेव प्रकाशनात्। अथास्याः कर्म-कर्तृ-क्रियाभेदाध्यवसितेर्वा(तेर्या)ऽत्र फलांशम् निर्वाज्ञ योग्यपोगात्, नैव, ननु क्वचिदपि कर्मादिभेदेऽस्य वास्तवस्यानुपलब्धेर्यांतिपदकपरामात्र अनादिवासनाप्रभवप्रधानादिविकल्पवदसायभ्युपगन्तव्यः। यदपि 'विरोधात्र संवेदनं भवत्यनुक्त्य-

---

१ यथासु-आ०। २-विवः स-बा० बा०। ३-दसायेक्षामद्-बा० बा० आ० हा० वि० विना। ४-वंतथाभ्युपेय तथा-बा० बा० विना। ५ प्रमितिविषि या व्याप्य-आ०। ६-मितिस्तु फलमा-बा० बा०। ७ विरयं वि-बा० बा० आ० हा० वि० विना। ८-मात्र एव-आ० हा० वि०। ९ तप इ-बा० बा० विना। १०-यन्तुं शक्य न बा० बा०। ११-वादे सुखा-बा० बा० ।-वादे सुखा-आ०। १२-मा-त्मविषये प्रमाण तेषा-बा० बा०। १३ फलं तु सुखा-आ०। १४-प्रासेमंतिनि-आ०। १५ सर्वे-त्र नी-बा० बा०। १६ नथा प्र-आ० ।-नथऽप्र-मां० ।- नथ्या प्र-आं०। १७-दया संवि-बा० बा० विना। १८ नहि ते त्र बा० बा०। १९-थायो-बा० बा० विना। २०-कादयावया-बा० बा० विना। २१-न्याभेदोहे बा० बा०। २२ तदा। त-आ० हा० वि०। तत। त-बा० बा०। २३ संयोज्य मान-मां० आ० हा० वि०। स्वयोज्य मानं मे आ०। २४-स्वाय यो-बा० बा०। २५-यायता संविदि इति [illegible]। २६ मान मेय रूप फल आ०। मान मेयं रूपं वि०। २७-याचौंकत्त बा० बा० विना। २८-[illegible] तु वि० स०। २९ स्यादौ या मा-मां० आ० हा० वि० ।-स्यादौ याभया-बा० बा०। ३०-मि [illegible] आ०। ३१ विनाः प्र-बा० ।-विनाम-आ०। ३२-यतापः बा० बा०। ३३-कर्मादितया [illegible] प-आ०। ३४ मिथ्यो वा प-बा० बा० हा० वि०। ३५-लादेरेव प्र-आ०। ३६-अर्थ [illegible] आ० ।-र्थं निर्वाज्ञ या हा० वि०। ३७ यान्यं या योगात् बा० बा०। ३८-इत्र [illegible]

प्रवृत्' इत्युक्तम्, तदसारम्; यतोऽपरोक्षं स्वरूपं स्वानुभवः तत् कुतोऽत्र विरोधः? तथा 'अङ्गुल्यग्रं तेनैव अङ्गुल्यग्रेण न संस्पृश(श्य)ते' इत्यत्रापि किं यथाऽनित्या(थाऽन्येना)ङ्गुल्यग्रेणाङ्गुल्यग्रं संस्पृश्यते उत यथा तेनैव? तत्राद्ये पक्षे सिद्धसाध्यता नहि यथाऽन्येनाङ्गुल्यग्रेणान्यदङ्गुल्यग्रं संस्पृश्यते तत्संस्पर्शः सम्भवी। अथ द्वितीयः पक्षः सोऽप्यनुपपन्नः, तेन तत्संस्पर्श(र्शस्य) न्यायप्राप्तत्वात्। नहि
५ स्वरूपव्यतिरेकेणाङ्गुल्यग्रसम्भवे(वः)। न च स्वरूपमात्मानं न संस्पृशति तथाभ्युपगमे स्वरूपहानिप्रसक्तेः, नीलादीनां त्वपरोक्षप्रकाशस्वभावता स्वरूपमेव अन्यथा तेषां परोक्षताऽभावप्रसङ्गादिति प्रतिपादितत्वात् तत् व्यवस्थितमेतत् नीलादयोऽपरोक्षस्वभावाः प्रकाशन्त इति विज्ञप्तिमात्रकमेवैवं बहिरर्थ(र्थ)संस्पर्शरहितम् तदपि विज्ञप्तिमात्रं पूर्वापरस्वभावविविक्तमध्यक्षणरूपं स्वसंवेदनाध्यक्षतः तथैव प्रतिपत्तेः पौर्वापर्ये प्रमाणात्(णाऽ)प्रवृत्तेः प्रतिपादनादिति क्षणिकविज्ञप्तिमात्रावलम्बी
१० शुद्धपर्यायाऽस्ति(स्तिक)मेद ऋजुसूत्रः ??]

[३ पुनः ऋजुसूत्रपदस्य व्याख्यान्तरमाश्रित्य शून्यवादः]

[?? यद्वा एकत्वानेकत्वसमस्तधर्मकलापविकलता(त)या तदपि विज्ञानं शून्यरूपमृजु सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः। स हि माध्यमिकदर्शनावलम्बी सर्वभावनैरात्मा(नैरात्म्य)प्रतिपादनाय प्रमा-

---

१–रूप स्वा–आ०। २– मपि नै–वा० या० विना।

"तेनेव अंगुलग्गेन तं अंगुलग्गं परामसेय्य"—सुमंगलविलासिनी (बुद्धघोषकृता दीघनिकायटीका) भा० १ सामञ्ञफलसुत्तवण्णना पृ० २३५ पं० ३४।

"न हि चित्तं चित्तं समनुपश्यति। तद्यथा न तयैव असिधारया सैव असिधारा शक्यते छेत्तुम्। न तेनैव अङ्गुल्यग्रेण तदेव अङ्गुल्यग्रं स्प्रष्टुं शक्यते"—शिक्षासमु० परि० ११ पृ० २३५ पं० ६।

"उक्तं च लोकनाथेन चित्तं चित्तं न पश्यति ॥ १७ ॥

न छिनत्ति यथात्मानमसिधारा तथा मनः" ॥ १८ ॥—बोधिचर्याव० प्रज्ञापार० पञ्जि० परि० ९ पृ० ३९१–३९२ तथा ३९३ पं० २–५।

मध्यमकवृ० प्रत्ययप० प्र० १ पृ० ६२ पं० ८–पृ० ६३ पं० १ तथा टिप्प० १।

"न चैकस्यैवमात्मत्वे दृष्टान्तः कश्चिदस्ति ते"।

"न हि पाकः पच्यते, छिदा वा छिद्यते, नापि करणकर्मत्वं कर्तृकर्मत्वं वा एकस्य संभवति न हि अङ्गुल्यग्रेण तदङ्गुल्यग्रं स्पृश्यते" इत्यादि—श्लो० वा० शून्य० श्लो० ६४ पार्थ० व्या० पृ० २८७ पं० २१–पृ० २८८ पं० ९।

{"अङ्गुल्यग्रं न तेनैव अङ्गुल्यग्रेण स्पृश्यते"

"यथा अङ्गुल्यग्रं न तेनैव अङ्गुल्यग्रेण स्पृश्यते एवं ज्ञानं न तेनैव ज्ञानेन ग्रहीतुं शक्यते"—न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका पृ० ४९९ पं० १०।

"अङ्गुल्यग्रं यथात्मानं नात्मना स्प्रष्टुमर्हति।

स्वांशेन ज्ञानमप्येवं नात्मानं ज्ञातुमर्हति" ॥–प्रकरणपञ्चिका पृ० ६३। न्यायकणिका पृ० २६८।

"नो खलु अङ्गुल्यैव अङ्गुली स्पृश्यते" इत्यादि। तथा,

"यथोक्तम्–

अङ्गुल्यग्रं यथात्मानं नात्मना स्प्रष्टुमर्हति"। न्यायमकरन्दे पृ० १३१ पं० ८ तथा पृ० १४२ पं० ११। [illegible] पृ० ११९। सर्वार्थसिद्धौ पृ० १९१।}—[illegible] भा० १ पृ० १।

३–स्पृश्य इ–आ०। ४–था नित्यङ्गुल्यग्रेणाङ्गुल्यग्रं वा० बा०। ५–स्पृश्येने वा० बा० भा० हा० वि० विना। ६ उत यथा वा० बा० विना। ७–ल्यग्रेणा दृ–भा० मा० आ० हा० वि०।–ल्यग्रेणेदमङ्गु–[illegible] ८–त्स्पर्शः संभ–वा० बा० विना। ९–प्रस्ताविरे वा० बा०। प्रत्यय–भा० मा० हा० वि०। १०–[illegible] आ०। ११–[illegible]–वा० बा० विना। १२–दृक्षि नु–आ०। १३–पर्यायो–वा० बा० विना। १४ [illegible] द–भा०। १५–[illegible] य–वा० बा० भा० हा० वि०। १६–ए तद्–वा० बा० विना। १७ शून्ये इ भा०। १८–[illegible]–वा० बा०।

स्यति—यद् विज्ञानदर्शनायभासि न तत् परमार्थग्राह्य(सद्रूप)इतिमयतरति यथा ति
मिरिकस्यावभासि इन्दु(द्विन्दु)मयं विज्ञानदर्शनावभासिनश्च स्तम्भकुम्भादयः प्रतिभासानि
अप्यपि नु(उ)नं यन् तिमिरिकावभासिनश्चन्द्रद्वयादयो न परमार्थसत्त्व(न्तः) तत्र कार
दोषात् बोधो(बाधो)द्भाव(वा)परिशुद्धदर्शनदोषाभावेनेन्दुमण्डलादयो न वितथास्(स्त
रेन्द्रोपविरहेण् बाधाभावादेवेत्यसिद्धः प्रतिभासाविशेषा(षात्), असदेतत् ; बाधकत्वायो
तथाहि—न विज्ञानस्य तत्कालभाविस्वरूपं बाध्यते(बाध्यते) तैदानीं तस्य स्वरूपेण प्रतिभा
नान्नुपपन्नत्वम्, उत्तरकालेन तस्य ज्ञानस्योत्तरकाल(लम)भावात् नापि प्रमेयं प्रतिभा
रूपेण बाध्यते, तस्य विज्ञानप्रतिभासादेवाभावासिद्धेः । नान्यप्रतिभाससमानरूपत्वात् सत्या
धारिणा स्पर्शादिलक्षणेन प्रतिभासाभावात् तैन्नान्यत्वात् । न चान्याभावेऽन्यस्याप्यभाव
प्रसङ्गात् । नापि प्रवृत्तिरूपतया बाध्यते, तत्प्रत्यासेवापारसत्त्वायोगात् तस्याः । नाप्यनुत्पत्त
दयाऽऽदोषात् । नाप्यर्थक्रिया उत्पत्ति-द्वयोरप्यसत्त्वायोगात् । न च तैस्या भा(अभा)वे
रूपम्, तस्यास्ततोऽन्यत्वात् । न चार्थक्रियासद्भावादर्थस्य सत्त्वम् अर्थक्रियाया अपि सत्ता
सिद्धे(द्धेः) । नाप्यपरार्थक्रियाभावात् तैस्याः सत्त्वम् अनवस्थाप्रसक्ते(क्तेः) । नाप्यर्थजन्यत
क्रियासत्त्वम् इतरेतराश्रयप्रसङ्गात् । न च सत्तासम्बन्धात् भावान(नां) सत्त्वम् सैत्ता-सत्तत्व
निषेधात्(धात्) । नाप्युत्पाद-व्यय ध्रौव्ययोगात् विरोधाद्यनेकदूषणाघातत्वात् बाधकसद्भाव
भेदस्य सन्तानमतिप्रसङ्गात् । नाप्येकसन्तानम् एककालमेकत्वानेककालाविकल्पदर्शनद्वयादे
नापि भिन्नकालैकार्थम् धटज्ञानानन्तरभाविनस्तज्ञ(नस्तज्ज्ञा)नस्य बाधकत्वापत्तेः ।
भिन्नार्थ [illegible] तद्
तस्य [illegible] र्थसाध
बाधक [illegible] पूर्वस्य
विषयाभावप्रतिपादकत्वानुपपत्तेरन्यथातिप्रसङ्गः । न च दुष्टकारणप्रभवत्वेनेन्दुद्वयावभा
स्यासत्यार्थविषयता तत्प्रभवत्वस्यानुमत्वात् रिन्द्रियत्वेन तद्गतदोषस्याप्यप्रत्यक्षेणाप्रतिपत्तेः ।

१-भासादिन्दु-भा० भा० दा० वि० ।-भासादिदु-भो० । २ बोधदृषाद्य परि-बा०
३-दोषासंवेदे-भा० दा० वि० ।-दोषासंवेदे-भो० ।-दोषास्तोके-भा० । अत्र-'इन्दसेयास्त्वेवेन्द
पाठः संभवेत् । ४ वितथ्यस्तूत्र भा० वि० । वितथ्यस्तत्र बा० बा० भो० भो० । ५-रणदोषः विर-
स्यादोष विर-भा० भो० दा० वि० । ६-दाद्या-दा० । ७-भासाविशेषाः सदे-भा० ।-भासाविशे
दोषदेतद् व्याघत्या-बा० बा० ।-भासादिदाघाऽसदे-भो० भो० । अत्र 'बाधाभावापेत्यसिद्ध
भासाविशेषः असदेतत्' इति पाठसंभव. । ८-रूप बोध्य-भो० ।-रूपं बोध्य-भा० दा० वि०
बोध्य-भो० । ९ तदानीं त रू-भो० । तदानी त रू-भो० । तदानीं तनस्य स्वरूपं बोध्यते ।
तनस्य स्वरूपेण भा० । तदानीं तनस्य स्वरूपेण दा० वि० । १०-मानरूपे-भा० । ११-रूपा
बा० । १२-इत्येस प्र-बा० बा० । १३ तस्यान्यत्वया-बा० बा० । तस्यातत्या-भा० । तस्या
दा० । तस्य स्वस्या-वि० । १४ स्वत प्रयासत्तायोगात् तस्या नाप्यनुत्पत्ता स्वत प्रया-बा० बा०
प्रयासत्त्वायोगात् तस्या नाप्यनुत्पत्ता स्वत प्रया-भो० विना । १५-सत्यासिद्धे । भा० । १६ तस्या
बा० बा० । १७ तस्या स-बा० बा० विना । १८ सत्या त-बा० बा० । १९-निषेधत्वात् ना-भ
वि० ।-षेधत्वा ता-बा० बा० । पृ० १०६ पं० ९ । पृ० ११० पं० ८ । २०-स्यात् अपि बाधाध-बा०
२१-व्यस्यां स-बा० बा० विना । २२ नाप्येककालमेकता-बा० बा० । २३-न्तानाम् भा० ।
दयाद्-दा० । २५-द्द बोन् नापि भा० । २६-न्नमेककालमेकार्थम् भो० भो० । २७-ज्ञान
भा भो० । ज्ञानानन्तर भा-भो० । २८-नस्तज्ञान-भो० ।-नस्तज्ञान-बा० बा० । २९-धता-
३०-त्वार्थ प बा० बा० विना । ३१-भाव विरुद्ध । बा० बा० विना । ३२-भाविनया-भा० दा० वि० ।-
नाधाप्यजाते बा० बा० । ३३ बन्धेन भा० । ३४-याणां यास्त-बा० बा० भो० भा० दा० वि० ।
कोटि-बा० बा० । 'तत्प्रभवत्वस्य ज्ञातुमशक्तेरिन्द्रियस्यातीन्द्रियत्वेन' इति पाठः स्यात् । पृ० ९
३६-स्याप्यदो-बा० बा० ।-स्याप्यदो-भा० ।

बाधाभावार्दर्थतयात्वसिद्धिः। न च स्तम्भादीनां परमार्थतस्तत्वं सम्बन्धस्य प्रतिभासविषयत्वात्।
अप्रतिभासविषयत्वे कथं न तदभावः अप्रतिभासविषयस्यानस्वरूपत्वात् न च संवादित्वादपि
स्तम्भादेः सत्यत्वम् समानजातीयोत्तरकालभाविज्ञानवृत्तिलक्षणस्य संवादस्य यावत् तिमिरं तावदि-
न्दुद्वयादावपि भावात्। नापि भिन्नजातीयज्ञानसंवादात्, भ्रान्तज्ञानावभासिनो रजतादेः शुद्धि-
५(क्ति)काज्ञानसंवादात् सत्यत्वप्रसक्तेः, न चैकार्थाद् भिन्नजातीयज्ञानसंवादात् एकार्थत्वे पूर्वापर-
ज्ञानयोरविशेषात् संवादाज्ञानवत् संवादकस्यापि सत्यत्वव्यवस्थापकत्वायोगात्। न च रूप-
-स्पर्शज्ञानयोर्विजातीययोरेकार्थविषयत्वम् रूप-स्पर्शयोर्भेदात्। न च रूप-स्पर्शाधिकरणमेकं
द्रव्यं तयोर्विषयः एकत्वे प्रमाणवृत्तेः प्रतिपादितत्वात्। नापि भिन्नविषयात् संवादप्रत्ययात् संवादे
सत्त्वसिद्धिः शुद्धि(क्ति)कादर्शनात् भ्रान्तदृगवगतरजतादेः प्रै(स)त्यताप्रसङ्गात्। न च स्पर्शज्ञानम-
१० र्थाभावेनोपलब्धेसर्वसत्यप्रतिभासमानस्य दशायां तदभावेऽपि तदुदयोपलब्धेः। न च स्वप्न-जा-
ग्रद्दशाभाविनोर्ज्ञा(र्ज्ञा)नयोः कश्चिद्विशेष इति न संवाददपि सत्यता। न च जाग्रद्दशायामिव
स्वप्नदशायामपि यदेवति तत् सर्वं सत्यं प्रतिभासमानस्यासंसोयोगात्। दृष्टान्तासिद्धितो न सर्व-
भावाभावः प्रतिभासमानस्य स्तम्भादेरेकानेकरूपतयाऽव्यवस्थितेः। तथाहि–कालभेदाद् भिन्नो-
ऽध्यक्षतः प्रतिपत्तुं शक्यम् सन्निहित एव तस्य वृत्ते(त्तेः) नहि मृत्पिण्डस्वरूपग्राह्यध्यक्षं तदा-
१५ ऽसन्निहितं घटमुपलभते तदनुपलम्भे च न तदपेक्षया तेन स्वविषयस्य भेदोऽधिगन्तुं शक्यः
प्रतिपादियोगि(प्रतियोगि)ग्रहणमन्तरेण ततो भिन्नमितिन(मित्यन)धिगते(तेः)। नापि घटस्व-
रूपग्राहिणा तेन मृत्पिण्डाद् भेदोऽधिगम्यते तत्स्वरूपाग्रहणे तस्याप्रवृत्तेः। न च स्मरणमपि भेदो-
ऽ(दा)धिगमे प्रभुः(भु) अध्यक्षे गृहीत एवार्थे तस्य व्यावृत्तेः(व्यापृतेः)। न चाध्यक्षमेतद्ग्रहणक्षममिति
प्रतिपादितत्वात्। न च स्मरणमर्थग्रहणे प्रभवति तस्य स्वरूपमात्रपर्यवसितत्वात्। तत एव
२० स्मरणसहायमप्यवाक्षं(प्यध्यक्षं) न भेदग्रहणे पटु। न पूर्वरूपाग्रहणमेव ततो भेदवेदनं तद्ग्रहणस्य
व्यवस्थापयितुमशक्तेः। न च तत्स्वरूपमेव भेद इति तद्ग्रहणात् सोऽपि गृहीतः, न; अपेक्षया
भेदव्यवस्थितेः अन्यथा स्वरूपापेक्षयापि भेदप्रसक्तेरिति न कालभेदाद् भेदः प्रमाणगोचरः।
नापि "देशभेदाद् भावभेदे मे देशस्याप्यपरदेशभेदाद् भेदशक्तितोऽनवस्थाप्राप्तेः। न चान्यभेदो-
ऽन्यत्रानुविशतीति न देशभेदादपि तद्भेदः। नापि स्वरूपभेदाद् भावभेदः नहि समानकालमुद्भा-
२५ समानयोर्घट-पटयोर्भिन्नं संवेदनं भेदमवस्थापयति प्रकाशमाननील-सुखादिव्यतिरेकेण तस्यानुपल-
म्भतोऽसत्त्वात् सत्त्वेऽपि समानकालस्य भिन्नकालस्य वाऽध्यक्षस्य परोक्षस्य वा ग्रहणक्रियासहितस्य
तद्विका(क)लस्य वा तस्यार्थग्राहकत्वे(त्वा)नुपपत्तेरिति ज्ञाननयप्रस्तावप्रतिपादितत्वान्न भेदग्राहक-
त्वम्। न च तस्य स्वयमर्थाद् भेदेनाप्रतीतस्य भेदग्राहकत्वमन्यथा खरविषाणादेरपि तत्प्रतिशक्तेः(त-
त्प्रसक्तेः)। न च तस्य भेदो ज्ञाताज्ञानादवसीयते तस्याप्यप्रतिपन्नभेदस्य तद्भेदाव्यवस्थापकत्वादिस्या-
३० द्यनवस्थाप्रसक्तेः। न च स्वसंवेदनत एव तद्भेदः सिध्यति तथाभ्युपगमे स्वस्वरूपमात्रपर्यवसितत्वात्
तस्य नीलादिभेदव्यवस्थापकत्वानुपपत्तेः। न च स्वत एव स्तम्भादयो भिन्नस्वरूपा(पाः) प्रथन्ते तथा-

---

१-मार्थतस्त्वं सत्यंध-भां॰ मां॰ ।-मार्थतस्तं सत्यंध-आ॰ ।-मार्थतसं सत्यंध-वा॰ वि॰ । २-यस्यान्त-वा॰ बा॰ मां॰ आ॰ हा॰ वि॰ । ३-याज्ञा-वा॰ बा॰ हा॰ वि॰ । ४-दात भ्रान्त-भां॰ हा॰ । -दाव भ्रान्त-मां॰ ।-दा भ्रान्त-वि॰ । ५-घादज्ञा-मा॰ । ६ प्रस्यन्ताप्र-भां॰ मां॰ हा॰ वि॰ । प्रत्येना-प्रगासेन च आ॰ । ७-ध्य सवसत्य-आ॰ ।-ध्यत् सर्वसत्यं प्रतिभासमानस्याद-वा॰ बा॰ । ८-स्व वि त-वा॰ बा॰ । ९ सत्य प्र-आ॰ । वि॰ सं॰ । १०-सत्वायो-वा॰ बा॰ । ११-त्वायोगादृष्टान्ता-आ॰ हा॰ वि ।-त्वायोगादृष्टान्तात् सि-वा॰ बा॰ ।-त्वायोगादृष्टाता-मां॰ । १२ शक्य संनि-वा॰ बा॰ । १३-रूपं ग्रा-वा॰ बा॰ मां॰ आ॰ हा॰ वि॰ । १४-ग्राह्याध्य-वा॰ बा॰ विना । १५ च त न-आ॰ हा॰ वि॰ । १६-न्नमि——नधि-भां॰ मा॰ हा॰ ।-न्नमि नधि-वा॰ बा॰ ।-न्नमियमनधि-वि॰ ।-न्नमेयमनधि-सं॰ । १७-त ग्रहण-वा॰ बा॰ । १८-णछममि-वा॰ बा॰ ।-ण——छममि-भां॰ मां॰ हा॰ ।-णमण्यम-मि-वि॰ । १९-मर्थं प्रतिपादितत्वान्न च स्मरणमर्थग्रहणे आ॰ विना । २० पूर्वा रू-वा॰ बा॰ विना । २१ देशभेदाद् भेदशक्ति-भा॰ । देशभेदे मे देशस्याप्यपरदेशभेदाद् भेदशक्ति-आ॰ । 'देशभेदाद् भाव-भेदः देशस्यापि अपरदेशभेदात् भेदशक्तितोऽनवस्थाप्राप्तेः' इति पाठो योग्यः । २२-स्व भेदो ज्ञानाज्ञा-वा॰ बा॰ । २३-तद्भेदस्य-आ॰ । २४ स्वरू-वा॰ बा॰ ।

भ्युपगमे स्वसंवेदनरूपतया तेषां अ(स्व)रूपवेदनपर्यवसितत्वेनाऽन्यत्राप्रवृत्तेः परस्परासंवेदनतः कुतः स्वरूपतोऽपि भेदसंविसिद्धिर्भवेत्? स्वरूपसंवेदने सत्यपि भेदस्याप्यप्रतिपत्तेः। न चापरोक्षे नीलस्वरूपे पीतस्य परमाणोरपि तथा(न वा)परप्रतिभासनमेव भेदे वेदनम् यतो नीलस्वरूपस्तंवि-दितत्वाप्रतिभासमानं पीतमपि नास्तीति वा न शक्यमधिगन्तुम् नास्तित्वावेदने च कुतः स्वरूपेमात्रा(त्र)प्रतिभासनाद् भेदसिद्धिः। अपि च, स्तम्भादेः स्थूलावभासिनोऽनेकदिक्संबन्धाद् ५ भेदः परमाणुपर्यन्तः पुनस्तत्परमाणूनामपि भेददिक्षट्कसम्बन्धात् भेदः तत्राप्येवमित्यनव-स्थानेन न भेदव्यवस्थितेरेका(क)रूपा व्यवस्थितौ तद्विपर्ययेण भेदव्यवस्थितेरयोगात्॥]।

[[निन्वनेन न्यायेन यदत्व(थ्य)क्षावभासिनो नीलादेर्न भेदः अभेदस्तु तदा न्यायमात इत्यद्वैत-पक्षेर्न शून्यता। अन्तर्बहिश्च प्रतिभासमानयोः सुख-नीलाद्योरपह्नोतुमशक्यत्वात् "प्रतिभास-तोऽप्यसतः" [ ] इति वचनात्, नैतत् सारम्, यतो नास्माभिरवभासमानस्य १० नीलादेरवभासशून्यताऽभिधीयते प्रतिभासविरतिलक्षणायास्तस्याः कथञ्चिदप्रतीतेः अपि तु प्रति-भासोपमत्वं सर्वधर्माणां शून्यत्वम्। उक्तं च–"प्रतिभासोपमाः सर्वे धर्माः"। [ ] इति। प्रतिभासश्च सर्वो भेदाभेदशून्यः नहि नीलस्वरूपे सुखाद्यात्मकतयाऽभेदरूपमुपलभ्यते तद्रूपतानुपलम्भे च कथमेकं भवितुं युक्तम्? न च तस्य भेदावेदनेऽप्येकत्वम(वे)दनमेकतो स्वस्वरूपा-वेदनस्यापि भेदत्वेनाभिधातुं शक्यत्वादिति न विशेषः कश्चित् स्व-परपक्षयोः परस्परपरिहारेण १५ देशाद्यवभासनैकत्वं देशकालाकारजगतः। न चैकैकत्वपादिनोऽन्योन्यपरिहारेण देशादीनामुपल-म्भोऽसिद्धः परस्परानुप्रवेशोपलम्भस्यापि तेषामसिद्धेः। न च प्रतिभासा(स)स्तावद्वयमस्तीत्यद्वै-(द्वै)तमस्तु नीलादेर्विचित्रस्य प्रतिभासाज्ञ(ज्ञा)नतो विचित्रतामासेः। न च यदि नीलादेरेकाऽने-का(क)रूपतया युक्त(त्वा)नुपपत्तेः प्रकृतिपरिशुद्धं ज्योतिर्मात्रं परमार्थसदस्तु तथाभूतज्योति-र्मात्रस्य कदाचनाप्यप्रतिपत्तेरसत्वात् सर्वधर्मशून्यतैव सिद्धिमासादयेदपिऽनगमात्। यदि प्रति-२० भासनाज्ज्योतेरपगम्यम [illegible] नीलादेरपि मेधावभासितेः सत्यत्वमेवेतिवात्। [illegible] सत्यतेतरस्य तु विपर्ययाद्-सत्यतेति वाच्यम्, क [illegible] र प्रतिभासैस्सत्योच्यत इति न्यायात् प्रतिभासवपुषां नीलादीनां कथमसत्य स्वकम् तत्रापि प्रतिभासात् सत्यत्वं स्वप्राव-भासिनोऽपि तस्य सत्यत्वप्रसक्तिः। न च स्वप्नदशायामपि ज्ञानस्वरूपतया नीलादेः सत्यत्वाज्ञानाद्-२५

१-रूप पी-आ० वि० विना। २-तत्राप्र-वा० बा०। ३-पमात्रः प्र-मो०।-पममात्र प्र-वा० बा०। ४-पि भिद्-वा० बा०। ५-नाद् भे-वा० बा० विना। ६-भासंतो-मो०। ७-रभावद्-वा० बा०। ८ सर्वे धर्माः भां०। सर्वे धर्म्याः वा० बा०। सर्वे धरया मां० आ०।

"माया-स्वप्न-मरीचि बिम्बसदृशाः प्रोद्भूतप्रतिश्रुत्कोपमा
विश्वेयोदकचन्द्रबिम्बसदृशा निर्माणतुल्याः पुनः।
यद् यद् द्वौ च पुनश्च यद्वद्भ्रमता एवैकराश्च त्रयः
संस्काराः स्तु तत्र तत्र कथिता बुद्धैर्विबुद्धोत्तमैः." ॥ १० ॥

××× तत्र मायोपमा धर्माः यद् ××× स्वप्नोपमाः यद् ××× मरीचिकोपमौ द्वौ धर्मौ ××× प्रतिबिम्बोपमाः पुनः यद् ××× प्रतिभासोपमा. यद्वेव ××× यद्वद्भ्रमताः प्रतिश्रुत्कोपमा देशनाधर्माः। उदकचन्द्रबिम्बोपमाः ××× धर्मा ××× निर्माणोपमा" ×—महायानसूत्रालंकारे पृ० १२ पं० ६। शास्त्रवा० स्याद्वाद० पृ० २१५ प्र० पं० ६। ९-रूप सु-आ०। १०-भवन्ते मां० आ० डा० वि०। ११-नमेवैकत्वसंवेदन-डा० वि०।-नमेवैकत्वमेदमे-कतो स्वस्वरू-वा० बा०। १२ स्वप्रतिभासपरिहारेण देशाद्यवभासनात् वा० बा०। १३-कत्वपादि-आ०। १४-तुद्वज्यो आ०। १५-धर्मा शून्य-भा० विना। १६ दपिऽनगमात् आ० डा० वि०।-दपि न चागमात् वा० बा०। १७-भासाम्भनाज्ज्योतेरेव भा०। १८ तेरेपण-वा० बा० विना। १९ मधाव-भासितेः स वा० बा० डा० वि०। मधावभासिनः स-आ०। २० प्रतिभासात् वा० बा०। २१ भस्य पि वा० बा०। २२-तरसत्यो-आ०।-रसत्यो डा० वि०। २३-सत्यं स्युक-वा० बा०। २४-दशाम-भा०। २५-प्रति आनस्व-आ०।

शायामपि तथैव सत्येति विज्ञप्तिमात्रं न शून्यतेति वक्तव्यम् ज्ञानरूपतया प्रसक्तेर्नीलादेरप्रतिभासनात्। न ह्यन्यतरस्यामपि दशायां प्रकृतिपरिशुद्धान्तस्तत्त्वज्ञानरूपतया तेषां सर्वदावभासनात्। न च बही-रूपतयाऽवकाशादन्तस्तत्त्वं भवितुमर्हति अन्तरारूपतया सुखादेव भासमानबहीरूपतया प्रसक्तेः। तत्र बहिरुद्योतमानो नीलादिरन्तस्तत्त्वस्याकाराभ्युपगन्तव्य इति न विज्ञानवादो ज्यायान्??]।

५ [?? न च बहीरूपतया प्रतिभासनी(सनाभी)लादेस्तथैव सत्यता भ्रान्त(भ्रान्त)रजतादौ तद्रूपाभावेऽपि तथाप्रतिभासोपलब्धेः। अथापि स्यात् शुक्तिकायां प्रतिभासमानस्य रजतस्य वा सत्यता पूर्वदृष्टस्यैव तत्र तस्य स्मृतेरनुभूतरजतस्य स्मृतेरनुकारदर्शनेऽपि रजतस्याप्रतिभासात् पूर्वप्रतिभातं च रजतं ततस्तस्याकारोऽभ्युपगन्तव्यः —विदसत्यतया प्रतिदर्शनं शून्यवादिनो भवेत्, असदेतत्; यतो यत् शुक्तिकायां पूर्वदृष्टं रजतरूपं सत्यं तस्य प्रतिभासे स्मर्यमाणतया प्रति-
१० पत्तिर्भवेत्। यच्च वर्त्तमानमिदानींतनदर्शनाद् विपरीतख्यातिः स्यान्न स्मृतिप्रमोषः। तथाहि–स्मृतेर-भावः तदा तदभावे कथं पूर्वदृष्टरजततद्भावप्रतीतिः स्यात्। नाप्यन्यदर्शनं स्मृतिप्रमोषस्तत्रापि परिस्फुटवपुरन्यदर्शनमेव प्रतिभातीति कथं रजते स्मृतिप्रमोषः सर्वदर्शनस्य स्मृतिप्रमोषतापत्तेः। नापि परीता(नापि विपरीता)कारवेदित्वं स्मृतेः प्रमोषः विपरीतख्यातित्वप्रसक्तेः। येदेव प्रत्यक्षाकारं स्मृतेरभावेनः आकारस्तदासौ प्रत्यक्षस्य रूपं न स्मृतेरिति कथं तेन रूपेण स्मृतिः प्रतिभाति।
१५ अथ प्रत्यक्षभावेकारतया प्रतिभाति तर्हि तदेव रूपं तस्याः सदस्तु न स्मृतिरूपता तस्यास्त-प्रतिभासना वा बाधकप्रत्ययो रजतमसदेव प्रतिभासमित्युल्लेखेन प्रवर्त्तमानो रजताभावमेवाव-गतिः। न भ्रान्तेः स्मृतिरूपतामिति न रजताभाससमये नापि बाधकप्रत्ययप्रवृत्तिकाले तस्यास्तदा स्मृतिरूपता प्रतिरूपता प्रतिपत्तिप्रमोषकल्पना सैवेत्राप्येतद्दोषपरिजिहीर्षया विपरीतख्यातेरभ्यु-पगमः श्रेयान् यतो न ताव —तेर्विपरीतत्वं तदैवाभावः ख्यातेरभावादप्रतिभासः न तर्हि ख्यातेरभावे
२० विपरीतख्यातिः, यतो यदि न नामान्यदाख्यातेस्तु वैपरीत्ये किमायातम्? नाप्यन्यप्रतिपत्तिर्विप-रीतख्यातिः यतो यदन्यप्रतिपत्तिः पूर्वदर्शनं तु कथं विपरीतख्यातिः? न ह्यन्यदर्शनाद् अन्यद् (अन्यद्) विपरीतं भवत्यतिप्रसङ्गात्। नापि विपरीताकारदर्शित्वं विपरीतख्यातिः यतोऽपि यदि विपरीतमर्थं दर्शनं गृह्णाति कथं तदा तद् भ्रान्तं भवेत्? अन्यथा नीलदर्शनस्यापि पीत-

---

१-[illegible]-वा॰ बा॰। २-स्यापि दशाया प्र-भां॰ हा॰ वि॰। –स्यापि दशायां प्र-भा॰। ३-शुद्धे [illegible]-वा॰ बा॰ शि॰। ४-स्तत्वं ज्ञा-शा॰। ५-या तेषां सर्वदाव भासनाच्च बहीरूपतया तेषां सर्वदावभासनाच्च बहीरूपतयावकाशादन्तस्तत्वं भा॰ हा॰ वि॰। –या तेषां सर्वदाव भासनाच्च बहीरूपतया तेषां सर्वदावभासनाच्च बहीरूपतयावकाशादन्तस्तत्वं भा॰ मा॰। ६-[illegible] [illegible] भवितुमर्हति अन्तराकारतया सुखादेव भासमानबहीरूपतया प्रसक्तेः वा॰ बा॰ बा॰ शि॰। [illegible]-भ॰। ८-भास —र्शी-भां॰ मां॰। ९-ता भ्रान्त-आ॰। शि॰ दे॰। १० [illegible]-भां॰ [illegible] भ॰। ११ स्मृतिर-भा॰। १२-स्नुकार-वा॰ बा॰। १३ पूर्वं प्र-भ॰। १४-[illegible] च र-[illegible]। –भावं च र-भा॰। –भावं च त र-भां॰। –भावत्वं च र-वि॰। १५ रजतं [illegible] [illegible] वा॰ बा॰। रजतं ततस्तुस्यमाकारो भा॰। रजतं तं ततस्तस्याकारो [illegible]। [illegible] शि॰। १६-गन्तव्यं —विद्-भा॰। –गन्तव्य —विद्-मां॰। –गन्तव्यविद्-[illegible]। [illegible] प्रतिद्-शि॰ सं॰। १७ पतिद्-शि॰ सं॰। १८-दर्शनवत्-मां॰। १९-[illegible]। २०-[illegible]-भ॰ [illegible]। –[illegible] र-भां॰ मां॰। २१-[illegible] स्मृतिप्रमोषतापत्तेः भां॰ मां॰। २२ [illegible]। २३-[illegible] भा-[illegible] भा॰। –[illegible] आ-हा॰ शि॰। –[illegible] आ-[illegible]। २४ [illegible]। २५ तर्हि तदे [illegible]। [illegible] स्मृते [illegible]-भा॰। २६-वा र-वा॰ बा॰। [illegible]। २७-प्रतिभासना च बाधक-भां॰ मां॰ [illegible]। [illegible]। २८-स्मृतिरूपेण भा॰। २९-[illegible]। ३०-[illegible] भा॰। ३१-[illegible]। ३२-[illegible]। [illegible]

यमादृणा भ्रान्तताभिसक्तिः । न च विभिन्नदेशादिविभिन्नदेशादितया भाति तद्विपरीत-
देशादयः तत्र(नत्र) दर्शने प्रतिभासमाना यदि सन्तः प्रतिभान्ति तदा कथञ्चित्
तिः । अथासन्तस्तत्राप्यसत्ख्यातिप्रसक्ति(क्तिः) सतां देशादीनां तत्राख्यातेः, न च
न्धग्रहणाद् विपरीतख्यातिः यतस्तत्सम्बन्धोऽपि यदि सन(सन्) प्रतिभासि(ति)
हणात्र विपरीतख्यातिः । अथासंस्तदाप्यसत्ख्यातिरे‾स(रस)त्वर्थग्रहणात् । अन्य-५
भ्रान्तदृगवसेयस्य वार्थस्य कल्पने नान्यस्य न तर्हि स्वग्रहणो भ्रान्तत्वं तदवभासि-
त्वाभावात् तथापि तत्त्वे सर्वदृशां विपरीतख्यातित्वप्रसक्तिः । अथ भ्रान्तदृगव-
शादितयाऽन्यदेशस्यापि ग्रहणमिति विपरीतख्यातिस्तत् तर्हि तस्यान्यदेशादित्वं
यमीयते, उत पूर्वदर्शनेन? तदपि यदीदानीन्तनस्यान्यदेशादित्वावगतस्तदा संगतं
नीनामग्राह्यत्वाद्देशतथ्यातिप्रसङ्गतो ग्राहकत्वानुपपत्तेः नापि पूर्वमिदानीन्तनभ्रान्त-१०
न पूर्वदेशादिगतिः इदानीन्तनज्ञानावसेयस्य पूर्वमभावात् । न चैकमेव पूर्वापर-
स्त्विति न दोषः पूर्वापरदेशभावयोरेकत्वासिद्धेः पूर्वदर्शनेन वर्त्तमानदेशादिपरिहारेण
च तस्यावगतेः नेदानीन्तनस्य पूर्वादिताऽवगतिः । न च पूर्वदेशादिरेव वर्त्तमानादेरपि
तेनैव पूर्वापरदेशादिना तथाऽवसीयते पूर्वदर्शनकाले वर्त्तमानदेशादेरभावेन तत्स-
तेन तत्र प्रतिपत्तुमशक्तेः भावे वा वर्त्तमानदेशादेः पूर्वदेशादिरूपतैव नेदानीन्तन-१५
दनुपलब्धावगतौ पूर्वदर्शने कथमिदानीन्तनस्य पूर्वादितावगतिः । न च पूर्वदेशा-
र्नदेशादिः प्रत्यभिज्ञानादवसितस्य परिगतार्थस्याप्येकतापत्तेः स्वप्नादिर्भ्रान्तस्य पूर्व-
ताप्रसक्तेः एकविषयत्वात् । न च प्रत्यभिज्ञानात् पूर्वपरदेशादीनां तद्दर्शनकालेऽ-
सनात् तत्सम्बन्धित्वस्याप्यप्रतिपत्तेरसतामपि देशादीनां तत्सम्बन्धित्वस्य वा तत्र
निर्मस(सत्)ख्यातिः स्यात् । अथ तद्देश‾द‾दयस्तत्सम्बन्धित्वं वाऽसत् तत्र प्रति-२०
ति विद्यमानार्थग्राहित्वात् न भ्रान्तं भवेत् पूर्वदेशादिमद्वस्तुप्रतिभासे च यद्यवभास
तनरूपतावगतिरिति न विपरीतख्यातिः अपास्तवर्त्तमानावभासस्य पूर्वरूपग्राहिणः
तितख्यातित्वयोगात् । न च पूर्वकालावर्त्तमानकालादितया भ्रान्तावभासनात्
तख्यातित्वमिदानीन्तनदेशाप्रतिभासमान तत्र जपादेः पूर्वरूपताभावप्रसक्तेः यतो
वहितरूपमाभाति तदेव सदसत्तु(सदस्तु) पूर्वदेशादित्वम् न च भासमानं न चाप्युप-२५

तया वा० बा० । २ प्रति विपरीताख्यातिः आ० । ३-माति त-भो० । ४ कथञ्चि—
। कथञ्चि वि-वा० बा० । कथंचि‾ वि-हा० वि० । ५ अथासंस्त-भो० मो० हा० वि० ।
० । ६-स्तथाप्य-वा० बा० । ७ सन् प्रतिभाति वि० सं० । ८ सर्वग्रह-आ० । ९-र-
वि० सं० ।-रस्तद्-वा० बा० । १०-स्य वार्थस्य आ० ।-स्यार्थस्य हा० वि० । ११-वा त-
। १२-न तथापि वा० बा० । १३ यदिदा-आ० । यद्वादा-भो० । १४-स्यान्यदेशादि-
तदेशादि-आ० । १५-दाऽसं-भो० मो० हा० वि० ।-दाः सं-आ० । १६-नस्येदानींमदा-
नामदात्वाद्दातथ्याति-वा० बा० । १७-दशत-आ० हा० ।-दसत-वि० सं० । १८-दादि-
भो० मो० हा० वि० ।-दादितावगतिरिदा-वा० बा० । १९ पूर्वनभा-भो० । पूर्वनमा-
वि० । २०-वसेय ए-भो० मो० । २१-दग्भोयरयो-वा० बा० । २२-नतेः तदा-आ० ।
दादिना मो० । २४ तस्याव-वा० बा० । २५-दादे पू-वा० बा० ।-दादे नः पू-आ० ।
० वि० । २६-व तन दे-आ० । २७ पूर्वादेव वा० बा० भो० मो० हा० वि० । २८-नदेशा-
२९-प्रत्ययवद्-वा० बा० आ० विना । ३०-मसंख्या-आ० हा० वि० । ३१ तद्देश‾ द-
ा० । तद्देशादयादय-हा० वि० । तद्देशादयादय-वा० बा० । ३२ वासत्वं वासत् स-आ० ।
व-भो० मो० । ३४ न वांतं भ-भो० हा० वि० । न चांतं भ-मो० आ० । ३५-भासे च
० विना । ३६-वभासत एव भो० ।-व भासात एव मो० सं० । ३७-पताग्रा-वा० बा० ।
चद्वि-वा० बा० । ३९-ना तत्र द्वि-वा० बा० । ४०-त्र जयादेशादेः आ० ।-त्र जपादे-
० ।-त्र रजतादेः वि० सं० । ४१-व सदसत्तु पू-वा० बा० ।

गमविषयः अन्यथा पीतादेव प्रतिभासमानस्य नीलादेः सत्त्वापत्तेः सर्वस्य पूर्वोक्त
च सर्वं सर्वे सर्वात्मकतापत्तेः गम्यत एव प्रत्यक्षेण तथा अप्रतिपत्तेः। न चानुमान
सर्वात्मकतामवगमयति प्रत्यक्ष(क्षा)नवतारे तत्रानुमानस्यापानवद(स्याप्यनवतारात्)
च सर्वात्मकत्वसाधकत्वे प्रवृत्तो प्रतिनियतरूपा ग्राह्यवाक्समशेषं विपरीतख्यातितामनु
५ धा भेदग्राह्यनुमानमागमो वाऽवितथो वितथो व्यक्तं तु भेदावभासिनमस्तं वितथमित
रप्यंक्षामते भेदे अनुमानागमयोरभेदग्राहिणोः वैतथ्यापत्तेः प्रत्यक्षतोऽविगतभेदे वस्तुन्यभे
स्तयोरन्यथा ग्रहणलक्षणस्य वैपरीत्यस्य भावात् नवानुमानावगमबाधितत्वात् अभेदग्रा
चैतन्यं तद्बाधितत्वेन तयोरेकचैतन्यप्रसक्तेः न च तत्त्वात् तस्य तद्बाधकत्वप्रसक्तेः न
योरभेदप्रतिपादकत्वं तयोर्भेदप्रतिपादकत्वयोस्ततः प्रतिभासाविशेषात् विपरीतख्याल
१० सर्वासद्विपरीतख्यातिर्भवेत्। न च यदविसंवादि तत्र विपरीतख्यातिरिति वक्तव्यम् अ
त्वस्यासिद्धेरित्यसकृत् प्रतिपादनात् ??]।

[?? अपि च, पूर्वदृगवगतस्य रूपस्य पुनरवगमोऽविसंवादः न च पूर्वदृगवगमयो (दृगव
रभेदप्रतिपादकत्वम् पूर्वदृशः प्रच्युतत्वेन तत्राप्रतिभासे तदवगतस्यापि रूपस्याप्रतिभ
त्(सनात्)। न च पूर्वमतिर्भास्येवे दर्शनावभासिरूपमित्येकत्वात् न पूर्वं प्रतिभासेते
१५ त्वामेकत्वस्यैवासिद्धेः। तथाहि–दर्शने प्रतिभासमानं रूपं तद्दर्शनग्राह्यमस्तु पूर्वं न प्रा
कथमवगतं न तावत् सर्वदर्शनेन उत्तरकालं तस्याभावात् यदापि तदासीत् न तदा पर्
तदभावेन तदवसेयरूपावगतिः तदवसायानधिगमे तदवसेयरूपानवगमादन्यथा सकल
दृगवसेयत्वप्रतिपत्तिप्रसक्तेः सर्व(र्वः) सर्वविद् भवेत्। न च तद्दर्शनेन तदवसायाव्यतिरि
दृगवगतरूपपरिच्छेदः न पुनः तद्व्यतिरिक्तरूपपरिच्छेदाभेदादेवेति वक्तव्यम् यतो भाविदृ
२० भेदतदवसेयत्वादेवाध्यक्षस्याप्यप्रवृत्तिर्न पुनर्भेदात्। भिन्नेऽपि सन्निहिते परभूतेऽप्यसे
तथाभिन्नेऽपि भाविदर्शनाग्राह्यत्वमस्तीति न तत्राध्यक्षवृत्तिः न च भिन्नं भाविज्ञानास
हितत्वात् न तदवसेयमभिन्नं तु विपर्ययात् तदधिगम्यमिति वक्तव्यम् भाविदृग
तदवभासस्याप्यसन्निहितत्वात्। यदि च भाविज्ञानदृशं तत् परिगतं धार्य(र्यं) पूर्वं
यमासयति तदाऽसदर्थग्राहित्वात् भ्रान्तं तदासज्येत। तत्र प्रथमदर्शनेन भाविज्ञाने

१–तादृर्थे प्र–हा०।–तादृथे प्र–भा० मा०।–तादृर्थं प्र–वि० ए०। २ न च सर्वं स–भा०। सर्वं सर्वात्मक–हा० वि०। न च सर्वं सर्वात्मकतापत्ते गम्य–भा० मा०। न चा सर्वं स ३ मयानु–भा० हा० विना। ४–स्य च सर्वा–भा०।–स्य चा सर्वा–आ०। ५ ग्राह्यवाक्ष–भा०। ऽवितथोऽवितथोत्य–भा० मा० हा० वि०। यावितथोऽवितथो व्य–भा० मा०। ७–स्तयोर तद्बाधितत्वेन तयोरेकचैतन्यप्रसक्तेर्न च तद्बाधितत्वात् तस्य तद्बाधकत्वप्रसक्तेः न चानु रभेदमति कथं तयोर्भेदप्रतिपादकत्वयोस्ततः प्रतिभासाविशेषात् भा० मा०। ८–स्तयोरन्यथा भ वि०। ९–वाग्रचानु–भा०। १०–त्वात् मे–भा० हा० वि०। ११–तस्य तद्बा–भा०। १२ न ब धितत्वात् भा० ए० वि०। १३ न चानु–भा० हा० वि०। १४ सर्वा सविधि–भा० मा०। १५ ए० ब० विना। १६ अपि पूर्वदृगवग–भा० मा० विना। १७ पूर्वदृगवगत–भा० मा० विना। १८– द्–ए० ब०। १९–त्सने हर तमन–आ०। सने मेर्तीम–भा० मा०।–सने हर ममरान्यदेक–वि० २० तथाहि भ० ब०। २१–ग्राह्यमस्तु पूर्वं न प्राप्तं तु भ० मा०।–प्राप्तं तु भा० मा०। २२– द्–भ० ब०। २३–कगात–भा०। २४–प्रमे ओ–भा० मा० हा० वि०।–प्रपी ओ–भा०। २५– देवदवसेयत्वादेवाध्य–भ० मा०। २६–द्विने हभूने–भा० हा० वि०।–द्विने परभूतेदेवे तथाभिन्ने विमर्शदर्शनाग्राह्यत्वमस्तीति भा० मा०। २७–दक्षवृत्ति मत्वा भा० मा० हा० वि०। २८ भिन्न भा० भ०। २९–ज्ञानसमिति भ० ब०। ३०भावि ज्ञानद्वि–भ० भ० विना। ३१–भाविदृग ब० भ० वि०। ३२–गत धार्यं भा० मा० भा० ए० वि०। ३३–ग्राहित्वात् भ० भ० वि०। ३४ दैन्य स–वि०। ३५–भ्रान्तं भ्रा–भ० भ० विना।

परिच्छेदः सम्परिहारेण पूर्वकालतामतिभासोदयात् तत् प्रतिगतमेव रूपं तद्विषयोऽभ्युपगन्तव्यः। नापि वर्तमानं दर्शन(नं) दृश्यमानस्य पूर्वदृगवभासिरूपमावेदयति तस्यापि स्वकालमात्रविरूपाव-भासत्वेनोदयात् पूर्वदृशोऽप्रतिभासे तदवगतस्यापि रूपस्य तेनाग्रहणात् पूर्वदृशोऽनवगमेऽपि द(ऽपितद्)वगतरूपपरिच्छेदाभ्युपगमात् पूर्वपूर्वज्ञानावभासिरूपपरिच्छेदप्रसक्तिरित्युक्तत्वात्। अपि च, पूर्वज्ञान [illegible] गृह्यते, वर्तमानदर्शनावगम्यं वा पूर्वज्ञाना-५ वभासितया [illegible] : आद्ये विकल्पे वर्तमानदृगवभासिरूपाधि-गतिरेव न [illegible] भ्रान्तज्ञानावगतरूपाधिगतिरेव पूर्वदृगवगतं च रूपमसदिति तद्वादि वर्तमानं ज्ञानं भ्रान्तं भवेत्। पूर्वावभासप्रच्युते(तेः) तद्ग्राहकताया अपि प्रच्युतेः यदि तस्मिन् विनष्टे तत्प्रतिभासमानं रूपं संभवति प्रतिभासमानं रूपं संभवति प्रति-भासनप्रसङ्गात्। नापि तृतीयः पक्षः तत्र हीदानीन्तनदृगवभासि पूर्वावभासा(वभासा)धिगम्यं १० च परस्परं संसक्तं रूपद्वयमाभातीति नैकतावगम इति न पूर्वदर्शनावगतेन रूपेण दृश्यमानस्या-वगमो युक्तः। न च रूपान्तरेण दृश्यमानस्यावगमो युक्तः न च रूपान्तरेण दृश्यमानरूपावगमो रूपान्तरावगमात् पूर्वज्ञानावभासिरूपानवगमात् यतः अन्यरूपपरिच्छेदे नान्यत् परिच्छिन्नं भवति। न च वर्तमानदर्शनात् पूर्वदर्शनग्राह्यरूपपरिच्छेदः अभेदादेवेति वक्तव्यम् यतः भेदसिद्धो(द्धौ) पूर्वदृगवगतरूपग्राहकत्व(रूपग्राहकत्व)सिद्धिः तत्सिद्धो(द्धौ) चाभेदसिद्धिरितीतरेतराश्रयदो-१५ [illegible] इति न संवादः। तदभावे च भ्रान्ताभ्रान्तज्ञान-[illegible]॥]

नाप्यलौकिकत्वं भ्रान्तज्ञानावभासिनोऽर्थस्यात एव न्यायात्। तथाहि-न तावदलौकिकत्वा-प्रतिपत्तिः यतो — मभा(तोऽभा)वस्य निःस्वभावतया केनचिद्(दा)कारेण परिच्छेत्तुमशक्यत्वात् परिच्छेदे वास्तु(वा वस्तु)त्वापत्तेः पुनरप्यलौकिकत्वाशङ्काऽनिवृत्तेरनवस्थाप्रसक्तिः। न च लौकि-२० कत्वादन्यत्व — म(न्यत्वम)लौकिकत्वम् यतो यदि तत् तदैव गृह्यते तदा भ्रान्तदृशोऽप्रवृत्तिर्भवेत्। तदर्थक्रियार्थिनोऽलौकिकत्वपरिच्छेदप्रवृत्तिवु(बु)द्धिमतो न्योप्य(नाप्य)न्यदाऽलौकिकत्वप्रतिपत्तिः यतः 'नेदं रजतम्' इति कालान्तरेऽभावप्रतीतिस्तत्र जायते नालौकिकत्वावगतिः। तदेवं प्रति-भासाविशेषात् प्रतिभासमानं केशोन्डुकादिव(वत्) सर्वं निःस्वभावम्।

तथाहि-नावभासमानो नीलादिरवयवी देशादिभिन्नस्थूलस्य तस्यैकत्वानुपपत्तेः। न ह्यनेक-२५ देशसम्बन्धविरुद्धधर्माध्यासवत एकत्वं युक्तम् तथाप्येकत्वे घट-पटावपि(पटयोरपि) न भेदो भवेत् विरुद्धधर्माध्यासादन्यस्याभेदकत्वात्। न च देशादिभेदेऽप्येकत्वप्रतिभासादेकता, देशादि-भेदेन व्यवस्थितानामवयवानां प्रतिभासभेदादेव भेदात्। न ह्यधोमध्योर्ध्वादि(ह्यधोमध्योर्ध्वादि)-भागा ए(एक)रूपतया प्रतिभाति(भान्ति) पिण्डस्याणुमात्रतापत्तेः। न च तद्व्यतिरिक्तो ग्राह्याकारतां · यदिर्विभ्राणोऽवयवी प्रतिभाति। न च समानदेशतया अवयवेभ्यः पृथक्त्वस्याप्रतिभासः यतः ३० समानदेशा अपि वातातपादयो भावाः पृथगवभासमाना लक्ष्यन्ते। न चैवमवयवनिर्भास इति नासौ

१-च्छेदे स-वा॰ बा॰ विना। २-या तत् प्र-भा॰ बा॰ आ॰। ३-भासक-आ॰। ४-मावेपि विरू-आ॰। ५-दनात् बा॰ वा॰। ६ रूप वर्त-आ॰। ७-रसंसिक्तेसिति वा॰ बा॰।-रसंसिक्ते — मिति भा॰ डा॰ वि॰। ८-मानज्ञा-भा॰ आ॰ डा॰ वि॰। ९-च्युतोऽत-आ॰ डा॰ वि॰।-च्युतोत-वा॰ बा॰। १०-प्र-तिभासमानं रूपं संभवति प्रतिभासमानरूपं संभवति प्रतिभासमानं रूपं संभवति प्रतिभासनप्रस-ङ्गात् भा॰ मा॰। ११ वगमासा-भा॰।-वगमास्ता भा॰। १२ गमोऽवगमात्। पूर्व-भा॰ मा॰। -गमोपगमा रूपान्तरावगमात् पूर्व-डा॰ वि॰। गमोवगमा रूपान्तरावगमा पूर्व-वा॰ बा॰। १३-मात् तयोऽन्य-वा॰ बा॰ विना। १४-द्व मप्रभ-अ॰। १५ यतोमभा-वा॰ बा॰ १६-न्यथ — म आ॰। -न्यत्र म-वा॰ बा॰। १७ न्यायान्यदा भा॰ मा॰। १८-कत्वा प्र अ॰। १९-भावप्रतीतिस्तव-ज्ञाय-डा॰।-भावप्रतीतिस्तवज्ञाय वि॰।-भावं न प्रतीति वज्ञाय-भा॰ मा॰। भावप्रतीतिस्तत्र ज्ञाय-आ॰। २० तदेवं प्र-आ॰ विना। २१ समानं केशादु वा॰ बा॰। समान केशादु-भा॰ मा॰। पृ॰ २६१ टि॰ २१। २२ सर्वं नि-वा॰ बा॰ विना। २३ संयद्धवि भा॰ आ॰ डा॰ वि॰। सयद्धवि-वा॰ बा॰। २४ न ह्यधोमध्योऽर्धादि-डा॰ वि॰। न ह्यधोमध्योर्धादि वा॰ बा॰। न ह्यधोमध्येऽर्धादि-आ॰। २५-भागो ए-डा॰ वि॰।-भागा एव या-वा॰ बा॰ अ॰ विना। २६-मवयवं च निर्भा-अ॰।

गमविषयः अन्यथा पीतादेव प्रतिभासमानस्य नीलादेः सत्त्वापत्तेः [illegible]
च सर्वं सर्वं सर्वात्मकतापत्तेः गन्यत एव प्रत्यक्षेण तथा अप्रतिपत्तेः। [illegible]
सर्वात्मकतामपगमयति प्रत्यक्ष(क्षा)नवतारे तत्रानुमानस्यापानवत्([illegible]) [illegible]
च सर्वात्मकत्वसाधकत्वे प्रवृत्तौ प्रतिनियतरूपा [illegible] विपरीत[illegible]।
५था भेदप्रायनुमानागमौ यथाऽवितथौ वितथौ [illegible] तु भेदाभासिप्रत्यं [illegible]
रप्येकानत्वे भेदे अनुमानागमयोरभेदप्रतिपादिनोः वैतथ्यापत्तेः प्रत्यक्षतोऽपि तद्भेदे [illegible]
[illegible] प्रवृत्त[illegible]स्य वैपरीत्यस्य भावात् यथानुमानागमप्रतिपन्नो [illegible]
चैतन्यं तद्बाधितत्वेन तयोरेकचैतन्यप्रसक्तेः न च तदनाद् तस्य तद्बाधकत्व[illegible]
योरभेदप्रतिपादकत्वं तयोर्भेदप्रतिपादकत्वयोस्ततः प्रतिभासाविशेषात् विपरीत[illegible]
१०सर्वासद्विपरीतख्यातिर्भवेत्। न च यदविसंवादि तत्र विपरीतख्यातिरिति [illegible]
[illegible]रित्यसकृत् प्रतिपादनात् [?]]।

[? [illegible] च, पूर्वदृष्टस्य रूपस्य पुनरवगमोऽविसंवादः न च पूर्वदृष्टावगमो [illegible]
[illegible] पूर्वदृष्टः प्रत्युत्पन्नेन तथाप्रतिभासे तदवगतत्वापि [illegible]
[illegible]([illegible])। न च पूर्वप्रतिभासेऽस्य दर्शनावभासिरूपमिलेकत्वात् न पूर्वे प्रतिभासने [illegible]
१५[illegible]। [illegible] प्रतिभासमानं रूपं तद्दर्शन[illegible] पूर्वं न [illegible]
[illegible] न [illegible] [illegible]दर्शनेन उत्तरकाले तत्राभावात् यदापि [illegible] न तदा [illegible]
[illegible] तद्[illegible] तदवगमानधिगमे तद्[illegible] [illegible]
[illegible] सर्वै(वैः) सर्वविद् भवेत्। न च तद्दर्शनेन तद्[illegible]
[illegible] न पुनः [illegible] यतो [illegible]
२०[illegible]। भिन्नेऽपि [illegible]
[illegible] न तथा[illegible] न वै भिन्नं [illegible]
[illegible] न [illegible] तु [illegible] [illegible]
[illegible]। यदि च [illegible] तत् [illegible] पूर्व[illegible]
[illegible] [illegible]। तत्र प्रथमदर्शनेन [illegible]

[illegible]

यद्भिरप्युक्तम्—"मायोपमाः सर्वे धर्माः" [ ] इति । तद्व्यवस्थितमेतत् यद् प्रतिभाति
द् द्विचन्द्रादिवत् सकलमसत्यम् ।

न चात्रैतत् प्रेरणीयम् दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकभेदाभावे द्विचन्द्रादिनिदर्शनेन नीलाद्यवभाससत्या-
सत्यता न साधयितुं शक्या । न ह्यनतो निदर्शनसङ्गतिः । भेदे वा नासत्यता भवेद् भावानाम्
पक्ष-दृष्टान्तयोर्हि भेदः सत्यत्वे सति भवति असतः शशविषाणादेरिव भेदानुपपत्तेः । तथा५
साधनस्याप्यस्तित्वे न शून्यता, नास्तित्वे न साध्यप्रतिपत्तिः । एवं वादि-प्रतिवादि-प्राश्निकानाम-
भावे न वादः सम्भवी । तत्सद्भावे च न शून्यता । आह च भट्टः—

"सर्वदा सदुपायानां वादमार्गः प्रवर्त्तते ॥"
"अधिकारोऽनुपायत्वात् न वादे शून्यवादिनः ।"
[श्लो० वा० निरालम्ब० श्लो० १२८-१२९] इति ।१०

यतो यदि पारमार्थिकदृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकादिभेदाद् वादमार्गप्रवृत्तिः परस्याप्यसौ कथं भवेत्?
नहि परमार्थतो भावभेदः प्रत्यक्षतोऽधिगन्तुं शक्यस्तदभावात् । नानुमानादपीति प्रतिपा-
दितम् । न च परस्याभ्युपगमात् साधनादिभेदसिद्धेस्तत्प्रवृत्तिः अप्रमाणकाभ्युपगमभावाद्यतिदेः
कल्पितात् तु साधनादिप्रविभागाद् याथार्थ्यव्यवस्थायां भेदप्रपञ्चस्य कल्पनारचितत्वं भवेन् न
वास्तवत्वम् । न च लोकप्रसिद्धेन साधनादिभेदेन याथार्थ्यव्यवस्था अर्थवादिनो युक्तिमती, शून्य-१५
वादिनोऽपि तत्प्रसिद्धेनैव तेन शून्यताव्यवस्थाया न्याय्यत्वात् । तथाहि-तन्त्रापि साधनादि-
भेदव्यवहारो लोकप्रसिद्धः प्रागासीत् तेन यदि शून्यता व्यवस्थाप्यते न तेन कश्चिद् दोषः ।
शून्यताव्यवस्थितेरुत्तरकालं यदि साधनादिभेदो विशरति तदा न कश्चिद् दोषः "गतोदके का खलु
सेतुबन्धः" [ ] इति न्यायात् । उक्तं चाचार्येण-"सर्वं चयापमनुमानानुमेय-
व्यवहारः सांवृतः" [ ] इत्यादि । ततः सांवृता अनुमानगम्या शून्यता ।

यद्वा नीलादीनां प्रतिभासमानानां यत् कल्पितमेकत्वादिरूपं तस्याऽप्रतिभासनादेव निषेधः ।
व्यवहारयत्नाद्प्रतिभासमानमेकत्वादिकं रूपं कल्पयितुं युक्तम् प्रतिभासव्यतिरेकेण व्यवहार-
प्रयोगात् । ततो बाह्यमाध्यात्मिकं वा रूपं न तथ्यम् किन्तु सांवृतमेव । संवृतिश्च द्विधा सुगत-
तप्रसिद्धा—लोकसंवृतिर्मरीचिकादिषु जलभ्रान्तिरेका, तथ्यसंवृतिः सत्यनीलादिप्रतीतिर्द्वितीया

१ पृ० १७१ पं० १२ । "यत्तु उक्तं भगवता—मायोपमा धर्मा यावत् निर्माणोपमा इति"—लङ्कावतारसू० द्वितीयखण्ड० पृ० १११ पं० ७ ।
[० ६१ पं० १० ।
"एतदुक्तं भगवता—अनुत्पन्नाः सर्वभावा मायोपमाश्च इति"—लङ्कावतारसू० द्वितीयखण्ड० पृ० १११ पं० ७ ।
२ "अत्राप्यभिदधत्यन्ये निर्णयं तत्त्वसाधनम् । प्रमाणं विद्यते निश्चित आहोस्विच्छून्यमेव हि ॥ ५७ ॥
शून्यं चेत् सुस्थितं तत्त्वमस्ति चेच्छून्यता कथम् ? । तस्यैव ननु सद्भावादिति सम्यग् विचिन्त्यताम् ॥ ५८ ॥
प्रमाणमन्तरेणापि स्यादेवं तत्त्वसंस्थितिः । अन्यथा नेति युक्तमिदमीश्वरचेष्टितम् ॥ ५९ ॥
वक्तुं विहाय मानं चेच्छून्यताऽन्यस्य वस्तुनः । शून्यत्वे प्रतिपाद्यस्य ननु व्यर्थं परिश्रमः ॥ ६० ॥
तस्याप्यशून्यतायां च प्राश्निकानां बहुत्वतः । प्रभूतान्यसदारतिरिष्टा सेवगम्यते" ॥ ६१ ॥
—शास्त्रवा० समु० षष्ठस्त० पृ० ११५-११६ ।
३ ततस्प्रतीति । प्र० मां० बहिः । ४—शास्त्रा० स्याद्वाद० पृ० २१६ द्वि० पं० १ ।
५—सादिभेदे व्य—आ० हा० वि० । ६ शास्त्रवा० स्याद्वाद० पृ० २१६ ...
८ अत्र 'लोकसंवृति'-'तत्त्वसंवृति'-'अभिसमयसंवृति' इति संवृतित्रयं निर्दिष्टम्, तदेव बोधिचर्यावतारे ...
च 'मिथ्यासंवृति' 'तथ्यसंवृति'-'योगिसंवृति' इति संज्ञया निर्दिशि । तथाहि—
"संवृतिः परमार्थश्च सत्यद्वयमिदं मतम् । बुद्धेरगोचरस्तत्त्वं बुद्धिः संवृतिरुच्यते" ॥ ...

तद्व्यवहारविषयः । न च 'एको घटः' इति प्रतीतेरवयवो(वी) अवयवव्यतिरिक्तमस्ति(कः सिद्धः) यतो घट(टा)वसायेऽपि तदवयवानामुल्लेखनाध्यवसीयते नापरोऽवयवी वर्णाकृत्यक्षराकारशून्यस्य तस्य केनचिदप्यनु(प्यननु)भवाच्च कल्पनाऽवसेये(यो)ऽप्यवयवी सत्तामासादयति ।

अनादिवासनासमुत्थं व्यवहारमात्रकमेवेदं मिथ्यार्थं ज्ञानम् । न च व्यवहारमात्रेण

५ बहिरेकं वस्तु सिद्ध्यति 'नीलादीनां स्वभावः' इत्यत्रापि व्यवहारैकत्वात् स्वभावैकताप्रसक्तेः । अथ तत्र प्रतिभासभेदादेकत्वं बाध्यते तर्ह्यत्रापि मध्योर्ध्वादि(ध्योर्ध्वादि)निर्भासभेदात् घटादेरेकत्वं बाध्यत एवेति न बाह्योऽर्थोऽस्त्यवयविरूपः । नापि परमाणुस्वभावः मध्योर्ध्वादिविभागप्रतिभासेऽप्यणूनामप्रतिभासनात् । स्थूलरूपो हि नीलाद्यवभासः संवेद्यते न च परमाणुषु प्रत्येकं स्थूलरूपसम्भवः तथात्वे परमाणुत्वायोगात् । नापि तेषु समुदितेषु स्थूलरूपसङ्गतिः तथाभावाभा-

१० विनामप्यणूनां स्वरूपतः सूक्ष्मत्वात् । न च तद्व्यतिरिक्तः समुदायः तथात्वे द्रव्यवादप्रसङ्गात् तस्य चोक्तदोषत्वात् । ततो न परमाणुषु कथञ्चित् स्थूलरूपतासम्भवः । न चान्यादृगवभासोऽन्यादृशस्यार्थस्य ग्राहकः नीलदृशोऽपि पीतग्राहकतापत्तेः नियतव्यवस्थाविलोपश्चैवं प्रसज्यते । अपि च, नानादिक्सम्बन्धात् परमाणोरप्येकता असङ्गतैव । आह चाचार्यः—

"षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता" । [ ] इति ।

१५ तदंशानामपि नानादिक्सम्बन्धात् पुनः सांशतापत्तेरनवस्थाप्रसक्तिरिति न परमाणुसद्भावः । न चार्थाभावे नियतदेशकालाकारः प्रतिभासो न भवेत् वासनाबलेन तथाभूतप्रतिभासस्य स्वप्नदशायामुपलब्धेर्जाग्रद्दशायामपि तद्बलेनैव तदुदयसद्भावात् अर्थस्तु स्वरूपेण न कश्चित् सिद्धः । नापि प्रतिभासनियामकत्वेनेति नार्थवादो युक्तिसंगतः । न च वासनाबलान्नियताकारं ज्ञानमेव सदस्तु न शून्यतेति वक्तव्यम् यतो नीलादिरूपं ज्ञानमप्येकानेकरूपमयुक्तम् । तथाहि-तस्यापि द्विभेदैकता अर्थवत् युक्ता प्रतिभासभेदाच्च, नापि नीलादिज्ञानं परमाणुरूपम् ज्ञानपरमाणूनामपि दिग्भाग-

२० कता अर्थवत् युक्ता प्रतिभासभेदाच्च, नापि नीलादिज्ञानं परमाणुरूपम् ज्ञानपरमाणूनामपि दिग्भेद-योगात् सांशतापत्तेरनेकमतिपत्तेरयोगाच्चोक्तप्रायम् । न च बहिरवभासमानो नीलादिर्निरंशः बोधस्तु परिशुद्धोऽवितथ इति वक्तव्यम् तस्यानुपलब्धेरेवाभावनिश्चयात् । न च वासनाप्रतिबद्धत्वमनुभवस्य निश्चेतुं शक्यम् प्रत्यक्षस्य पौर्वापर्येऽप्रवृत्तेर्नान्वयव्यतिरेकनिश्चायकत्वम् तदनिश्चये च न हेतुफलभावावगतिरध्यक्षात् । नाप्यनुमानम् प्रत्यक्षाभावे तस्याप्यप्रवृत्तेर्न हेतुफलभावः कथञ्चित्

२५ सिद्धिमासादयति । किञ्च, यदि वासनाप्रबोधप्रभवं नील-सुखादिव्यतिरिक्तं प्रतिपुरुषनियतं संवेदनमनुभूयेत तदा विज्ञानवादो युक्तिसङ्गतः स्यात् न च तत् कदाचनाप्युपलभ्यते । किंवा नील सुखादेस्त्वेकानेकस्वभावायोगात् वासनाजन्यत्वस्यापि परमार्थतोऽसम्भवात् सर्वधर्मशून्यमेव वस्तुपलायाता । नीलाद्यवभासस्य वासनाप्रतिबद्धत्वं संवृत्या शून्यत्वमुच्यते न सर्वथैवा-भावः तस्य कदाचिदप्यननुभवात् । न च प्रतिभासे सति कथं शून्यत्वमिति वक्तव्यम् तस्यैका-

३० नेकस्वभावायोगतः शून्यतेति प्रतिपादनात् । उक्तं चाचार्येण—

"भावा येन निरूप्यन्ते तद्रूपं नास्ति तत्त्वतः ।
यस्मादेकमनेकं वा रूपं तेषां न विद्यते" [ ] इति ।

१-कः मस्ति यतो घटवसाये पि भा० मा० । २ घटवसेयेपि हा० वि० । घटोऽवसायेपि भा० । ३-मुल्लेखना-भा० । ४-परोऽवमीयते नापरोऽवयवी मां० मां० । ५ प्रमाणम् १२।१४ । ६ [illegible] यति वा-भा० । ७ बाह्यार्थो-हा० वि० । ८-गमतिः भा० । ९ पृ० १०५ पं० ११ ।

"अयमेव चार्थः कारिकया गीयते—

"षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता । षण्णां समानदेशत्वे पिण्डः स्यादणुमात्रकः" ॥

—[illegible], २, २९ न्यायवा० पृ० ५११ पं० १०।

"षट्कम् आचार्यपादैः" इत्युक्तिरूप [illegible] -बोधिचर्या० प्रज्ञा० पञ्जि० परि० ९ पृ० [illegible] [illegible] टिप्प० १ ।

[illegible] ८, २, १५ पृ० ६५० पं० १४ तथा पृ० ६५१ पं० १० [illegible] । [illegible] पृ० ११ पं० १२ । सर्वदर्शन० द० २ पृ० ११ पं० ११२ । १०-वद् यो-भा० हा० वि० । ११ [illegible] -भा० हा० वि० । १२-रूपं नि-भा० । १३ भावतो भा० हा० वि० । १४-सुखाद्या-[illegible] हा० वि० । १५ प्रमाण० पृ० ११० पं० ६ । [illegible] पृ० ६३ प्र० पं० ६ । "[illegible]" [illegible] [illegible] उद्धृत० [illegible] पृ० ११५ प्र० पं० ८-९ ।

तद्व्यवहारविषयः । न च 'एको घटः' इति प्रतीतेरवयवो(वी) अवयवव्यतिरिक्तमस्ति(कः कश्चित्), यतो घट(टा)वसायेऽपि तदवयवानामुल्लेखश्चाध्यवसीयते नापरोऽवयवी वर्णाकृत्यक्षराकारशून्यस्य तस्य केनचिदप्यनु(प्यननु)भवाच्च कल्पनाऽवसेये(यो)ऽप्यवयवी सत्तामासादयति ।

अनादिवासनासमुत्थं व्यवहारमात्रकमेवेदं मिथ्यार्थं ज्ञानम् । न च व्यवहारमात्रेण ५बहिरेकं वस्तु सिद्ध्यति 'नीलादीनां स्वभावः' इत्यत्रापि व्यवहारैकत्वात् स्वभावसंकताप्रसङ्गात् । अथ तत्र प्रतिभासभेदादेकत्वं बाध्यते तर्ह्यत्रापि मध्योर्ध्वादि(ध्योर्ध्वादि)निर्भासभेदात् घटादेरेकत्वं बाध्यत एवेति न बाह्योऽर्थोऽस्त्यवयविरूपः । नापि परमाणुस्वभावः मध्योर्ध्वादिविभागप्रतिभासेऽप्यणूनामप्रतिभासनात् । स्थूलरूपो हि नीलाद्यवभासः संवेद्यते न च परमाणुषु प्रत्येकं स्थूलरूपसम्भवः तथात्वे परमाणुत्वायोगात् । नापि तेषु समुदितेषु स्थूलरूपसङ्गतिः तथावस्थाभा- १०विनामप्यणूनां स्वरूपतः सूक्ष्मत्वात् । न च तद्व्यतिरिक्तः समुदायः तथात्वे द्रव्यवादप्रसङ्गात् तस्य चोक्तदोषत्वात् । ततो न परमाणुषु कथञ्चित् स्थूलरूपतासम्भवः । न चान्यादृगवभासोऽन्यादृशस्यार्थस्य ग्राहकः नीलदृशोऽपि पीतग्राहकतापत्तेः नियतव्यवस्थाविलोपश्चैवं प्रसज्यते । अपि च, नानादिक्सम्बन्धात् परमाणोरप्येकता असङ्गतैव । आह चाचार्यः—

"षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता" । [ ] इति ।

१५तदंशानामपि नानादिक्सम्बन्धात् पुनः सांशतापत्तेरनवस्थाप्रसक्तिरिति न परमाणुसद्भावः । न चार्थाभावे नियतदेशकालाकारः प्रतिभासो न भवेत् वासनाबलेन तथाभूतप्रतिभासस्य स्वप्नदशायामुपलब्धेर्जाग्रद्दशायामपि तद्बलेनैव तदुदयसद्भावात् अर्थस्तु स्वरूपेण न क्वचित् सिद्धः । नापि प्रतिभासनियामकत्वेनेति नार्थवादो युक्तिसंगतः । न च वासनाबलान्नियताकारं ज्ञानमेव सदस्तु न शून्यतेति वक्तव्यम् यतो नीलादिरूपं ज्ञानमप्येकानेकरूपमयुक्तम् । तथाहि-तस्यापि दिग्भेदाने- २०कता अर्थवत् युक्ता प्रतिभासभेदाच्च, नापि नीलादिज्ञानं परमाणुरूपम् ज्ञानपरमाणूनामपि दिक्षट्क- योगात् सांशतापत्तेरनेकप्रतिपत्तेरयोगाच्चोक्तप्रायम् । न च बहिरवभासमानो नीलादिर्वितथः बोधस्तु परिशुद्धोऽवितथ इति वक्तव्यम् तस्यानुपलब्धेरेवाभावनिश्चयात् । न च वासनाप्रतिबद्धत्वमनु- भवस्य निश्चेतुं शक्यम् प्रत्यक्षस्य पौर्वापर्येऽप्रवृत्तेर्नान्वयव्यतिरेकनिश्चायकत्वम् तदनिश्चये च न हेतुफलभावावगतिरध्यक्षात् । नाप्यनुमानम् प्रत्यक्षाभावे तस्याप्यप्रवृत्तेर्न हेतुफलभावः क्वचिदपि २५सिद्धिमासादयति । किञ्च, यदि वासनाप्रबोधप्रभवं नील-सुखादिव्यतिरिक्तं प्रतिपुरुषनियतं संवेदनमनुभूयेत तदा विज्ञानवादो युक्तिसङ्गतः स्यात् न च तत् कदाचनाप्युपलब्धिगोचरः नील सुखादेस्त्वेकानेकस्वभावायोगात् वासनाजन्यत्वस्यापि परमार्थतोऽसम्भवात् सर्वधर्मशून्यतैव वस्तुव्यवस्थापिका । नीलाद्यवभासस्य वासनाप्रतिबद्धत्वं संवृत्या शून्यत्वमुच्यते न सर्वथैवाभावः तस्य कदाचिदप्यननुभवात् । न च प्रतिभासे सति कथं शून्यत्वमिति वक्तव्यम् तस्यैका- ३०नेकस्वभावायोगतः शून्यतेति प्रतिपादनात् । उक्तं चाचार्येण—

"भावा येन निरूप्यन्ते तद्रूपं नास्ति तत्त्वतः ।
यस्मादेकमनेकं वा रूपं तेषां न विद्यते" [ ] इति ।

१-कः मस्ति यतो घटयसाये पि बा० वा० । २ घटयसेयेपि हा० वि० । घटमेवमायेति भ० । ३-मुल्लेखश्चा-भा० । ४-परोऽयमीयते नापरोऽययवी मा० मो० । ५ मन्यःमम् १२८।८ । ६-मार- यति वा-भ० । ७ बाह्यार्थो-हा० वि० । ८-वगतिः भा० । ९ पृ० १०५ पं० ११ ।

"अननेन चार्थः कारिकया गीयते—

"षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता । षण्णां समानदेशत्वे पिण्डः स्यादणुमात्रकः" ॥

—४, २, २५ न्यायवा० पृ० ५१६ पं० १० ।

"वसुबन्धु आचार्य के" इत्युल्लिख्य श्लोकोऽयमुद्धृतः-बोधिचर्या० प्रज्ञाकर० पञ्जि० परि० ९ पृ० ५०३ पं० ६ तथा विंश० १ ।

न्यायमञ्जरी० ४, २ २५ पृ० ६५० पं० २४ तथा पृ० ६५१ पं० १० पर्यन्तम् । स्याद्वा० प्र० टी० पृ० ११ पं० १० । षड्दर्शनस० द० २ पृ० ३१ पं० ११२ । १०-वद् यो-भा० हा० वि० । ११-[illegible] म च हे-भा० हा० वि० । १२-[illegible] नि- भा० । १३-भावयो-भा० हा० वि० । १४-तुभावा-भा०, हा० वि० । १५ प्रमाण० पृ० ११० पं० ९ । स्याद्वा० पृ० ६९ प्र० पं० ६ । "शून्यभावेन" इत्युक्त्वा निर्दिष्टेन श्लोक उक्त्वा- अनुवाद० पृ० ३११ प्र० पं० ८-९ ।

भगवताऽप्युक्तम्—"मायोपमाः सर्वे धर्माः" [ ] इति । तद्व्यवस्थितमेतत् यद् प्रतिभाति तद् द्विचन्द्रादिवत् सर्वमसत्यम् ।

न चार्थवत् प्रेरणीयम् दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकभेदाभावे द्विचन्द्रादिनिदर्शनेन नीलाद्यवभासस्याऽसत्यता न साधयितुं शक्या । न शशतो निदर्शनस्याकृतिः । भेदे वा मायात्मता भवेत् भावानाम् यतः दृष्टान्तयोरिदं भेदः सत्यत्वे सति भवति असतः शशविषाणादेरिव भेदानुपपत्तेः । तथा५ साधनस्याप्यसत्त्वे न शून्यता, सत्त्वे न साध्यप्रतिपत्तिः । एवं वादि-प्रतिवादि-प्राश्निकानाम-भावे न वादः कस्यचित् । तत्सद्भावे च न शून्यता । आह च भट्टः—

"सर्वदा सदुपायानां वादमार्गः प्रवर्तते ॥"

"अधिकारोऽनुपायत्वात् न वादे शून्यवादिनः ।"

[श्लो० वा० निरालम्ब० श्लो० १२८-१२९] इति ।१०

यतो यदि पारमार्थिकदृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकादिभेदात् वादमार्गप्रवृत्तिः परस्याप्यसौ कथं भवेत्? नहि परमार्थतो भावभेदः प्रत्यक्षतोऽधिगन्तुं शक्यस्तदभावात् । नानुमानादपीति प्रतिपादितम् । न च परस्याभ्युपगमात् साधनादिभेदसिद्धेस्तत्प्रवृत्तिः अप्रमाणकाभ्युपगममात्राद्वस्तुसिद्धेः कल्पितात् तु साधनादिप्रविभागाद् वादार्थव्यवस्थायां भेदप्रपञ्चस्य कल्पनारचितत्वं भवेत् न पारमार्थ्यम् । न च लोकप्रसिद्धेन साधनादिभेदेन वादार्थव्यवस्था अर्थवादिनो युक्तिमती, शून्य-१५ वादिनोऽपि तत्प्रसिद्धेनैव तेन शून्यताव्यवस्थाया न्याय्यप्राप्तत्वात् । तथाहि-तस्यापि साधनादि-भेदव्यवहारो लोकप्रसिद्धः प्रागासीत् तेन यदि शून्यता व्यवस्थाप्यते न तेन कश्चिद् दोषः । शून्यताव्यवस्थितेरुत्तरकालं यदि साधनादिभेदो विशीर्यति तदा न कश्चिद् दोषः "गतोदके कः खलु सेतुबन्धः" [ ] इति न्यायात् । उक्तं चाचार्येण-"सर्व एवायमनुमानानुमेय-व्यवहारः सांवृतः" [ ] इत्यादि । ततः सांवृता अनुमानगम्या शून्यता । २०

यच्चैतत् नीलादीनां प्रतिभासमानानां यत् कल्पितमेकत्वादिरूपं तस्याऽप्रतिभासादेव निषेधः । नहि व्यवहारफलादप्रतिभासमानमेकत्वादिकं रूपं कल्पयितुं युक्तम् प्रतिभासव्यतिरेकेण व्यवहार-स्याप्ययोगात् । ततो पारमार्थिकं वा रूपं न तत्त्वम् किन्तु सांवृतमेव । संवृतिश्च द्विधा सुगत-सुतप्रसिद्धा—लोकसंवृतिर्मरीचिकादिषु जलभ्रान्तिरेका, तथ्यसंवृतिः सत्यनीलादिप्रतीतिर्द्वितीया,

---

१ पृ० १७१ पं० १२ । "यत्तु इदं भगवता—मायोपमा धर्मा यावत् निर्माणोपमा इति"—महायानसूत्रालंकारे पृ० ६१ पं० १० ।

"एतदुक्तं भगवता—अनुत्पन्नाः सर्वधर्मा मायोपमाश्च इति"—लङ्कावतारसू० द्वितीयप० पृ० १११ पं० ७ ।

२ "प्रमाणस्याभिन्नत्वे किं नियतं तत्त्वसाधनम् । प्रमाणं विद्यते किंचित् आहोस्विच्छून्यमेव हि ॥ ५७ ॥
शून्यं चेत् सुस्थितं तत्त्वमस्ति चेच्छून्यता कथम् । तस्यैव ननु सद्भावादिति सम्यग् विचिन्त्यताम् ॥ ५८ ॥
प्रमाणमन्तरेणापि स्यादेवं तत्त्वसंस्थितिः । अन्यथा नेति युक्तमिदमीश्वरचेष्टितम् ॥ ५९ ॥
एकं विहाय मानं चेच्छून्यताऽन्यस्य वस्तुनः । शून्यत्वे प्रतिज्ञातस्य ननु व्यर्थः परिश्रमः ॥ ६० ॥
तस्यापि शून्यतायां च प्राश्निकानां बहुत्वतः । प्रभूतान्यताभिनिवेशो संप्रगज्यते" ॥ ६१ ॥

शास्त्रवा० समु० षष्ठस्त० पृ० २१५-२१६ ।

३ सम्मयर्मीति । प्र० सा० वहि । ४-कारानु आ० । शास्त्रवा० स्याद्वादक० पृ० २१६ प्र० पं० ११-१२ । ५-वादिभेद व्य-आ० हा० वि० । ६ शास्त्रवा० स्याद्वादक० पृ० २१६ द्वि० पं० १ । ७-द्या सर्वेनी-मा० ।

८ यदत्र 'लोकसंवृति'-'तत्त्वसंवृति'-'अभिसमयसंवृति' इति संवृतित्रय निर्दिष्टम् तदेव बोधिचर्यावतारे तत्पञ्जिकायां च 'मिथ्यासंवृति' 'तथ्यसंवृति'-'परमार्थ' इति संज्ञया निर्दिष्टम् । तथाहि—

"संवृतिः परमार्थश्च सत्यद्वयमिदं मतम् । बुद्धेरगोचरस्तत्त्वं बुद्धिः संवृतिरुच्यते" ॥ २ ॥

"अविद्यते आवियते यथाभूतपरिज्ञानं स्वभावावरण ... अनयेति संवृतिः अविद्या मोहो विपर्यास इति पर्यायाः × × × सा च संवृतिर्द्विविध लोकत एव तथ्यसंवृतिः मिथ्यासंवृतिश्चेति । तथाहि—

किंचित् प्रतीत्य जातं नीलादिकं वस्तुरूपमदोषवदिन्द्रियैरुपलब्धं लोकत एव सत्यम् ।

मिधेयो विवर्त्तः। 'प्रक्रिया' इति भेदानामेव संकीर्त्तनम्। 'ब्रह्म' इति पूर्वापरादिदिग्विभागरहितम् अनुत्पन्नम् अविनाशि यच्छब्दमयं ब्रह्म तस्यायं (तस्यायं) रूपादिभावग्रामपरिणाम इति श्लोकार्थः। एतच्च शब्दस्वभावात्मकं ब्रह्म प्रणवस्वरूपम् स च सर्वेषां शब्दानाम् समस्तार्थानां च प्रकृतिः। अयं च वर्णक्रमरूपो वेदस्तदधिगमोपायः प्रतिच्छन्दकन्यायेन तस्यावस्थितत्वात्। तच्च परमं ब्रह्म ५अभ्युदयनिःश्रेयसफलधर्मानुगृहीतान्तःकरणैरवगम्यते। अत्र च प्रयोगः–ये यदाकारानुस्यूतास्ते तन्मयाः, यथा घट-शरावोदञ्चनादयो मृद्विकारानुगता मृण्मयत्वेन प्रसिद्धाः, शब्दाकारानुस्यूताश्च सर्वे भावा इति स्वभावहेतुः। प्रत्यक्षत एव सर्वभावानां शब्दाकारानुगमोऽनुभूयते। तथाहि-अर्थेऽनुभूयमाने शब्दोल्लेखानुगता एव सर्वे प्रत्यया विभाव्यन्ते। उक्तं च—

"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
१० अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते" ॥
[वाक्यप० श्लो० १२४ प्रथमका०] इति।

न च वाग्रूपताऽननुवेधे बोधस्य प्रकाशरूपतापि भवेत् तस्यापरामर्शरूपत्वात् तदभावे तु तस्याभावात् बोधस्याप्यभावः, परामर्शाभावे च प्रवृत्त्या(त्या)दिव्यवहारोऽपि विशीर्येत इति। आह च—

"वाग्रूपता चेद् व्युत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती।
१५ न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥"
[वाक्यप० श्लो० १२५ प्रथमका०] इति।

ज्ञानाकारनिबन्धना च वस्तूनां प्रज्ञप्तिरिति नैषां शब्दाकारानुस्यूतत्वमसिद्धम्, तदितरेषां तन्मात्रभावित्वात् तन्मयत्वस्य तन्मयत्वमपि सिद्धमेव। अत एव 'अयं घटः' इत्यभेदेन शब्दार्थसम्बन्धो वैयाकरणैः—'सोऽयमित्यभिसम्बन्धात् रूपमेकीकृतम्' इत्यादिना अभिजल्परूपं दर्श-१० यद्भिः प्रतिपादितः।

अत्र च पर्यायास्तिकमतेन प्रतिवादिदोष उद्भाव्यते—किमत्र जगतः शब्दपरिणामरूपत्वाच्छब्द-

---

१ "'प्रक्रिया' इति भेदाः। 'ब्रह्म' इति सामान्याभिधानम्—तत्त्वार्थ० पङ्कि० पृ० ६७ पं० १४। "'प्रक्रिया' इति भेदाः। 'शब्दब्रह्म' इति सामान्याभिधानम्"—प्रमेय[illegible] द्वि० पं० ७। स्याद्वादर० पृ० ४४ द्वि० पं० ५। "'प्रक्रिया' इति भेदानामेव [illegible]। 'ब्रह्म' इति [illegible] पृ० ११५ द्वि० पं० ११। "'प्रक्रिया' इति [illegible]"
२ [illegible]
३ [illegible]

सविकल्पकत्वाभ्युपगमात् सर्वसंविदाम् सविकल्पकत्वेन च सर्वात्मना शब्दस्य [1] स्वभावान्तरानुपपत्तेः।

"निश्चयैः [2]।
यत्र निश्चीयते रूपं तत् तेषां विषयः कथम् ?॥" [ ]

५ इति प्रतिपादनात् । न चाविकल्पकस्यापि ज्ञानस्याभ्युपगमादयं न दोषः, 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके' [3] इत्यादेर्विरुद्धत्वप्रसक्तेः 'शब्दाकारानुस्यूतत्वात्' इति हेतोरसिद्धिप्रसक्तिश्च । न [4] च यथा प्रमाणान्तरतः क्षणिकत्वप्रसिद्धेः 'अध्यक्षतोऽनुभूतमपि तत्र निश्चीयते' इति व्यपदिश्यते तथा शब्दात्मता भावानां व्यपदेशमासादयति, तत्प्रसाधकप्रमाणान्तरस्याप्रसिद्धेः । किन्तु [5] शब्दात्मा घटादिरूपतया परिणमन् प्रतिपदार्थं भिद्यते न वेति वक्तव्यम् । यद्याद्यः [6] पक्षस्तदा शब्दब्रह्मणोऽनेकत्वप्रसक्तिः
१० विभिन्नानेकभावात्मकत्वात् तत्स्वरूपवत् एकं च परैर्ब्रह्मेष्यते [7] इत्यभ्युपगमापगमः [8] । अथ यदि द्वितीयः पक्षस्तदा एकदेश-कालाकाररूपतापत्तिर्जगतः [9] इत्येकरूपः प्रतिभासो भवेत् नीलादेरेकब्रह्मरूपाव्यतिरेकात् । अपि [10] च, नित्यशब्दमयत्वे जगतः शब्दस्वरूपवत् [11] सर्वभावानां नित्यत्वप्रसक्तिरिति तेन सह सर्वदोपलब्धेः परिणामासिद्धिः [12] इत्यायाति परिणामप्रतीतेः(तिः) । तत्र परिणामकृतं शब्दमयत्वं भावानाम् ।

१५ नापि [13] हेतुकृतम्, शब्दस्य नित्यत्वेन अविकारित्वात् ततः कार्योदयासम्भवात् । नाप्यक्रमाच्छब्दब्रह्मणः क्रमवत्कार्योदयो युक्तः, कारणवैकल्याद्धि कार्याणि उदयं प्रति सविलम्बानि भवन्ति शब्दाख्यं चेत् कारणमविलम्बम् [14] अपरस्यापेक्षणीयस्याभावात् किं न तानि युगपदुदयमनुभवेयुः । अपि [15] च, एकस्वभावाच्छब्दब्रह्मणोऽन्यस्य [16] भावान्तरस्योत्पत्तिर्यद्यङ्गीक्रियते तदा 'अर्थरूपेण तत्

१–स्वभावान्तरा–आ० । २–श्चयैर्यत्र नि–हा० ।–श्चयैर्येत्र नि–वि० ।–श्चयर्यत्र नि–आ० । "यदोक्तम्–"निश्चय:(यैः) । यत्र निश्चीयते रूपं तत् तेषां विषयः कथम्" इति"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० ७० पं० ११। ३ पृ० १८० पं० ९। ४ "किञ्च, क्षणिकत्वं भावानां प्रमाणान्तरतः सिद्धेरनुभूतमपि न निश्चीयते इति व्यपदिश्यते। शब्दात्मता तु भावानां कुतः सिद्धा येन साऽप्येवं व्यवस्थाप्यते"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० ७० पं० १६। ५ "किं, असौ शब्दात्मा परिणामं गच्छन् प्रतिपदार्थभेदं प्रतिपद्यते न वा ?"—प्रमेयक० पृ० १२ द्वि० पं० ५।

६ "प्रतिव्यक्ति तु भेदेऽस्य ब्रह्मानेकं प्रसज्यते । विभिन्नानेकभावात्मरूपत्वाद् व्यक्तिभेदवत्" ॥
तत्त्वसं० का० ११७ पृ० ७०।

७ परिमाप्ते–आ० । "एकं च परमब्रह्मेष्यते"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० ७१ पं० ३। ८–गमः अथवा अथ यदि आ० । ९–रूप प्रति–आ० ।

"अभिन्नं च यदेकः शब्दात्मा(ऽ)भिन्न इष्यते । सर्वेषामेकदेशत्वमेकाकारा च धिर् भवेत्" ॥
तत्त्वसं० का० ११९ पृ० ७०।

१० "नित्यशब्दमयत्वे च भावानामपि नित्यता । तद्योगपद्यतः सिद्धेः परिणामो न संगतः" ॥
तत्त्वसं० का० ११८ पृ० ७१।

११–स्वरूप–आ० हा० वि० । १२ इतं दाय–हा० ।

"एकदर्शितोऽमले हन्यमानमुदूचे । मृदादाविव [illegible] परिणामस्तु [illegible]" ॥
तत्त्वसं० का० ११९ पृ० ७१।

१३ "अथापि कार्यरूपेण शब्दब्रह्ममयं जगत् । तथापि निर्विकारत्वात् ततो नैव क्रमोदयः" ॥
तत्त्वसं० का० १४० पृ० ७१।

१४–मविलम्बम् भां० वहिः । "तदेव अविकलम् [illegible] तेषां येन युगपत् भवेयुः"—प्रमेयक० पृ० १२ द्वि० पं० ९।

१५ "अथान्यत्कारणभूतो [illegible] । [illegible]" ॥
तत्त्वसं० का० १४१ पृ० ७१।

१६–णोऽन्यस्य [illegible] हा० आ० वहिः ।
"[illegible]"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० ७१ पं० १६।
"किञ्च, [illegible]"—प्रमेयक० पृ० १२ द्वि० पं० १।

दिप्रसक्तिर्भवेत् । न च तस्य तदा स्वयमेवाभावान्नोपलब्ध्यादिरिति वक्तव्यम् यतः तद्भावस्तदैव मुद्गरादिव्यापारानन्तरमुपलभ्यते अन्यदा तु नोपलभ्यत इति कथं न अथ न भावाभावो भावस्वरूपादन्यः केवलं कल्पनाविषयत्वादसदेवासौ (?)
नन्वेवं भावप्रच्युतेः काल्पनिकत्वे भावानामपि काल्पनिकत्वमपरिहार्यम् यतो
५ विरोधो नील-पीतादेः परैरभ्युपगतः वस्तुस्वरूपव्यवस्थापकं च लक्षणं तन्निमित्तो विरो लाक्षणिक उच्यते भावप्रच्युतिश्च लक्षणं यतो नीलस्य विरोधो नीलप्रच्युत्या तद्विरोधे च पीत दीनामपि तत्प्रच्युतिव्याप्तानां तेन विरोधस्तथा च प्रमाणं नीलपरिच्छेदकत्वेन प्रवृत्तं नीलप्रच्युति तद्व्याप्तांश्च पीतादीन् व्यवच्छिन्ददेव स्वपरिच्छेद्यं नीलं परिच्छिनत्तीत्यभ्युपगमः । स च शश विषाणस्येव भावाभावकाल्पनिकत्वाभ्युपगमे कथं मु(यु)क्तिसङ्गतः? नहि शशविषाणप्रख्यस
१० भावाभावस्य भावविरुद्धत्वम् पीतादिव्यापकत्वं वा प्रमाणा(ण)विषयत्वेन व्यवस्थापयितुं शक्य यतस्तस्य प्रतिनियतपदार्थव्यवस्थाहेतुत्वं भवेत् ।

न च विनाशस्य मुद्गरादिजन्यत्वमसिद्धम् विरोधिरूपतया लोकस्थित्या मुद्गरादीनां तत्का रणत्वव्यवस्थापनात् । तथाहि–न परैः कणभुग्मतानुसारिभिरिव कार्यकारणभावात् पृथग् विरो धाख्यः सम्बन्धोऽभ्युपगम्यते यतस्तैर्मुद्गरादिजन्यस्य विनाशस्य (?) तदतद्रूपत्वेनासम्भवाद् विनाशं
१५ च तदतत्स्वभावतया विनाशविषयत्वमपाकृत्य घटक्षणो मुद्गरादिकं विनाशकारणत्वेन प्रसिद्धमपेक्ष समानक्षणान्तरोत्पादनेऽसमर्थक्षणान्तरमुत्पादयति तदपि तदपेक्षमपरमसमर्थतरम् तदप्युत्तरं तद पेक्षस(क्षमस)मर्थतमं यावद् घटसन्ततेर्निवृत्तिः अन्यत्रापि सर्वत्रैवमेव विरोधित्वं प्रतिपादितं परै एतदभ्युपगमे च क्षणस्यासमर्थक्षणान्तरजनकत्वेनाभ्युपगतस्य मुद्गरादेः सकाशात् कश्चित् सामर्थ्यविघातोऽभ्युपगन्तव्यः अन्यथाऽसमर्थक्षणान्तरजनकत्वमेवानुपपन्नं भवेत्। न च मुद्गरा
२० द्यपेक्षस्य घटक्षणस्य शक्तिव्यावृत्तिः स्वत एव व्यावर्त्तमानस्त्वसौ मुद्गराद्यभावे समानक्षणान्तरो त्पादकमपरं समर्थं जनयति तत्सद्भावे त्वसमर्थक्षणानन्त(णान्त)रम् न तु मुद्गराद्यपेक्षातस्तस्य कश्चित् सामर्थ्यविघात इति वक्तव्यम् यतो मुद्गरादिसन्निपाते तज्जनकस्वभावाव्याहतौ समर्थक्षणा न्तरोत्पादप्रसक्तिः समर्थक्षणान्तरजननस्वभावस्य कारणपरम्परायातस्य भावात् प्राक्तनक्षणस्येव नहि तस्य स्वनिरोधादन्यज(ज्ज)नकत्वम् स च हेतुतः समर्थजननस्वभावो भूत्वा स्वयमेव न भूतो
२५ मुद्गरादिना च न तस्य कश्चिच्छक्तिप्रतिघातो विहित इति । यद्यप्यपरकारणान्तरसन्निधानात् कार्यं वैलक्षण्येनैवोत्पत्तुमिच्छति [?? तथापि प्राक्तनघटक्षणस्य तत्स्वभावत्वात्तदैवं कार्योत्पत्तिः स्यान्नान्यथेति न च स्वहेतुतो समर्थजननस्वभावस्य तस्योत्पत्तेर्नायं दोषः प्रथमक्षण एवं(व) सन्तत्यु च्छेदप्रसक्तिः। अतो मुद्गरादिव्यापारकालेऽपि यदि स्वहेतुत एव समानक्षणान्तरजननसामर्थ्यं घटक्षणस्य समस्ति ततः सदृशक्षणान्तरोत्पत्तेर्मुद्गरादिसन्निधानं व्यर्थम्। अथ स्वहेतुतः समान
३० क्षणान्तराजननसमर्थो घटक्षणस्तथापि प्राक्तनक्षणादिवत् तत्क्षणादप्यपरक्षणान्तरजनकस्य समा नक्षणोत्पत्तेर्व्यापारयन्मुद्गरसन्निधिर्व्यर्थ एव । एतर्हि स्वहेतुतो भावस्य नश्वरस्वभावत्वे न किञ्चिन्नाशहेतुना अनश्वरस्वभावत्वेऽपि 'सुतराम्' इति वदता परेण दूषणमभ्युपगतमेव ।

१–एमेव भा–आ० विना। "न चास्य तदा स्वयमेवाभावात्"–प्रमेयक० पृ० १४५ द्वि० पं० ५। २–त्तदा च भां०। ३–वच्छेदादेव स्व–हा० वि०।–वच्छेदादे स्व–आ०। ४–णस्येव भां० विना। ५ भावका–भां०। भावाभावप्रमाणाविषयत्वे का–वि०। ६–स्या मुद्गरादीनां हा०। ७ तत्कार–आ०। ८–द्रूपावनासम्भ–हा० वि०। ९–स्व तदतत्स्वभा–हा० वि०।–स्व तदत्स्वभा–भा०। १० "अथ घट एव मुद्गरादिकं विनाशकारणत्वेन प्रसिद्धमपेक्ष्य समानक्षणान्तरोत्पादनेऽसमर्थं क्षणान्तरमुत्पादयति तदपि अपरेव असमर्थ तरम् तदपि उत्तरमसमर्थतमम् यावत् घटसन्ततेर्निवृत्तिरित्युच्यते । ननु चात्रापि घटक्षणस्य असमर्थक्षणान्तरोत्पादकत्वेन अभ्युपगतस्य मुद्गरादिना कश्चित् सामर्थ्यविघातो विधीयते वा न वा ? प्रथमविकल्पे कथमभावस्य अहेतुकत्वम्। द्वितीयवि कल्पे तु मुद्गरादिसन्निपाते तज्जनकस्वभावाव्याहतौ समर्थक्षणान्तरोत्पादप्रसङ्गः समर्थक्षणान्तरजननसमर्थस्य भावात् प्राक् तनवत्"–प्रमेयक० पृ० १४५ द्वि० पं० ८। ११–रसमर्थ–भां०।–रमर्थतर–भा०। १२–वमेव–भ०। १३–स्तं प–भां०।–स्याप–आ० हा० वि०। १४–म् स्वहे–भां० मदि:। १५–त्तुमेवमिच्छति–भा०। १६–रि- यत् तस्य–हा० वि०।–दिव् तस्य–भा०। १७–व स्वहे–आ० हा० वि० विना।

न्नं चाकिञ्चित्करस्यापि मुद्गरादेः स्वहेतुमभिर्हेतुसन्निधिबलायातत्वाद् घटक्षणस्यासमर्थक्षणान्त-
रजननकालेनोपा(प)लम्भविषयता यत एवानेकस्यैव क्षणघटस्य विलक्षणक्षणान्तरोत्पादकत्वा-
भ्युपगमप्रसक्तिः स्यात्। एवं च मुद्गरादेर्न विरोधित्वम् विनाशस्याहेतुकत्वात्। नापि जनकत्वं
पूर्वोक्तदोषप्रसक्तेरिति विलक्षणसन्तत्युत्पादे सन्तानोच्छेदे वा मुद्गरादेरन्वय-व्यतिरेकानुविधा-
नप्रसक्तितो माड्यादीनां दहनादिकार्ये लोकस्योपादानं भवेत्। न च परमार्थकत्वस्याभावे घटादीनां ५
मुद्गरादिव्यापारानन्तरमनुपलब्धिर्भवेत्। न च पूर्वसन्तानोच्छेदाद् विलक्षणसन्तानोत्पत्तेश्च तदा
घटानुपलब्धिरिति वक्तव्यम् विलक्षणसन्तत्युत्पादस्य प्राकतन्यायेनाभावात् पूर्वसन्ततिनिवृत्तेरपि
विवर्तमानेभ्योऽनर्थान्तरत्वात् तथैवोपलब्ध्यादिप्रसक्तेः तदा तस्य स्वरूपक्षतेरभावात्। न च न
तदा तस्य स्वरूपप्रच्युतिरुत्पद्यते किन्तु तस्यैकक्षणावस्थायित्वेन सदाऽभवनमिति नोपलम्भः यतः
स्वरूपादप्रच्युतस्य नाभवनं नाम किञ्चित् तत्सद्भावाभ्युपगमे वा कथं न स्वरूपप्रच्युतिस्ततो- १०
ऽर्थान्तरभूतोत्पत्तिमती? अथ स एव न भवति न तु तस्यापरं सत्त्वम् न तु तदेवेदं पुना रूपा-
भवनमभिधीयते, तत्र च तदेवोत्तरम्। तस्माद् विनाशहेतुव्यापारानन्तरा(रं) पदार्थस्यासद्व्यवहारं
विदधता तद्व्यतिरिक्तार्थान्तरस्य ग्रहणमभ्युपगन्तव्यम् न तु तद्ग्रहणमात्रम् अन्यथा तेषामभावानि-
श्चयैकान्यादिव्यपदिष्टस्य सद्व्यवहारनिषेध एव स्यात् नासद्व्यवहारप्रवर्तनम् यतो न कश्चिद्-
भावानिश्चये तत्स्वरूपाग्रहणे वानुपलब्ध्योर्विशेषः येनैकत्रासद्व्यवहारप्रवृत्तिः अन्यत्र सद्व्यवहार- १५
निषेधमात्रोत् किन्तु भावोत्पत्तेः प्राग्भावस्याभावनिश्चय(ये) तदुत्पादककारणोपादानं कुर्वन्त उप-
लभ्यन्ते प्रेक्षापूर्वकारिणः। तदुत्पत्तौ च निवृत्तव्यापारा विनाशकहेतुव्यापारानन्तरं च स्वरूपा-
तिरिक्तं पदार्थान्तरमवगत्य शत्रुध्वंसे सुखभाजो मित्रप्रक्षये तु दुःखानुषक्ता उपलभ्यन्ते। न
च मित्रसद्भावो दुःखहेतुः प्रतीतः नापि शत्रुसद्भावः सुखजनक इति तद्व्यतिरिक्तोऽभावस्तज्ज-
नकोऽभ्युपगन्तव्यः। न च मित्राऽमित्राभावे च न दुःख-सुखे विहितोत्तरत्वात्। न चाभावस्य २०
भविकत्वे भावरूपता अभावप्रत्ययविषयत्वेन अविशेषत्वेऽप्यभावरूपत्वात्। यथा हि अविकल्पेना-
विशेषेऽपि घट-पटयोस्तत्प्रतीतिविषयत्वेन तद्रूपता तथा भावाऽभावयोरपि तद्विषयात्(यत्वात्)
तद्रूपत्वे न किञ्चिद् दूषणमुत्पश्यामः। न वा भावस्य भवने विरोध एव दूषण(णम्) स्वरूपेऽबा-
धितप्रत्ययविषये विरोधासिद्धेः अन्यथा सर्ववस्तुषु तत्सिद्धिप्रसक्तिः। तेन मुद्गरादिव्यापारात्
प्राग् घटादेस्तद्व्यापारानन्तरमेव तस्या उपलब्धेः पदार्थान्तरभूता प्रच्युतिः। अत एव तस्मिन् २५
'गृहीतैव प्रमाणता' इति हेतोरसिद्धतेत्यपि न वाच्यम्, यतः किं घट एव प्रच्युतिः, उत कपाल-
लक्षणं भ(भा)वान्तरम्, आहोस्वित् तदपरं पदार्थान्तरमिति विकल्पाः। तत्र यदि घटस्वरूपमेव
प्रच्युतिस्तदापरं तन्नामिधानान्तरं विहितम् घटस्वरूपं त्वविचलितं प्रतीयते कथं न नित्यम्?
अथैकक्षणस्थायि" घटस्वरूपं प्रच्युतिरिति न घटस्य नित्यता; नन्वेकक्षणस्थायितया घटस्वरूपं न
प्रतीतिगोचर इति कथं तस्य प्रच्युतिः? अथ कपालस्वरूपमेव घटप्रच्युतिस्तथापि प्राक्कपालप्रादु- ३०

---

१ न वा-आ० हा० वि०। २-हादे स्व-आ०। ३ क्षणे घ-भां०। ४ एवं मु-भां० हा० वि०। एव मु-आ०। ५-हास्य हे-आ०। ६-क्षणांसंतत्युद्दरं-हा०। ७-त्पादयं संतानोच्छे-वि०।-त्पाद् संततोच्छे-आ०। ८ पूर्वसंततिनिवृत्तेर-हा० वि०। पूर्वसंततिनिवृत्तेर-आ०। ९-स्य क-आ० हा० वि०। १० तदा म-आ०। ११ न तु त-आ०। १२ न तु तदेवेद पु-आ०। १३-शहेतुर्व्या-आ०। १४-हार विदधतो त-हा०।-हार विदधता त-वि०। १५-त्मग्र-आ० हा० वि०। १६ तस्याभा-हा० वि०। १७-श्चयैकन्यादि-आ०।-श्चयैकव्यादि-हा० वि०। १८-न यतो न कश्चि-आ०। १९-त्रात् किंच भा-भां०।-त्रा किन्त्व भा-आ० हा० वि०। २० "किन्च भावोत्पत्तेः प्राग्भावस्य अभावनिश्चये तदुत्पादककारणो-पादनं कुर्वन्तः प्रतीयन्ते प्रेक्षापूर्वकारिणः"-प्रमेयक० पृ० १४५ द्वि० पं० ११। २१-दुःखार-आ०। २२ इति स्पष्ट-आ०। "तद्व्यतिरिक्तोऽभावस्तद्धेतुरभ्युपगन्तव्यः"-प्रमेयक० पृ० १४५ द्वि० पं० ११। तद्धेतुः "च मुद्गरा-दिर्नुदर्शन वः" इति तत्रैव द्वि० १८। २३-प्यभावाभाव-वि०। २४ घटयोस्त-भां० आ० हा० वि० विना। २५-त्वये विषेये विरो-हा० वि०।-त्वये विषेय विरो-आ०। २६ तत्र मु-हा० वि०। २७-च्युति प्रच्युतिम एव आ०। २८-वि स्व-आ० हा० वि०। २९ "अथैकक्षणस्थायि घटस्वरूपं प्रध्वंसः, न, एकक्षण-स्थायितया तद्रूपस्यादपि अप्रसिद्धेः"-प्रमेयक० पृ० १४६ प्र० पं० १।

शुक्तिकादर्शनेन बलवता रजतदर्शनमयार्थ(मयथार्थ)क्रियाकारि रूपावभासि दुर्बलमनन्यथीक्रियते न च लूनपुनर्जातकेशादिष्वपि प्रत्यभिज्ञाज्ञानोदया(यात्) स्थायिताप्रतिपत्तिः सर्वत्रालीका, न दृष्टान्तमात्रादर्थसिद्धेरभावात् अन्यथा हेतूपन्यासस्य वैफल्यापत्तेः। हेतूपयोगितयैव निदर्शनस्य परैः साफल्याभ्युपगमात्। आह च—"स एवाविनाभावो दृष्टान्ताभ्यां दर्श्यते" [ ] इति।
५यद्वा लूनपुनर्जातशिरसिजादिष्वपि प्रत्यभिज्ञानात् एकता भवतु अप्रध्वस्तः केशादिः कथं प्रत्यभिज्ञायते? नन्वेवं ध्वस्तेऽपि शिरोरुहनिकरादौ समानम्। अथा ध्वस्ते तत्र पुनर्दर्शनात् 'ते एवामी केशाः' इत्येकताप्रतीत्यनुभवात् प्रत्यभिज्ञानम्; ननु ध्वस्तेष्वपि तेषु पुनर्दर्शनात् तुल्यप्रमाणादियोगेष्वेकताप्रतिपत्तिदर्शनात् कथं न प्रत्यभिज्ञानम्? तस्माद् ध्वस्तेष्विति(?) शिरसिजादिषु प्रत्यभिज्ञानादेकत्वं कस्यचिद् रूपस्याभ्युपगन्तव्यम्। अथ दलिताध्यवसायी
१०प्रत्यय(यः) स्थायिताध्यवसायिता(यिनीं) प्रत्यभिज्ञां बाधत इति न तेष्वेकता, न, भिन्नकालेन दलितकेशाध्यवसायिप्रत्ययेन प्रत्यभिज्ञाया बाधायोगात् अथवा लूनपुनर्जातकेश-नखादिमेदाभेदाध्यवसायादुभयतैवास्तु स्तम्भादिषु तु विशददर्शनावभासिषु क्षणक्षयविकला स्थायिता प्रतिभातीति तेषां स्थिररूपतैवास्तु।

अथ कथं प्रत्यभिज्ञा प्रामाण्यमनुभवति? कारणदोषाभावात् बाधारहितापूर्वार्थप्रादित्वाच्च।
१५तदुक्तम्—

> "तत्रापूर्वार्थविज्ञानं निश्चितं बाधवर्जितम्।
> अदुष्टकारणारब्धं प्रमाणं लोकसम्मतम्"॥ [ ] इति।

प्रथमदर्शनानधिगतां स्थायितां प्रत्यभिज्ञानमध्यवस्यति विश्वासादिव्यवहारप्रवर्तिका चेति कथं न प्रमाणम्? न चाद्यदर्शनमेव स्थायिताध्यवसायात् उत्तरकालभाविनो नित्यताद्यभिलाप
२०व्यवस्थाप्यैत इति आद्यदर्शनगृहीतां नित्यतामध्यवस्यत् प्रत्यभिज्ञाज्ञानमपूर्वार्थाधिगमाभावात्र प्रमाणम् यत एवमाद्यदर्शनादवसेयमेव नित्यत्वमिति कथं क्षणक्षयिता भावानाम्? न चाध्यक्षानवतारे प्रतिक्षणध्वंसितायामनुमानमपि प्रवृत्तिमासादयतीत्युक्तम्। किञ्च, स्वभावलिङ्गमनुमानं क्षणक्षयितां भावानामवगमयति इति पराभ्युपगमः। न चाध्यक्षागृहीतं प्रतिक्षणध्वंसित्वम् येन स्वभावहेतुस्तत्र व्यवहृतिमुपरचयति यथा शिंशपा विशददर्शनावभासिनि तरौ वृक्षत्व-
२५व्यवहृतिम् प्रत्यक्षप्रतीत एवार्थे स्वभावहेतोर्व्यवहृतिप्रदर्शनपरत्वात्। न च [illegible] सत्ता-क्षणिकत्वयोरध्यक्षत एव प्रतिबन्धग्रहणादन्यत्रापि शब्दादौ सत्तोपलभ्यमाना क्षणिकत्व-मवगमयति, जलरूपे सत्त्वतः शुक्लानुमितिप्रसक्तेः। अथ हेमाकारनिर्भासिदर्शनं शुक्लताबाधकमनुमानमुपैहन्तीति न तत्र शुक्लतासिद्धिः अन्येयं स्तम्भादौ क्षणिकतानुमितिमनन्तीमपि 'स एवायम्' इत्येवंप्रतिभासोऽपहन्तीति कुतः क्षणिकतासिद्धिः? अथ प्रत्यभिज्ञा [illegible]
३०[illegible] इति भ्रान्तत्वेऽपि प्रमाणम् तर्हि [illegible]
[illegible] तत् [illegible] न प्रमाणताम्[illegible]
[illegible]

अथ शुक्लतावसायकस्यानुमानस्याध्यक्षबाधितत्वात् [illegible] प्रत्यक्षबाधकत्वात् [illegible] स्यात्। न [illegible] इन्द्रियजं [illegible] दर्शनं [illegible] तु [illegible]
३५[illegible] न [illegible] सुकरम्। [illegible] तु [illegible]

[illegible]

कम्। तथाहि—सति प्रतिबन्धग्रहणेऽनुमितिप्रवृत्तिः प्रतिबन्धग्रहणं च साध्यव्यतिरेकेण साधनस्या-
भवनज्ञानम् तदेव चाऽनन्यथासिद्धत्वं तच्चोच्यते अत एवानुमानस्य प्रामाण्यमपाकुर्वता तत्
प्रतिबन्धप्रसाधकप्रमाणस्याप्रामाण्यमुपदर्शनीयम् यतः प्रतिबन्धासिद्धितोऽनुमानं प्रामाण्यादपाक्रि-
येत। तथा चोक्तं न्यायविदा-"लक्षणयुक्ते बाधासम्भवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात्" [ ]
इति। नित्यताप्रसाधकस्य प्रत्यक्षस्य आस्तामनुमानेन तुल्यकक्षत्वम् तत्प्रतिबन्धप्रसाधकेनाप्य-५
तुल्यकक्षतैव। तथाहि-क्षणक्षयविपरीतनित्यत्वलक्षणार्थमन्तरेणानुपजायमानमध्यक्षं तथाभूतमर्थं
व्यवस्थापयत् क्षणिकत्वानुमानबाधकमुच्यते। न चाध्यक्षावसेयं नित्यत्वं वस्तुनो व्यवस्थापयितुं
शक्यम् यतः पूर्वापरकालताविशिष्टमध्यक्षावसेयं तच्च न वस्तुधर्मः वर्तमानकालं हि वस्तु पूर्वापरकाल-
भावित्वं च वर्तमानवस्तुविरुद्धत्वात् न तद्धर्मत्वेनावस्थापयितुं युक्तमिति प्रत्यभिज्ञाप्रमेयस्य यथाप्र-
त्यसम्भवात् बाधकप्रमाणेनाप्यतुल्यकक्षत्वात् तद्ग्राहिणोऽध्यक्षस्य कुतः क्षणक्षयानुमानबाधकता? १०
पर्ययस्य प्रमाणेनात्र विषये निश्चितत्वात्। [?? न च मूलबाधकत्वेन अनुमानस्यानुमव आशङ्कनीयः
त्यक्षाभासस्य कस्यचिद् बाधनात् उत्पलपत्रशतव्यतिभेदाध्यक्षबाधकत्वेनानुमानस्य प्रवृत्तावपि
तो नोच्छेदः प्रथमेऽपि इति न कश्चिद्दोषः अत एव सर्वत्र प्रत्यक्षं विरोधि बाधकमनुमानं
[तद्विरोधीद् बाध्यमेवेति नियमाभावात् निराकृतम् ??] इतरेतराश्रयत्वमपि नाशङ्कनीयम् प्रत्य-
क्षाभासत्वे अनुमानं बाधकम् अनुमानप्रामाण्यात् प्रत्यक्षस्याभासतेति यस्मान्नानुमानप्रामाण्य-१५
मध्यक्षाभासनिबन्धनम् किन्तु प्रतिबन्धप्रसाधकप्रमाणनिमित्तं तत्प्रामाण्यमिति कुत इतरेत-
राश्रयत्वम्? असदेतत्, यतो यद्यपि परिच्छिद्यमानस्य वस्तुनः पूर्वकालतापि निश्चीयते तथापि
नावस्तुधर्मग्राहकमध्यक्षमिति कथं तद्विषयस्य यथाप्रतीत्यसम्भवः? तथाहि-तस्य पूर्वकालसम्ब-
न्धिता स्वरूपेण गृह्यते नेदानीन्तनसम्बन्धितानुप्रवेशेन तेनेदानीं यद्यपि कुतश्चिन्निमित्तात् तस्य
पूर्वकालादित्वमवसीयते तथापि तद्ग्राहकमध्यक्षं कथं न वस्तुग्राहकमिति कुतः तस्याप्रामाण्यम्? २०
यदि त्वविद्यमानं पूर्वकालादित्वम् विद्यमाने वा वर्तमानारोपेणाध्यक्षमध्यवस्येत् तदा भवेदस्यावस्था-
धर्मादित्वाद् अप्रामाण्यम् एतच्च नास्तीति कुतोऽस्याप्रामाण्यप्रसक्तिः?

न च सन्निहितविषयबलोत्पत्त्याऽविचारकत्वाद्ध्यक्षेण पूर्वकालसम्बन्धित्वं परामर्ष्टुमशक्यम्
यतो यद्यप्यतीतकालत्वमसन्निहितं तथापि सन्निहितविषयबलादुपजायमानमध्यक्षं वर्तमानवस्तु-
मसन्निधिमिवोत्थं यथा अन्त्यसङ्ख्येयग्रहणकाले 'शतम्' इति प्रतीतिः क्रमगृहीतानपि सङ्ख्येयान्।२५
न चैवा अनिन्द्रियजा इन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधानात्। नाप्यनर्थजा सन्निहितान्त्यसङ्ख्येयज-
न्यत्वात्। न चैकायमासिनी एकप्रतिपत्तिसमये 'शतम्' इत्यप्रतिपत्तेः अन्यथा प्रथमव्यक्तिप्रति-
भासमय एवैषा भवेत्। न बाध्यमानैषा [illegible]
कल्पमात्रता। तस्मात् यथा अन्त्य [illegible]
सन्निहितप्रतिपत्तौ तथा प्रत्यभि [illegible] न ५ ३०
विशिष्टप्रतिपत्तिकाले सङ्ख्येयानां विद्यमानता पूर्वकालतायास्तु तद्वैपरीत्यमिति न तयोर्योगः
यतोऽगृह्यमाणानां तत्कालविद्यमानता नोपयोगिनी यथ चान्त्यसङ्ख्येयग्रहणसमये पूर्वापरगतसङ्ख्येयाना-
मभावस्तत्र यथा तेषामुपयोगः तथा पूर्वकालादिताया अपि तद्विशिष्टाया उपयोगो नाशङ्क-
नीयस्तथाम्।

१-इदं ता-वा॰ बा॰। २-नम्रा-आ॰। ३-बन्धता-बा॰ बा॰। ४-कप्रामाण्यस्यानां-द॰ ह॰। [illegible]
येत् । भां॰ ।-क्रियते । बा॰ बा॰ भां॰। ६ "लक्षणयुक्ते बाधासंभवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात् इति [illegible]
पृ॰ १७५ प्र॰ पं॰ ४। ७ नित्यं वस्तु-स॰। ८ "तत्र हि पुरोदेशमाहि प्रत्यक्षं विनष्टिम [illegible]
भां॰ मो॰ टि॰। ९-मन्यत्रापि पृ॰ त॰ ब॰ बा॰ भां॰ भां॰ विना। १० "प्रत्यदित्र" [illegible]
-पृ॰ टि॰। ११-धादृषा-भा॰। १२-मारोपणा-आ॰ हा॰ वि॰। १३-इन-इ॰। [illegible]
"प्रदीप्तकलकम्"-पृ॰ टि॰। १६-यमय-हा॰ वि॰। १७-तमपि द-इ॰। [illegible]
-पृ॰ भां॰ मो॰ टि॰। १९-मासम-भा॰। २० "'शतम्' इति [illegible]
[illegible]"-पृ॰ टि॰। २१-गतं त-ब॰ पृ॰ वि॰। २२-द्वा [illegible]
"'शतम्' इत्येवमादय"-पृ॰ भां॰ मो॰ टि॰। २४ यतो पृ-पृ॰ द॰ [illegible]

अथापि स्यात् वर्त्तमानतापरिच्छेदसमये तदभावनियतभावत्वात् न पूर्वताऽवगति[illegible] नीलपरिच्छेदे पीतादीनामिव । तथाहि–नीलप्रच्युत्यविनाभूतत्वात् पीतादीनां नीलपरि[illegible] प्रमाणं तत्प्रच्युतेरिव तदविनाभूतपीतादिव्यवच्छेदं कुर्वदेव तत् परिच्छिनत्ति तद्वद् इदानीन्त[illegible] दार्थपरिच्छेदाय प्रमाणं प्रवृत्तं तत्प्रच्युत्यविनाभूतानां व्यवच्छेदकम् वर्त्तमानश्च समयस्त[illegible]
५स्या विरुद्ध इति तद्व्यापकावप्यतीतानागतौ तेन विरुद्धाविति तदवच्छिन्नस्यापि भावस्य वर्त्तमाना-च्छिन्नेन सह न समावेशः तयोः परस्परपरिहारस्थित्या विरोधात् तेन वर्त्तमानसम्बन्धिताग्राहि[illegible] प्रमाणेन तत्प्रच्युत्यविनाभूतव्यवच्छेदस्य व्यवच्छेदमकुर्वाणेन वर्त्तमानसम्बन्धित्वमेव न परिच्छि[illegible] भवेत् ततः पूर्वापरसमयसम्बन्धिनोर्नानात्वे यन्नानाभूतानामेकत्वग्राहि प्रमाणं तत्सर्वं अतत्स[illegible] द्रूपत्वात् अप्रामाण्यम् अत एवैकत्वाध्यवसायस्य सदृशापरापरोत्पत्तिविप्रलम्भनिमित्ताद्युत्पादः परि-
१०गीयते, असदेतत्। यतो नैकत्वेन निश्चीयमानस्य परस्परविरुद्धकालादिव्यवच्छेदात् नानात्वम् छत्र–कुण्डलाद्यवच्छिन्नस्य देवदत्तादेरिव । न च देवदत्तादेः सहभाव्यनेकविशेषणावच्छिन्न[illegible]कत्वम् तदभावनियतभावलक्षणस्य विरोधस्य सह सम्भविनामपि भावात् ततो विरुद्धावच्छिन्न[illegible] नानात्वे देवदत्तस्यापि नानात्वप्रसक्तिः । न च देवदत्तादेरेकस्य कस्यचिदभावात् तन्नानात्वप्रसक्तिः न सौगतपक्षे दोषायेति वाच्यम् एकप्रतिभासबलात् देवदत्तादेरेकत्वसिद्धेः अन्यथा नीलसंवेदन-
१५स्यापि स्थूलाकारावभासिनो विरुद्धदिक्सम्बन्धात् प्रतिपरमाणुभेदप्रसक्तेः तदवयवानामपि षड्यो-गात् भेदापत्तितोऽनवस्थाप्रसक्तेः प्रतिभासविरतिलक्षणाऽप्रामाणिका शून्यता भवेत् इति सर्वव्य-वहारविलोपः । न च छत्र–कुण्डलादेरिन्द्रियावसेयवस्तुव्यवच्छेदकत्वेन इन्द्रियजप्रतिपत्तिविषयता सन्निहितत्वेन युक्ता पूर्वापरादित्वस्य तु वर्त्तमानकालावच्छिन्ने वस्तुन्यसन्निधानात् कथं तद्ग्राहि-ज्ञानग्राह्यता युक्तेति वक्तव्यम् यतो यथोऽन्यसद्भावेयकाले पूर्वसद्भावेयानामसन्निधानेऽपि इन्द्रि-
२०यजप्रतिपत्तिविषयता तथा पूर्वापरकालभाविताया अपीत्युक्तं प्राक् । अथवा 'तदेवेदम्' इति ज्ञान-स्याऽनिन्द्रियजत्वेऽप्यलिङ्गजस्य प्रामाण्यमभ्युपगन्तव्यं बाधारहितत्वेन अनेन प्रतीयमानस्य वस्तुनः पूर्वापरकालभाविता पूर्वापरदर्शनकर्मतो चावसीयत इति वाभ्युपगन्तव्यम् अन्यथाऽनधिगतार्थप्रा-पस्य निश्चयात्मनो बाधारहितस्यैवंजातीयस्य कस्यचित् प्रामाण्यानभ्युपगमे [illegible] सन्निहितार्थमा-त्रग्राहित्वेन लिङ्गग्रहे वाऽनवस्थाप्रसक्तितः सकलपदार्थाक्षेपेण प्रतिबन्धग्राहकत्वायोगात् अनुमान-
२५प्रवृत्तेरभाव इति कुतः क्षणिकत्वादिधर्मसिद्धिः ? यथोक्तविकल्पस्य च प्रामाण्ये कथं न क्षणिका-नुमानबाधा ?

भवतु वा प्रत्यभिज्ञाज्ञानस्य तदाभासस्य [illegible] क्षणक्षयानुमानाबाधकत्वं तथापि [illegible] [illegible] न क्षणक्षयानुमानस्य [illegible] यतो न प्रथमेन [illegible] जनकत्वेन [illegible]
३०[illegible] जनकत्वेन तस्य प्राक्कालभावित्वाभ्युपगमात् जनकस्य [illegible] [illegible] कथं [illegible] तथाहि' [illegible] 'नायं [illegible] नीलादयो । अपि तु प्रागासीत्' इति । [illegible] (?) [illegible] एव [illegible]

१ "[illegible]"–[illegible] । २ पूर्वमात्र–आ० । ३ "यथा [illegible] परिच्छिनत्तीति"–[illegible] । ४–[illegible] इति कृत्वा । ५–[illegible] । ६ "[illegible]"–[illegible] । ७ "[illegible]"–[illegible] । ८ "[illegible]"–[illegible] । ९ तदविच्छिन्न–[illegible] । १०–[illegible] । ११–[illegible] । १२–[illegible] । १३–[illegible] । १४–[illegible] । १५–[illegible] । १६ "[illegible]"–[illegible] । १७–[illegible] । १८–[illegible] । १९–[illegible] । २०–[illegible] । २१–[illegible] । २२–[illegible] । २३–[illegible] । २४–[illegible] । २५–[illegible] । २६–[illegible] । २७–[illegible] । २८–[illegible] । २९–[illegible] । ३०–[illegible] ।

[illegible]नतिपादकमध्यक्षम् अनुमानं वा भवेत्? न तावदध्यक्षरूपम् तत्र [illegible]
यात्। न चानयभासमानक्षणक्षयस्वरूपमध्यक्षं सत्तायास्तदविनाभावमवेदयितुमलम्, न च [illegible]
[illegible] स्फुटनाभाति प्रतिक्षणविशरारुता भावानाम् किन्तु विपरीताध्यवसायोदयात् प्रति[illegible]
इति वक्तव्यम् विहितोत्तरत्वात् प्रागेव। किञ्च, यद्यप्यस्तं प्रतिक्षणमपायमध्यक्षमपि भावानां [illegible]
५ [illegible]ति तदनुसारी निश्चयो नोदयमासादयति? सादृश्यदर्शनात् भ्रान्तेर्विप्रलब्ध इति चेत् न [illegible]
सादृश्ये प्रमाणाभावात्। न चेयमप्रमाणिका सादृश्यपरिकल्पना उपपन्ना। किञ्च, यदि [illegible]
[illegible]त्वात् प्रतिक्षणक्षयप्रतिभासप्रतिहतिरभ्युपगम्यते, तन्वेवं पुरोवर्तिनि तत्प्राप्ती [illegible]
[illegible] प्रतिभासमाने क्षणक्षयनिर्भासो भवेत् नित्यत्वारोपाभावात्। किञ्च, यदि [illegible]
[illegible] [illegible] परस्परासंसक्तरूपं प्रत्यक्षमुपदर्शयतीति तदा [illegible]
१० न [illegible] प्रतिहतिः। न च नित्याध्यवसायसन्निधानमेव तत्र प्रतिहतिः, [illegible]
[illegible] सन्निधेरविशेषात् पूर्वोत्तरकालभावि[illegible]
[illegible] विजातीयविकल्पोदयेऽपि विशददर्शनस्य प्रतिहतिप्रसक्तिरिति पीताद्यध्यवसाये [illegible]
[illegible] न प्रतिपन्नं स्यात्। न च विजातीयत्वात् पीतविकल्पो नीलादिदर्शनस्य न प्रतिघातक इति
[illegible] नित्याध्यवसायस्यापि क्षणक्षयदर्शनं प्रति प्रतिघातकत्वप्रसक्तेर्विजातीयत्वाविशेषात्
१५ [illegible] विजातीयत्वम् तच्च नित्यानित्ययोरपि तुल्यमेव। न च प्रथमोत्पन्न[illegible]
[illegible] नित्योत्पन्नयोरनयोः प्रतिघातकत्वं [illegible] [illegible]
[illegible] अन्यथाऽतिप्रसक्तेः। तेन सामानाधिकरण्यात् [illegible]
[illegible] न क्षणक्षय-सत्त्वयोरविनाभाव इति न सत्त्वात् क्षणक्षयसिद्धिः। न चानुमानक-
[illegible] क्षणक्षयाविनाभूतं सत्त्वमध्यवसीयते तदनुमानेऽप्यनवस्थाप्रसक्तेरनुमानात्
२० [illegible]।

[illegible] प्रमाणमिति वक्तव्यम् [illegible] [illegible]
[illegible] इति तेन [illegible] [illegible]
[illegible] विरोधो हि [illegible]
[illegible] [illegible] विरोधः [illegible]
२५ [illegible] [illegible]। न च [illegible]
[illegible] [illegible] प्रतिभासनात् [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]। न [illegible]
३० [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] अनुमानाद्[illegible]

[illegible]

सिद्धिमासादयेत्। न चार्थक्रियापि प्रतिक्षणं भेदवती सिद्धा तत् कथं स्वयमसिद्धा हेतोः प्रतिक्षण-
भेदमवगमयति। न च सौगतानां कालाभावादर्थक्रियाक्रमो युक्तिसङ्गतः। यदि ह्यतीतानाग-
तवर्त्तमानकालभेदसङ्गतिमासादयेयुः कार्याणि तदा क्रमवन्ति भवेयुः। न च कार्यपरम्पराव्य-
तिरिक्तः कालः सौगतैरभ्युपगत इति भिन्नफलमात्रमेव। न च फलभेदमात्राद्धेतुभेदव्यवस्था कर्त्तुं
५ शक्या एकस्यापि प्रदीपादेरेकदाऽनेककार्यकरणात्।

अथ वैशेषिकादिपरिकल्पितः पदार्थव्यतिरिक्तः कालोऽभ्युपगम्यते तथापि तस्यैकत्वाद् न
तद्भेदनिमित्तः कार्यभेदो युक्तिसङ्गतः। न चैककालानुषङ्गात् कार्याणि क्रमवन्ति भवन्ति यौगप-
द्याभावप्रसक्तेः। न च कालस्यैकत्वेऽपि क्रमवद्वर्षातपादिसम्बन्धात् क्रमः इतरेतराश्रयप्रसक्तेः।
तथाहि–कालक्रमाद् वर्षादेः क्रमः तत्क्रमाच्च कालक्रम इति कथं नेतरेतराश्रयत्वम्? न च काल-
१० क्रमहेतुरपरः कालोऽभ्युपगमविषयः अनवस्थाप्रसक्तेः कालक्रमनिमित्तापरापरकालाभ्युपगमानि-
ष्ठितेः। न च कालः स्वरूपादेव क्रमवान् कार्याणामपि स्वरूपत एव क्रमवत्त्वप्रसक्तेः एवं च काल-
परिकल्पनावैयर्थ्यप्रसक्तिः। तत्र कालाभ्युपगमेऽपि कार्यक्रमो युक्त्या सङ्गच्छत इति कथं कार्यक्रमो
हेतुभेदमवगमयति? न च कार्यक्रमाभ्युपगमेऽपि हेतुरनित्यतामासादयतीत्युक्तम्। अथ क्रमेण
कार्योदये अनेककर्तृत्वसङ्गतेरनित्यता, ननु कार्यक्रमदर्शनात् यदि नाम कारणस्य क्रमः स्वभाव-
१५ भेदस्तु कथं सिध्यति? न च क्रमेण कार्यजनने जनकत्वाजनकत्वे भवत इति स्वभावभेदलक्षण-
मनित्यत्वं सिध्यति यतः क्रमोपेतकार्योपलम्भाद्धेतोर्जनकाजनकस्वभावं भेदं कल्पनाऽध्यवस्यति।
न च तत्प्रदर्शितस्वभावभेदाद् भावा भिद्यन्ते तथाऽभ्युपगमे वा कल्पना भावानामेकत्वमप्यवस्था-
न्युदयतीति नित्यता तेषां भवेत्। कल्पनाप्रदर्शितश्च भावानां जनकत्वाजनकत्वलक्षणः स्वभावभेदः।
तथाहि–उदितप्रयोजनापेक्षया कल्पना भावानां जनकत्वमध्यवस्यति अनुदितफलापेक्षया तु
२० तत्रैवाऽजनकत्वं सैवारोपयति, न च कल्पनाप्रदर्शितस्वभावभेदाद् भावानां भेदो युक्तः अन्यथा
परोत्पादितकार्यापेक्षयैकस्यैव क्षणस्याजनकत्वम् स्वोत्पाद्यकार्यापेक्षया तु जनकत्वं तत्रैव तस्मिन्
व्यवस्थापयति इति युगपदेकस्य क्षणस्य स्वरूपभेदप्रसक्तिः। अथाऽत्राभेदप्रतिभासः कल्पनाप्रदर्शितं
भेदं बाधते तर्हि क्रमेण कार्यजननेऽपि कल्पनाप्रदर्शितो जनकत्वाजनकत्वलक्षणः स्वभावभेदोऽभे-
दनिर्भासेन [illegible] न बाध्यते? न च क्रमेण कार्योत्पत्तौ हेतुभेदः प्रतिक्षणमवभासेत प्राप्नोति तु
२५ न निर्भासत इति वक्तव्यम् प्रतिक्षणं भेदसंवेदनस्यानुभवात् अननुभवे तु तत्कल्पने अतिप्रसक्ति-
रित्युक्तमिति नार्थक्रियाभेदात् कारणभेदः अन्यभेदस्यान्याभेदकत्वात्।

किञ्च, यदि नाम क्रम-यौगपद्याभ्यां नित्यात् अर्थक्रिया व्यावृत्ता तथापि न ततः क्षणक्षयसिद्धिः।
तथाहि–यथेयं अक्षणिकेभ्यो व्यावृत्तत्वात् क्षणिकत्वं साधयति तथा क्षणिकेभ्योऽपि व्यावृत्त-
त्वादक्षणिकत्वं साधयेत्। न च क्षणिकेभ्योऽस्या अव्यावृत्तिः। यतः क्षणिका अपि कार्यमुत्पादयन्तः
३० किं केवला एकमुत्पादयन्ति, उतानेकम्? तथा समुदिता अपि तदेकम्, अनेकं वा? न तावत् के-
[illegible] अभ्युपगमात् अदर्शनाच्च। तथाहि–एकः प्रदीपः इन्धनविकार-धूम-[illegible]
कार्यमुत्पादयन्नुपलभ्यत इति नैक एकमेव जनयतीति नियमः "न वै किञ्चिदेकं जनकम्"
[ ] इत्यभ्युपगमविरोधश्चैकस्यैकजनकत्वे। नाप्येकमनेकोत्पादकम् [illegible]
[illegible] अनेकस्मात् कार्योत्पत्त्यभ्युपगमाच्च। नाप्यनेकमेकोत्पादकम् कार्यस्यापि
३५ [illegible] प्रसङ्गात्। न हि विज्ञानवादाभ्युपगमात् कार्यव्यतिरेकेण बाह्यं वस्तु सामग्री
[illegible] विज्ञानं वा एकं भवति। सौत्रान्तिक-वैभाषिकमतेन क्षणिकाः परमाणवः [illegible]

१–[illegible]। २–[illegible]। ३–भाव भेदं [illegible]। ४–[illegible]। ५ "[illegible]"–[illegible]। ६ [illegible] भेदानां भेदो [illegible]। ७ "[illegible]"–[illegible]। ८–[illegible]। ९–[illegible] इति [illegible]। १० [illegible]। ११ [illegible]

सामां नैवानुत्पत्तेः रश्मिगपरमाणुव्यतिरेकेणापरस्य भिन्नस्याभिन्नस्य वा तद्भ्यस्य वस्तुसतोऽभावात्, यच्च संवृतिसत्त्व एकता घटादेः न तस्य अन्यता, विज्ञानमपि विषयाऽऽलोकमनस्कारादिसामग्रीप्रभवं नैकं युक्तम्। नापि तद् एकरूपमभ्युपगम्यते ग्राह्यग्राहकाकारद्वयरूपस्य तस्य संवेदनात्। न चैकस्य रूपद्वयं वोधावोधरूपमुपपन्नम्। तथाहि-अहङ्कारास्पदः सुखादिरूपो ग्राहकाकारः अन्तस्तद्वैपरीत्येन च ग्राह्याकारोऽपर एव प्रतिभाति तथा च स्वसंवेदनसिद्धभेदत्वात् रूप-रसयो- ५
रिव तयोर्नैकत्वम्। अथायमनयोर्भेदावभासो भिन्नयोरिव न पुनर्भिन्नयोरेव। तदुक्तम्—"ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते॥" [ ] इति, नैतदेवम्, वाह्यार्थवादत्यागप्रसक्तेः सौत्रान्तिकमतस्य वैभाषिकमतस्य चात्र विचारयितुं प्रक्रान्तत्वात् ज्ञानवादस्य च निषेत्स्यमानत्वात्। न च ग्राह्यग्राहकाकारयोः संवृतत्वं स्वकारणान्वयव्यतिरेकानुविधानात्। ग्राहकाकारो हि बोधरूपतया समनन्तरप्रत्ययान्वयव्यतिरेकानुविधायी विषयाकारोऽपि विषयस्यान्वय-व्यतिरेका- १०
ननुविधत्ते एवं च रूप-रसादेरिव नानयोरेकता। न च निराकारमभिन्नस्वभावमेकसामग्रीजन्यं ज्ञानं सम्भवति पराभ्युपगमेन निराकारत्वेन तस्य विषयसंवेदनत्वानुपपत्तेः। तस्मान्नैकमनेकजन्यमिति स्थितम्।

नापि पूर्वसामग्रीत उत्तरा सामग्री प्रभवतीति बौद्धाभ्युपगमात् अनेकमनेकमुत्पादयतीति वक्तव्यम्, यतः कारणायत्तः कार्याणां स्वभावः अन्यथा निर्हेतुकत्वं तस्य स्यात् पूर्वसामग्री च १५
सर्वेषां सामग्र्यन्तर्भूतानां समग्राजनकत्वेन व्यवस्थितेति कथं कार्यविशेषस्य सामग्र्यन्तर्गतस्यैकस्वभावता? एवं च रूपस्य ज्ञानरूपतापत्तिर्ज्ञानजन्यत्वात् ज्ञानस्वरूपवत् ज्ञानस्यापि रूपस्वरूपतापत्तिः रूपजन्यत्वात् रूपस्वरूपवदित्यनेकत्वव्याघातः। न वा किञ्चिद् रूपं प्रतिनियतस्वरूपाभावात्। अथावान्तरकारणसामग्रीविशेषसम्भवात् तज्जन्यस्य कारणभेदादेव स्वभावनानात्वमिति नायं दोषः। तथाहि-चक्षूरूपालोकमनस्कारादिषु विज्ञानादिकार्योत्पादकेषु मनस्कारो विज्ञानमुपादानत्वेन २०
जनयति शेषकार्याणि सहकारित्वेन एवं रूपादिकमपि रूपादिकार्यमुपादानत्वेन शेषाणि सहकारित्वेनेत्यवान्तरसामग्रीभेदेन सिद्धः तज्जन्यानां स्वभावभेदः। नन्वत्रापि किं येन रूपेण मनस्कारो ज्ञानस्य जनकस्तेनैव चक्षुरादिकमपि जनयति, आहोस्वित् रूपान्तरेण? यदि तेनैवेति पक्षस्तदा चक्षुरादेर्ज्ञानत्वापत्तिः। तथाहि-सकलस्वगतविशेषाधायकत्वं कार्ये उपादानत्वम् तद्रूपेण चेत् प्रवृत्तो मनस्कारश्चक्षुरादिजनने कथं न चक्षुरादेर्ज्ञानरूपतापत्तिः? अथ स्वभावान्तरेण चक्षुरादि- २५
जननेऽसौ प्रवर्तते, नन्वेवं स्वभावभेदात् मनस्कारस्य भेदापत्तिः स्वभावभेदलक्षणत्वात् वस्तुभेदस्य। अथ स्वसंविदि एकत्वेनावभासनात् मनस्कारस्यैकत्वमुपादानसहकारिशक्तिभेदेऽपि; नन्वेवमक्षणिकस्यापि तदतत्कालभाविकार्यजनकत्वाजनकत्वभावभेदेऽप्येकत्वेनाध्यक्षे प्रतिभासनात् कथं नैकत्वम्? अथ न स्वभावभेदाद् भावभेदः अपि तु विरुद्धस्वभावभेदात् तदतत्कार्यजनकत्वाजनकत्वे चाक्षणिकस्य विरुद्धौ स्वभावाविति तस्य भेदः; नन्वेवं मनस्कारक्षणस्यापि भेदप्रसक्तिः उपादान- ३०
त्व-सहकारित्वलक्षणयोः शक्त्योर्मनस्कारात् परस्परतश्च भेदात्। अथ न शक्तीनां शक्ति-शक्तिमतोर्वा भेदस्तथापि विरुद्धस्वभावद्वययोगात् भेद एव यतो मनस्कारस्योपादेयज्ञानं प्रति यैव जनिका शक्तिः सैव चक्षुरादिकं प्रति ततश्चक्षुरादिकं प्रति जनकस्वभावः अजनकस्वभावश्च मनस्कारः

१–केण पर-आ॰ हा॰ वि॰। २ "अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः" इति पूर्वार्धम्"-वृ॰ भा॰ मा॰ टि॰। अष्टस॰ पृ॰ ९२ पं॰ १८। स्याद्वादर॰ पृ॰ ८९ द्वि॰ पं॰ ६। श्लो॰ वा॰ पार्थ॰ व्या॰ पृ॰ २७२ पं॰ १५। सर्वदर्शनसं॰ पृ॰ २ पृ॰ ३२ पं॰ २०६। शास्त्रवा॰ स्याद्वादक॰ पृ॰ २१५ द्वि॰ पं॰ २। ३–क-वै-वृ॰ वा॰ वा॰ भा॰ मा॰। ४–स्य वा-वृ॰ वा॰ वा॰ हा॰ वि॰ विना। ५ एवं रू-आ॰। ६–जन्यता-वृ॰ भा॰ मा॰ विना। ७–त्वे तस्य वि-वृ॰ वा॰ वा॰।–त्वेन तस्यावि-आ॰ हा॰ वि॰। ८–ग्री प्र-भा॰। ९ एवं रू-ल॰ भा॰ मा॰ विना। १०–स्यापि रूपताप-भा॰ मा॰ आ॰ वि॰। ११-पं प्रति प्रतिनि-वा॰ वा॰ भा॰ मा॰।–प प्रतिनि-आ॰। १२ अथवान्तर-वा॰ वा॰। १३–वा तज्ज-ल॰ वा॰ वा॰। १४–दादेवं स्व-वृ॰। १५ चक्षुस्वरूपा-आ॰। चक्षु रूपा-हा॰ वि॰। १६ एव रू-ल॰। १७–स्यवान्त-वा॰ वा॰। १८ तज्जन्मनां आ॰। १९–कत्वभाव-आ॰। २०–त्यक्ष-
मां॰। २२–ननस्य-भा॰ मा॰।

प्रसक्तः चक्षुरादिजननात् तत्स्वभावः सकलस्वगतविशेषानाधायकत्वात् तत्स्वभावः नहि [illegible]
वन्यत् सकलस्वगतविशेषाधायकत्वम्।

नापि मनस्काराजनकत्वम् धर्मधर्मिणोरभेदाभ्युपगमात् अतः शक्ति-शक्तिमतोरभेदपक्षे तद्तत्स्वभावत्वमेकदैकस्यैकस्मिन् जन्ये पूर्वोक्तनीत्या प्रसक्तम् तेन विधि-प्रतिषेधरूपविरुद्धधर्म
५ संसर्गाद् भेदः प्रसक्तः। भेदपक्षेऽप्युपादानत्व-सहकारित्वयो रूप-रसवत् तदभावनियतभावत्वे
एककालत्वेऽपि भेदात् मनस्कारलक्षणस्य भावस्य भेदः सिद्ध एव। न चैवमापादितभेदस्याप्यबाधितैकावभासिप्रत्ययविषयत्वात् न नानात्वम् अक्षणिकस्यापि पूर्वक्षणग्रहणपरिणामाजहद्वृत्तोत्तरक्षणग्रहणपरिणामवदध्यक्षेणैकतया ग्रहणात् तद्तज्जनकाजनकस्वभावभेदेऽपि न नानात्वमित्युक्तत्वात्। न च शक्ति-शक्तिमतोः शक्त्योश्चाभेदे 'इदमुपादानम् इदं च सहकारिकारणम्' इति विभागः
१० क्षणिकपक्षे भवेत्। यदपि 'अन्त्यावस्थायां सर्वेषां प्रत्येकमभिमतकार्योत्पादकत्वम् अन्यसन्निधिस्तु स्वहेतुप्रत्ययसामर्थ्यात् नोपालम्भमर्हति न च भिन्नकार्योत्पत्तिः सर्वेषां तस्यैव जनने सामर्थ्यात् पर्यायानपेक्षणाच्च नोत्पन्नोत्पादोऽपि' इत्युक्तम् तदपि प्राक्तनन्यायेन निरस्तम्। किञ्च, अत्र पक्षे उष्णाद् गर्भगृहं प्रविष्टस्य मनस्कारादिः कारणकलापश्चक्षुर्ज्ञाने समर्थः परस्परनिरपेक्षतयेति यथा मनस्कारस्य चक्षुर्ज्ञानं प्रत्युपादानता तस्यैवैकस्य तज्जनने सामर्थ्यात् तथा आलोकादेरपि इति
१५ दर्शनक्षतिः प्रतीतिविरुद्धं चैकैकस्यैवोत्पादकत्वम् न चैकैकस्मात् कार्योत्पादः कदाचिदप्युपलब्ध इति कथं न तदभ्युपगमः प्रतीतिविरुद्धः? न च प्रकारान्तरेण क्षणिकानां कार्यकरणसम्भव इति क्षणिकेभ्योऽपि प्राक्तनन्यायेन कार्यकरणसामर्थ्यं निवृत्तमक्षणिकत्वं प्रसाधयेत् श्रावणत्ववद् वा उभयव्यावृत्तत्वात् संशयहेतुर्भवेत्। नाप्येतद् वक्तव्यम् उक्तप्रकारेणाक्षणिकेष्वप्यर्थक्रियानुपपत्तिरिति निर्हेतुकं सकलं जगद् भवेत् अक्षणिकपक्षे बहुभ्यः समवायिकारणत्वादिरूपेभ्य एकमभिन्नं
२० च वस्तूत्पद्यत इत्यभ्युपगमात् तत्र च विरोधाभावादित्युक्तत्वात्।

यदपि 'सत्त्वस्वरूपमुपवर्णयता प्रतिपादितमर्थक्रियालक्षणं भावानां सत्त्वम्' इति तत्र किमर्थक्रियातः सत्त्वम्, आहोस्वित् सत्त्वादर्थक्रिया? तत्र यद्यर्थक्रियातः सत्त्वं तदा प्राक् सत्त्वव्यतिरेकेणापि तस्या उत्पत्तेर्निर्हेतुका सा। अथ सत्त्वादर्थक्रिया तदा अर्थक्रियातः प्रागपि भावसत्त्वसिद्धेः

१–स्यादेत–भां०। २–राजन–भां० हा० वि०। ३ पूर्वम्र–ल०। ४–त्तरग्रह–वा० भा०। ५– नकस्व–भा० हा० वि०। ६–मभिगत–ई०। ७ "क्रमः"–बृ० टि०। ८ परनिर–आ०। ९–नक्षितिः भां० मां० विना। १० "न हि आलोकं विनाऽपि अन्धकारे ज्ञानमुत्पद्यते ततो मनस्कारस्येव ज्ञानं प्रति आलोकादेरपि उपादानता किं न स्यात् (तदभावेऽपि तस्याभावात्) इति"–बृ० मां० टि०। ( ) एतत्कोष्ठकान्तर्गतः भागः बृ० प्रतौ नास्ति। ११ "नित्यः शब्दः श्रावणत्वादिति। अत्र 'श्रावणत्वात्' इति हेतुर्नित्यानित्यसपक्षाभ्यामाकाश-घटादिरूपाभ्यां व्यावृत्तः शब्दं विना अन्यत्र श्रावणत्वस्य अभावात् नित्यानित्यविनिर्मुक्तस्य च अन्यस्य असंभवात् संशयहेतुः किम्भूतस्य अस्य श्रावणत्वमिति यतः शब्दं विना श्रावणत्वयुक्तो नान्यः पदार्थोऽस्ति यत्र श्रावणत्वे सति नित्यत्वमनित्यत्वं वा निश्चीयते शब्दस्यैव श्रावणत्वादिति। एवमत्रापि"–मां० टि०। १२–कारेण इ–बृ० स० मा० वा० विना। १३–मभिन्नं च–बृ० विना।

१४ "यथार्थक्रियालक्षणं सत्त्वमित्युक्तं तत्र लक्षणशब्दः कारणार्थः स्वरूपार्थः ज्ञापकार्थो वा स्यात्? प्रथमपक्षे किमर्थक्रियालक्षणं कारणं सत्त्वस्य तदा अर्थक्रियायाः। तत्रार्थक्रियातः सत्त्वस्योत्पत्तौ प्राक् पदार्थानां सत्त्वमन्तरेणाप्यस्याः प्रादुर्भावात् निर्हेतुकत्वम् निराधारकत्वं वानुषज्येत। अथ सत्त्वादर्थक्रियोत्पद्यते तदार्थक्रियातः प्रागपि सत्त्वसिद्धेर्भावानां स्वरूपसत्त्वमायातम्। अथ स्वरूपार्थोऽसौ तत्रापि तद्धेतोरसत्त्वप्रसङ्गः। न हि अर्थक्रियाकाले तद्धेतुर्विद्यते। न चान्यकालस्य अस्य अन्यदाना सा स्वरूपमतिप्रसङ्गात्। नापि ज्ञापकार्थोऽसौ अर्थक्रियाकालेऽर्थस्यासत्त्वादेव। [illegible] कथं सत्ताज्ञप्तिरतिप्रसङ्गात्। न चार्थक्रियोदयात् प्राक् कारणमासीदिति व्यवस्थापयितुं शक्यम्। यतो यदि स्वरूपेण पूर्वं हेतुरवगतो भवेत् तदनन्तरं चार्थक्रिया तदार्थक्रिया प्रतिपन्नसम्बन्धोपलभ्यमाना प्राग्हेतुसत्तां व्यवस्थापयतीति स्यात्। न चार्थक्रियामन्तरेण हेतुः स्वरूपेण कदाचिदप्युपलब्धः परैः स्वरूपसत्त्वप्रसङ्गात्। अर्थक्रियायाश्चार्थक्रिया यदि [illegible] तदावस्था। न चार्थक्रियाऽनधिगतसत्त्वस्वरूपापि हेतुसत्त्वव्यवस्थापिका अतिप्रसङ्गादेरपि [illegible] न च हेतुजन्यत्वादर्थक्रिया सती चार्थक्रियान्तरोदयादित्यभिधातव्यम् इतरेतराश्रयानुषङ्गात्—हेतुसत्त्वेऽर्थक्रिया सती तत्सत्त्वाच्च हेतोः सत्त्वमिति"–प्रमेयक० पृ० १४८ द्वि० पं० २।

१५ "अर्थक्रिया"–बृ० मां० टि०।

[illegible]भावात्, अपि चार्थक्रियाकाले हेतोरदर्शनात् अनन्तरक्षणे कथं सत्ताऽवगम्यते ? न च 'अर्थक्रियोदयात् प्राक् कारणमासीत्' इति व्यवस्थापयितुं शक्यम्, यतो यदि स्वरूपेण पूर्वं हेतुः सत्तो भवेत् तदनन्तरं चार्थक्रियोपलम्भानुभवः स्यात् ततोऽर्थक्रिया अनवगतप्रतिबन्धोपल- म्भमाना प्राग् हेतुसत्तासम्पत्त्यापनपटीयसी भवेत् । न चार्थक्रियामन्तरेण हेतुः स्वरूपेण कदाचिद- प्युपलब्धिगोचरः स्वरूपसत्त्वप्रसङ्गात् । किञ्च, यद्यर्थक्रिया हेतुसत्तासम्पत्त्यापिका तस्या अन्यपरार्थ- ५ क्रिया व्यवस्थापिकेत्यनिष्ठाप्रसङ्गान्न हेतुसत्ताव्यवस्थितिर्भवेत् । न चार्थक्रिया अनधिगतसत्त्वस्वरू- पाऽपि हेतुसत्त्वव्यवस्थापिका दात्राविषाणादेरपि तत्सत्त्वव्यवस्थापकत्वप्रसक्तेः । न च हेतुजन्यत्वा- देवार्थक्रिया सती चार्थक्रियान्तरोदयाद्विति वक्तव्यम् इतरेतराश्रयप्रसक्तेः । तथाहि-हेतुजन्यत्वादर्थ- क्रिया सती तत्सत्त्वाच्च हेतोः सत्त्वमिति परिस्फुटमितरेतराश्रयत्वमिति चार्थक्रियालक्षणं सत्त्वम् ।

भवतु चार्थक्रियालक्षणं सत्त्वं तथापि नातः क्षणक्षयानुमानम्, यतोऽसौ भावानां १० क्षणस्थायितां साधयति, उत क्षणादूर्ध्वमभावम् ? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता नित्यस्यापि भावस्य क्षणावस्थानाभ्युपगमात् अन्यथा सदातनस्थितिरेव न भवेत् क्षणावस्थितिनिबन्धनत्वात् क्षणा- न्तरादिस्थितेः । न चोत्तरकालमभावमवगमयति अभावेन सह तस्याः प्रतिबन्धाभावात् न चाप्रतिबन्धविषयः शशविषाणादिवदनुमेयः । किञ्च, समानकालं वा सा साध्यं साधयेत् भिन्नकालं वा ? यदि समानकालं सद्रूपं साध्यं साधयति तदा तत्समानकालभाविनः सत्सामान्यस्य १५ सिद्धत्वात् सिद्धसाध्यता अभावेन च प्रतिबन्धाभावोऽपि ततस्तत्सिद्धिः । अथ भिन्नकालं साधयति तथापि प्रतिबन्धाभावान्न ततस्तत्सिद्धिः न हि भिन्नकालेन विद्यमानेनाविद्यमानेन वा सत्तायाः कश्चिदविनाभाव इति यत्राविनाभावस्तत्र विप्रतिपत्तिर्नास्ति यत्र च विप्रतिपत्तिस्तत्राविनाभा- वाभाव इति न सत्तातः क्षणक्षयानुमानम् । न च सत्त्वं वर्तमानकालभावित्वम् तच्च पूर्वा- परकालसम्बन्धविकलतया क्षणिकत्वं तदात्मकतया भावानां प्रकटयति यतो वर्तमानं क्षणिक- २० मिति कुतोऽवगम्यते ? पूर्वापरयोस्तत्रादर्शनादिति चेत्, न; दृश्यादर्शनस्यैवाभावव्यवहारसा- धकत्वात् । अदर्शनमात्रस्य तु सत्यपि वस्तुनि सम्भवात् न तत्र प्रमाणता । न च सर्वं वस्तु सर्वदा दर्शनयोग्यम् चक्षुर्व्यापाराभावे वस्तुनोऽप्रतिभासनात् तदैव च चक्षुर्व्यापारात् परेणोप- लम्भात् तत्र पूर्वापरयोरनुपलम्भमात्रादभावनिश्चयं इति न प्रत्यक्षानुमानाभ्यां क्षणिकतावगमः । न चैतद्व्यतिरिक्तं प्रमाणान्तरं परैरभ्युपगम्यते इति कुतः क्षणिकत्वसिद्धिः ? २५

यदपि 'यद् यथावभासते तत् तथैवाभ्युपगन्तव्यम् यथा नीलं नीलरूपतया प्रतिभासमानं तेनैव रूपेणाभ्युपगमविषयः क्षणपरिगतेन च रूपेण पदार्थाः प्रतिभान्तीति प्रत्यक्षसिद्धे क्षणिकत्वे तद्व्यवहारसाधनाय हेतूपादानम्' इति परैः प्रतिपादितम् तदप्ययुक्तम्, 'क्षणपरिगतेन रूपेण प्रतिभासनात्' इति हेतोरसिद्धेः कालान्तरस्थायितयाऽप्यक्षे भावानां प्रतिभासनस्य प्रतिपादि- तत्वात् । यदप्यभिहितम् 'न प्रथमदर्शनेन कालान्तरस्थितिरवसातुं शक्या' तदप्यसङ्गतम्, स्थिर- ३० रूपपदार्थदर्शनात् आ विनाशकारणसन्निधानात् स्थायितया भावदर्शनेनैव भावस्य ग्रहणात् अन्य- थैकक्षणस्थायितया तस्य ग्रहणे व्यवहारार्थमुपादानं न भवेत् । न च तत् क्षणप्रभवं वस्तु व्यवहारं साधयिष्यतीति तदुपादानम् एवंभूतप्रतिपत्तेरभावात् । यदि व्यवहारिणः 'इदमर्थक्रियाकारि वस्त्व- न्यदेव' इति प्रतिपद्यन्ते । न च सन्ताननिबन्धनोऽयं व्यवहारः क्षणिकत्वासिद्धौ सन्तानस्यासिद्धेः । न च भ्रान्तोऽयं व्यवहारः अतस्मिंस्तद्ग्रहणरूपस्य भ्रान्तत्वस्य क्षणक्षयासिद्धावसिद्धेः । न च क्षणिकत्वं ३५

---

१ तत्सत्त्वस्य-आ० बा० आ० । २-त्वप्रार्थ-आ० । ३ "अस्तु वा अर्थक्रियालक्षणं सत्त्वम् तथापि अतो- ऽर्थानां क्षणस्थायिता क्षणिकत्वं साध्येत क्षणाद् ऊर्ध्वमभावो वा"-प्रमेयक० पृ० १४८ द्वि० पं० १० । ४ "यदि हि एकस्मिन् क्षणे न स्थितिर्भावस्य तदा क्षणान्तरेऽपि कथं स्यात्"-न्या० मा० टि० । ५ तस्याम-न्या० बा० बा० हा० वि० । ६ वा साध्यं आ० हा० वि० । ७-कालसंद्रू-न्या० । ८ "सत्ता"-मा० टि० । "साधनं"-न्या० टि० । ९-त्वान्नतस्त-बा० बा० ।-भात्, ततस्त-म० ।-वा ततस्त-आ० । १० "अन्येन पुंसा"-न्या० मा० टि० । ११-क्षसिद्धत्व-आ० मा० ।

परिणतम् परिणंस्यद् वा द्रव्यं तच्छब्दवाच्यं द्रव्यार्थिकमतेन व्यवस्थितं पूर्ववत्। अत एव ज्ञाघर्याभिज्ञः तत्र च अनुपयुक्तो 'द्रव्यम्' इति प्रतिपादितः द्रव्यार्थिकनिक्षेपश्च। द्रव्यमार्गमे अनेकधा प्रतिपादितम् इह तु युक्तिसंस्पर्शमात्रमेव प्रदर्श्यते तदर्थत्वात् प्रयासस्य।

[४ भावनिक्षेपः]

५ [भावं व्याख्याय तत्र पर्यायार्थिकत्वकथनम्]

भवति-विवक्षितवर्त्तमानसमयपर्यायरूपेण उत्पद्यते-इति भावः, "विभाषा ग्रहः" [३।१।१४३ सिद्धान्तकौ० अं० २९०५] इत्यत्र सूत्रे केश्चिद् "भवतेश्च" इति णोऽपीष्यते। अथवा भूतिर्भावः वज्र-किरीटादिधारणवर्त्तमानपर्यायेणेन्द्रादिरूपतया वस्तुनो भवनम्, तद्ग्रहणपर्यायेण वा ज्ञानस्य भवनम्। यथा चोयं पर्यायार्थिकप्ररूपणा तथा प्रदर्शित एव प्राक् न पुनरुच्यते। एष एव नर-१० निक्षेपानुयोगप्रतिपादितः उभयनयप्रविभागः परमार्थः परमं हृदयमागमस्यैतद्व्यतिरिक्तविषयत्वात् सर्वेनयवादानाम् न हि शास्त्रपरमहृदयनयद्वयव्यतिरिक्तः कश्चिन्नयो विद्यते सामान्यविशेषस्वरूपविषयद्वयव्यतिरिक्तविषयान्तराभावाद् विषयिणोऽप्यपरस्य नयान्तरस्याभाव इति प्राह प्रतिपादितमिति ॥ ६ ॥

[द्रव्य-पर्याययोरन्योन्यव्याप्तिविषये निरपेक्षनयाश्रितवचसामसत्यत्वकथनम्]

एतदपि नयद्वयं शास्त्रस्य परमहृदयम् 'द्रव्यं पर्यायशून्यम् पर्यायाश्च द्रव्यविरहिणः' इत्येवं-भूतार्थप्रतिपादनपरम् नान्यथेत्येतस्यार्थस्य प्रदर्शनार्थमाह—

पज्जयणिस्सामण्णं वयणं दव्वट्ठियस्स 'अत्थि'त्ति ।
अवसेसो वयणविही पज्जवभयणा सपडिवक्खो ॥ ७ ॥ ५

परस्परनिरपेक्षस्य नयद्वयस्य प्रत्येकमेवं वचनविधिः—द्रव्यास्तिकस्य अननुषक्तविशेषं वचनम् 'अस्ति' इत्येतावन्मात्रम्, पर्यायास्तिकस्य त्वपरामृष्टसत्तास्वभावं 'द्रव्यम्' 'पृथिवी' 'घटः' 'शुक्लः' इत्याद्याश्रितपर्यायम्। परस्परनिरपेक्षं चोभयनयवचोऽसदेव, वचनार्थासत्त्वात्। वचनमसदर्थमिति तदर्थस्यान्यस्य समावेदितं भवतीति समुदायार्थः।

अवयवार्थस्तु-पर्यायनयेन सह निःसामान्यम् असाधारणं वचनं द्रव्यास्तिकस्य १० 'अस्ति' इति एतत्, भेदस्यानभ्युपगतस्य विशेषस्य सत्तारूपतानुपपत्तेः। एतच्च वचो निर्विषयम्, निर्विशेषत्वात्, वियत्कुसुमाभिधानवत्—

"निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्" [श्लो० वा० आकृति० श्लो० १०]

इति प्रसाधितत्वात् साध्यासिद्धेर्हेतोः। असिद्धिः पराभ्युपगमादेव परिहृता। तत्र एकान्तभावनाप्रवृत्तस्य द्रव्यास्तिकनयस्य परमार्थता। पर्यायास्तिकस्याप्येवंप्रवृत्तस्य न सेति पश्चार्द्धेन प्रतिपादयति—१५ अवशेष इति शेषः स चोपयुक्तादन्यः वचनविधिः वचनभेदः सत्ताविकलविशेषप्रतिपादकः पर्यायेषु सत्ताव्यतिरिक्तेष्वसत्सु भजनात्-सत्ताया आरोपणात् सप्रतिपक्षः इति सतः प्रति-पक्षः-विरोधी असन् भवति। तथाहि—पर्यायप्रतिपादको वचनविधिरवस्तुविषयः, निःसामान्य-त्वात्, खपुष्पवत्। भावना तु द्रव्यार्थिकवचनविपर्ययेण प्रयोगस्य कार्या।

अथवा "अर्थाभिधानप्रत्ययास्तुल्यनामधेयाः" [   ] इति अर्थ-प्रत्यययोः स्वरूप-२० मभिधाय अभिधानस्य द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकस्वरूपस्य तदभिधायकस्य वा प्रतिपादनार्थमाह—पज्जयणिस्सामण्णं इत्यादि। पर्यायाभिष्क्रान्तम्—तद्विकलम्—सामान्यं सद्रूपस्वरूपं यस्मिन् वचने तत् पर्यायनिस्सामान्यं वचनम्। किं पुनस्तत्? इत्याह—'अस्ति' इति, तच्च द्रव्या-र्थिकस्य स्वरूपम् प्रतिपादकं वा। यद्वा पर्यायः ऋजुसूत्रनयविषयाद् अन्यो द्रव्यार्थादिविशेषः, स एव च निश्चितं सामान्यं यस्मिंस्तत् पर्यायनिस्सामान्यं वचनम् द्रव्यत्वादिसामान्यविशे-२५ षाभिधायीति यावत्। तच्च अशुद्धद्रव्यार्थिकसम्बन्धि तत्प्रतिपादकत्वेन तत्स्वरूपत्वेन वा। अवशेषो वचनविधिः-वर्णपद्धतिः सप्रतिपक्षः अस्य वचनस्य पर्यायार्थिकनयरूपः तत्प्रति-पादको वा पर्यायसेवनात्; अन्यथा कथमवशेषवचनविधिः स्यात् यदि विशेषं नाश्रयेत्? ॥७॥

१-वचनं वा० ब०। २-...यार्थिक-बृ० वा० बा०। ३-दृष्ट च आ० हा० वि०। ४-रिक्तेषु रूपम-वा० बा०। ५-क्रम्यम आ० मा०। ६-स्वापि-वा० बा०। ७ यस्मिन् वचने तन्निःसा-हा० वि०। यस्मिन् वचने तस्मिन् वचने तन्निःसा-भा०। ८-व्यार्थिक स-बृ०। ९-न च। वा० बा०।

[द्रव्य-पर्याययोरन्योन्यसम्मिश्रत्वसूचनाय ज्ञानानेकान्तवर्णनम्]

एवं तावद् द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकभेदेन भेदमनुभवतां नयानां स्वरूपं प्रतिपाद्य अनेकान्तभावभावनयैवैषां सत्यता नान्यथेत्येतत्प्रतिपादनार्थं ज्ञानानेकान्तमेव तावदाह–

पज्जवणयवोक्कंतं वत्थुं दव्वट्ठियस्स वयणिज्जं ।
५ जाव दविओवओगो अपच्छिमवियप्पनिव्वयणो ॥ ८ ॥

द्रव्यास्तिकस्य वक्तव्यम्-परिच्छेद्यो विषयः, निश्चयकर्तृ वचनं निर्वचनम्, विकल्पश्च निर्वचनं च विकल्प-निर्वचनम्, न विद्यते पश्चिमं यस्मिन् विकल्पनिर्वचने तत्-तथा-तथाविधं तद् यस्य द्रव्योपयोगस्यासौ अपश्चिमविकल्पनिर्वचनः सङ्ग्रहावसान इति यावत् ततः परं विकल्पवचनाऽप्रवृत्तेः। यावद् अपश्चिमविकल्पनिर्वचनो द्रव्योपयोगः प्रवर्त्तते तावद् द्रव्यार्थिकस्य
१० विषयो वस्तु, तच्च पर्यायाक्रान्तमेव; अन्यथा ज्ञानाऽर्थयोरप्रतिपत्तेरसत्त्वप्रसक्तिः। न हि पर्यायाऽनाक्रान्तसत्तामात्रसद्भावग्राहकं प्रत्यक्षम् अनुमानं वा प्रमाणमस्ति, द्रव्यादिपर्यायाक्रान्तस्यैव सर्वदा सत्तारूपस्य ताभ्यामवगतेः।

यद्वा यद् वस्तु सूक्ष्मतरतमादिबुद्धिना पर्यायनयेन स्थूलरूपत्यागेनोत्तरतत्सूक्ष्मरूपाश्रयणाद् व्युत्क्रान्तम् गृहीत्वा त्यक्तम्, यथा किमिदं मृत्सामान्यं घटादिभिर्विना प्रतिपत्ति-
१५ विषयः यावत् शुक्लतमरूपस्वरूपोऽन्त्यो विशेषः एतद् द्रव्यार्थिकस्य वस्तु विषयः यतो यावद् अपश्चिमविकल्पनिर्वचनोऽन्त्यो विशेषस्तावद् द्रव्योपयोगः द्रव्यज्ञानं प्रवर्तते; नहि द्रव्यादयो विशेषान्ताः सदादिप्रत्यया विशिष्टैकान्तव्यावृत्तबुद्धिग्राह्यतया प्रतीयन्ते, न च तथाऽप्रतीयमानास्तथाभ्युपगमार्हाः अतिप्रसङ्गात् ॥ ८ ॥

[वस्तुगत्या द्व्यात्मक एव तत्त्वे नयद्वयविषयविवेकस्य विवक्षाधीनत्वाभिधानम्]

२० तदेवं न सत्ता विशेषविरहिणी, नापि विशेषाः सत्ताविकला इति प्रदर्शयोपसंहरन्नाह–

दव्वट्ठिओ त्ति[3] तम्हा नत्थि णओ नियम सुद्धजाईओ ।
ण य पज्जवट्ठिओ णाम कोइ भयणाय उ विसेसो ॥ ९ ॥

तस्माद् द्रव्यार्थिकः इति नयः शुद्धजातीयः विशेषविनिर्मुक्तो नास्ति-नियमेन इत्यवधारणार्थः–विषयाभावेन विषयिणोऽप्यभावात्। न च पर्यायार्थिकोऽपि कश्चिन्नयः–
२५ 'नाम' इति प्रसिद्धार्थः–नियमेन शुद्धस्वरूपः सम्भवति, सामान्यविकलात्यन्तव्यावृत्तविशेषविषयाभावेन विषयिणोऽप्यभावात्। यदि विषयाभावाद् इमौ नयौ न स्तः यदुक्तम् 'तीर्थकरवचनसङ्ग्रह'-इत्यादि तद् विरुध्यत इत्याह–भयणाय उ विसेसो भजनायास्तु विवक्षाया एव विशेषः–'इदं द्रव्यम् अयं पर्यायः' इत्ययं भेदः तथा तद्भेदाद् विषयिणोऽपि तथैव भेद इत्यभिप्रायः । भजना च–सामान्यविशेषात्मके वस्तुतत्त्वे उपसर्जनीकृतविशेषं यद् अन्वयि-
३० रूपं तद् 'द्रव्यम्' इति विवक्ष्यते यदा तदा द्रव्यार्थिकविषयः, यदा तूपसर्जनीकृतान्वयिरूपं तस्यैव वस्तुनो यद् असाधारणं रूपं तद् विवक्ष्यते तदा पर्यायनयविषयस्तद् भवतीति ॥ ९ ॥

---

१ परिच्छेद्यवि-भा० । २-त्या त्युक्तम् पू० । ३-त्ति जम्हा वा० बा० । ४-ओ णिय-पू० । ५ पृ० २७१ पं० ७ । ६ -व्यार्थवि-वा० बा० ।

[विवक्षाकृतस्य नयद्वयविषयविवेकस्य विशदीकरणम्]

पर्यवभजनाहृतमेव भेदं दर्शयितुमाह—

दव्वट्ठियवत्तव्वं अवत्थु णियमेण पज्जवणयस्स ।
तह पज्जववत्थु अवत्थुमेव दव्वट्ठियनयस्स ॥ १० ॥

पर्यायास्तिकस्य द्रव्यास्तिकाभिधेयमवस्तु, अयस्त्वेव भेदरूपापन्नत्वात्, द्रव्या-५
स्तिकस्यापि पर्यायास्तिकाभ्युपगता भेदा अवस्तुरूपा एव भवन्ति, सत्तारूपापन्नत्वात् ।
अतो भजनामन्तरेणैकत्र सत्तायाः अपरत्र च भेदानां ग्रहणात् 'इदं द्रव्यम् एते च पर्यायाः' इति
नास्ति भेदः । न च प्रतिभासमानयोर्द्रव्य-पर्याययोः कथं पर्यायास्तिक-द्रव्यास्तिकाभ्यां प्रतिक्षेपः
इति वक्तव्यम् यतः प्रतिभासोऽप्रतिभासस्य बाधकः न तु मिथ्यात्वस्य, मिथ्यारूपस्यापि प्रतिभास-
नात् । तथाहि पर्यायास्तिकः प्राह—न मया द्रव्यप्रतिभासो निषिध्यते—तस्यानुभूयमानत्वात्—किन्तु १०
विशेषव्यतिरेकेण द्रव्यस्याप्रतिभासनात् अव्यतिरेके तु व्यक्तिस्वरूपवत् तस्यानन्वयात् उभयरूप-
तायाश्चैकत्र विरोधात् गत्यन्तराभावात् द्रव्यप्रतिभासस्तत्र मिथ्यैव । विशेषप्रतिभासस्त्वन्यथा,
बाधकाभावात् यतः प्रतिक्षणं वस्तुनो निरन्वयनाशोत्पादौ पर्यायलक्षणं न स्थितिः । द्रव्यार्थिकस्तु
भङ्गनोत्थापितस्वरूपः प्राह—अस्माकमप्ययमेवाभ्युपगमः—न विशेषप्रतिभासप्रतिक्षेपः किन्तु तस्य
भेदाभेदोभयविकल्पैर्बाध्यमानत्वात् मिथ्यारूपतैव अभेदप्रतिभासस्तु अनुत्पादव्ययलक्षणस्य द्रव्यस्य १५
—तद्विषयस्य सर्वदाऽवस्थितेरबाध्यमानत्वात्—सत्य इति ॥ १० ॥

[निरपेक्षनयद्वयमेकमेव वस्तु यथा यथा मन्यते तथा विभज्य वर्णनम्]

कल्पनाव्यवस्थापितपर्यायास्तिक-द्रव्यास्तिकयोरेवंलक्षणप्रदर्शितस्वरूपयोर्मिथ्यारूपताप्रतिपत्तिः
सुकरा भविष्यतीत्याह—

उप(प्प)ज्जंति वियंति य भावा नियमेण पज्जवणयस्स । २०
दव्वट्ठियस्स सव्वं सया अणुप्पन्नमविणट्ठं ॥ ११ ॥

उत्पद्यन्ते प्रागभूत्वा भवन्ति विशेषेण निरन्वयरूपतया गच्छन्ति नाशमनुभवन्ति
भावाः पदार्थाः—नियमेन इत्यवधारणे पर्यायनयस्य मतेन—प्रतिक्षणमुत्पाद-विनाशस्वभावा
एव भावाः पर्यायनयस्याभिमताः । द्रव्यार्थिकस्य सर्वं वस्तु सदा अनुत्पन्नमविनष्टम्
नाकारं स्थितिस्वभावमेवेति मतम् । एतच नयद्वयस्याभिमतं वस्तु प्राक् प्रतिपादितमिति न पुनरु-२५
च्यते ॥ ११ ॥

---

१ रूप प्र [illegible] —णा होइ पज्जाए [illegible] ३ स्तिकंद्र-आ० । ४-द्रस्यापन्न-वृ० वा० मा० ।
५-धाद्रिग-अ० ह० मि० । ६-आयस्त्य अ० हा० वि० । ७-द्यास्तिक-वृ० वा० बा० । ८-कयोरेवल-
वृ० बा० [illegible] ९ स्यापि प्र-वा० बा० ।

[द्रव्य-पर्याययोरन्योन्यसम्मिश्रत्वसूचनाय ज्ञानानेकान्तवर्णनम्]

एवं तावद् द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकभेदेन भेदमनुभवतां नयानां स्वरूपं प्रतिपाद्य अनेकान्त-भावभावनयैवैषां सत्यता नान्यथेत्येतत्प्रतिपादनार्थं ज्ञानानेकान्तमेव तावदाह—

पज्जवणयवोक्कंतं वत्थुं दव्वट्ठियस्स वयणिज्जं ।
५ जाव दविओवओगो अपच्छिमवियप्पनिव्वयणो ॥ ८ ॥

द्रव्यास्तिकस्य वक्तव्यम्-परिच्छेद्यो विषयः, निश्चयकर्तृ वचनं निर्वचनम्, विकल्पश्च निर्वचनं च विकल्प-निर्वचनम्, न विद्यते पश्चिमं यस्मिन् विकल्पनिर्वचने तत्-तथा-तथाविधं तद् यस्य द्रव्योपयोगस्यासौ अपश्चिमविकल्पनिर्वचनः सङ्ग्रहावसान इति यावत् ततः परं विकल्पवचना-ऽप्रवृत्तेः । यावद् अपश्चिमविकल्पनिर्वचनो द्रव्योपयोगः प्रवर्तते तावद् द्रव्यार्थिकस्य १० विषयो वस्तु, तच्च पर्यायाक्रान्तमेव; अन्यथा ज्ञानाऽर्थयोरप्रतिपत्तिरसत्त्वप्रसक्तिः । न हि पर्या-याऽनाक्रान्तसत्तामात्रसद्भावग्राहकं प्रत्यक्षम् अनुमानं वा प्रमाणमस्ति, द्रव्यादिपर्यायाक्रान्तस्यैव सर्वदा सत्तारूपस्य ताभ्यामवगतेः ।

यद्वा यद् वस्तु सूक्ष्मतरतमादिबुद्धिना पर्यायनयेन स्थूलरूपत्यागेनोत्तरतरत्तत्सूक्ष्मरूपा-श्रयणाद् व्युत्क्रान्तम् गृहीत्वा स्वकम्, यथा किमिदं मृत्सामान्यं घटादिभिर्विना प्रतिपत्ति-१५ विषयः यावत् शुक्लतमरूपस्वरूपोऽन्त्यो विशेषः एतद् द्रव्यार्थिकस्य वस्तु विषयः यतो यावद् अपश्चिमविकल्पनिर्वचनोऽन्त्यो विशेषस्तावद् द्रव्योपयोगः द्रव्यज्ञानं प्रवर्तते, नहि द्रव्या-दयो विशेषान्ताः सदादिप्रत्यया विशिष्टैकान्तव्यावृत्तबुद्धिग्राह्यतया प्रतीयन्ते, न च तथाऽप्रतीयमा-नास्तथाभ्युपगमार्हाः अतिप्रसङ्गात् ॥ ८ ॥

[वस्तुगत्या द्व्यात्मक एव तत्त्वे नयद्वयविषयविवेकस्य विवक्षाधीनत्वाभिधानम्]

२० तदेवं न सत्ता विशेषविरहिणी, नापि विशेषाः सत्ताविकला इति प्रदर्श्योपसंहरन्नाह—

दव्वट्ठिओ त्ति तम्हा नत्थि णओ नियम सुद्धजाईओ ।
ण य पज्जवट्ठिओ णाम कोइ भयणाय उ विसेसो ॥ ९ ॥

तस्माद् द्रव्यार्थिकः इति नयः शुद्धजातीयः विशेषविनिर्मुक्तो नास्ति-नियमेन इत्यवधारणार्थः—विषयाभावेन विषयिणोऽप्यभावात् । न च पर्यायार्थिकोऽपि कश्चिन्नयः—२५ 'नाम' इति प्रसिद्धार्थः—नियमेन शुद्धस्वरूपः सम्भवति, सामान्यविनिर्मुक्तस्य विशेषस्य विषयाभावेन विषयिणोऽप्यभावात् । यदि विषयाभावाद् इमौ नयौ न स्तः कथं तर्हि 'तित्थयरवयण-संगह'-इत्यादि तद् विरुध्यत इत्याह—भयणाय उ विसेसो भजनायास्तु विवक्षाया एव विशेषः—'इदं द्रव्यम् अयं पर्यायः' इत्ययं भेदः तथा तद्भेदाद् विषयिणोऽपि तयोर्भेद इत्यभिप्रायः । भजना च—सामान्यविशेषात्मके वस्तुतत्त्वे उपसर्जनीकृतविशेषं यद् सामान्य-३० रूपं तद् 'द्रव्यम्' इति विवक्ष्यते यदा तदा द्रव्यार्थिकविषयः, यदा तूपसर्जनीकृतसामान्यविशेषं तस्यैव वस्तुनो यद् असाधारणं रूपं तद् विवक्ष्यते तदा पर्यायनयविषयत्वं भवतीति ॥ ९ ॥

---

१ [illegible] २-स्या [illegible] ३-नि [illegible] ४-[illegible]
५ [illegible] ६ -[illegible]

[विवक्षाद्वारा नयद्वयविषयविवेकस्य विशदीकरणम्]

पर्यायनयान्तरमेव भेदं दर्शयितुमाह—

दव्वट्ठियवत्तव्वं अवत्थु णियमेण पज्जवणयस्स ।
तह पज्जववत्थु अवत्थुमेव दव्वट्ठियनयस्स ॥ १० ॥

पर्यायास्तिकस्य द्रव्यास्तिकाभिधेयमस्तित्वम् अवस्त्वेव भेदरूपाप्रभावात् द्रव्या-५
स्तिकस्यापि पर्यायास्तिकाभ्युपगता भेदा अवस्तुरूपा एव भवन्ति, सत्तारूपापन्नत्वात् ।
ततो भजनामन्तरेणैकत्र सत्तायाः अपरत्र च भेदानां सद्भावात् 'इदं द्रव्यम् एते च पर्यायाः' इति
नास्ति भेदः । न च प्रतिभासमानयोर्द्रव्य पर्याययोः कथं पर्यायास्तिक-द्रव्यास्तिकाभ्यां प्रतिक्षेपः
इति वक्तव्यम् यतः प्रतिभासोऽप्रतिभासस्य बाधकः न तु मिथ्यात्वस्य, मिथ्यारूपस्यापि प्रतिभास-
नात् । तथाहि पर्यायास्तिकः प्राह—न यथा द्रव्यप्रतिभासो निर्विषयो—तस्याननुभूयमानत्वात्—किन्तु १०
विशेषव्यतिरेकेण द्रव्यस्याप्रतिभासनात् अव्यतिरेके तु व्यक्तिस्वरूपवत् तस्यानन्वयात् उभयरूप-
तायोगश्च विरोधात् गत्यन्तराभावात् द्रव्यप्रतिभासस्तत्र सिध्येव । विशेषप्रतिभासस्त्वन्यथा,
बाधकाभावात् यतः प्रतिक्षण वस्तुनो निपूर्वनाशोत्पादौ पर्यायलक्षणं न स्थितिः । द्रव्यार्थिकस्तु
भङ्गोद्भावितस्वरूपः प्राह—सत्तायामप्ययभेदाभ्युपगमः—न विशेषप्रतिभासप्रतिक्षेपः किन्तु तस्य
भेदाभेदोभयविकल्पैर्बाध्यमानत्वात् मिथ्यारूपतैव अभेदप्रतिभासस्तु अनुत्पादव्ययलक्षणस्य द्रव्यस्य १५
—तद्विषयस्य सर्वदाऽवस्थितेरबाध्यमानत्वात्—सत्य इति ॥ १० ॥

[निरपेक्षनयद्वयमेकमेव वस्तु यथा यथा मन्यते तथा विभज्य वर्णनम्]

कल्पनाद्वयस्यार्पितपर्यायास्तिक-द्रव्यास्तिकयोरेकैकलक्षणप्रदर्शितस्वरूपयोर्मिथ्यारूपताप्रतिपत्तिः
सुकरा भविष्यतीत्याह—

उप(प्प)ज्जंति वियंति य भावा नियमेण पज्जवणयस्स । २०
दव्वट्ठियस्स सव्वं सया अणुप्पन्नमविणट्ठं ॥ ११ ॥

उत्पद्यन्ते प्रागभूत्वा भवन्ति विशेषेण निरन्वयरूपतया गच्छन्ति नाशमनुभवन्ति
भावाः पदार्थाः—नियमेन इत्यवधारणे पर्यायनयस्य मतेन—प्रतिक्षणमुत्पाद-विनाशस्वभावा
एव भावाः पर्यायनयस्याभिमताः । द्रव्यार्थिकस्य सर्वं वस्तु सदा अनुत्पन्नमविनष्टम्
भावात्वं स्थितिस्वभावमेवेति मतम् । एतच्च नयद्वयस्याभिमतं वस्तु प्राक् प्रतिपादितमिति न पुनरु-२५
च्यते ॥ ११ ॥

१–रूप अ । ... —ण हा पज्ञाग । ... । त्तिकंद्र–आ० । ४ इत्यागम–वृ० वा० वा० ।
५–प्रादिन–आ० ६० ... । आवस्य ... । व्यास्तिक–ब० ... । ८–कयोरेकस्–
वृ० मा० ... । ... स्याव म ...

द्वादशगाथाव्याख्या।

[अन्योन्यमुक्तयोर्द्रव्य-पर्याययोर्नास्तित्वोक्तिपूर्वकमुत्पाद-व्यय-ध्रौव्याणां द्रव्यलक्षणत्वेन वर्णनम्]

परस्परनिरपेक्षं चोभयनयप्रदर्शितं वस्तु प्रमाणाभावतो न सम्भवतीत्याह—

दव्वं पज्जवविउयं दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि।
५ उप्पाय-ट्ठिइ-भंगा हंदि दवियलक्खणं एयं ॥ १२ ॥

द्रव्यं पर्यायवियुक्तं नास्ति मृत्पिण्ड-स्थास-कोश-कुशूलाद्यननुगतमृत्सामान्यप्रतीतेः। **द्रव्यविरहिताश्च पर्याया न सन्ति** अनुगतैकाकारमृत्सामान्यानुविद्धतया मृत्पिण्ड स्थास-कोश-कुशूलादीनां विशेषाणां प्रतिपत्तेः। अतो द्रव्यार्थिकाभिमतं वस्तु पर्यायाक्रान्तमेव न तद्विविकम् पर्यायाभिमतमपि द्रव्यार्थानुपक्तं न तद्विकलम् परस्परविविक्तयोः कदाचिदप्यप्रतिभासनात्।
१० किंभूतं पुनर्द्रव्यमस्तीत्याह-**उत्पाद-स्थिति-भङ्गा** यथाव्यावर्णितस्वरूपाः परस्पराविनिर्भागवर्तिनः, **'हन्दि'** इत्युपप्रदर्शने; **द्रव्यलक्षणं** द्रव्यास्तित्वव्यवस्थापको धर्मः एतद् दृश्यताम्, यतः पूर्वोत्तरपर्यायपरित्यागोपादानात्मकैकान्वयप्रतिपत्तिस्तथाभूतद्रव्यसत्त्वं प्रतिपादयतीत्युत्पाद-व्यय-ध्रौव्यलक्षणं वस्त्वभ्युपगन्तव्यम्। एतच्च त्रितयं परस्परानुविद्धम्, अन्यतमाभावे तदितरयोरप्यभावात्।

[उत्पाद-व्यय-ध्रौव्याणां परस्परव्याप्यत्वसमर्थनम्]

१५ तथाहि—न ध्रौव्यव्यतिरेकेण उत्पाद-व्ययौ सङ्गतौ, सर्वदा सर्वस्याऽनुस्यूताकारव्यतिरेकेण विज्ञान-पृथिव्यादिकस्याप्रतिभासनात्। न चानुस्यूताकारावभासो बाध्यत्वादसत्यः तद्बाधकत्वानुपपत्तेः यतोऽनुस्यूताकारस्य विशेषप्रतिभासो बाधकः परिकल्प्येत; स एव चानुपपन्नः। तथाहि—अनुगतरूपे प्रतिपन्ने अप्रतिपन्ने वा विशेषावभासोऽभ्युपगम्येत? यदि प्रतिपन्ने तदा किमनुस्यूतप्रतिभासात्मको विशेषप्रतिभासः, उत तद्व्यतिरिक्त इति कल्पनाद्वयम्। यद्यव्यति-
२० रिक्तस्तदा ध्रौव्यावभासस्य मिथ्यात्वे विशेषावभासस्यापि तदात्मकत्वाद् मिथ्यात्वापत्तेः कथमसौ तस्य बाधकः? अथ द्वितीयो विकल्पस्तत्रापि ध्रौव्यप्रतिभासमन्तरेण स्थास-कोशादिप्रतिभासस्य तद्व्यतिरिक्तस्यासंवेदनात् कथं तद्बाधकतोपपत्तिः? न चाक्षव्यापारानन्तरमन्वयप्रतिभासमन्तरेण विशेषप्रतिभास एवोपजायत इति वक्तव्यम्, प्रथमाक्षव्यापारे प्रतिनियतदेशवस्तुमात्रस्यैव प्रतीतेः, अन्यथा तत्र विशेषावभासे संशयाद्यनुत्पत्तिप्रसक्तिः, विशेषावगतेस्तद्विरोधित्वात्। न च तदुत्तर-
२५ कालभाविसादृश्यनिमित्तैकत्वाध्यवसायनिबन्धनेयं संशयाद्यनुभूतिः प्राग् विशेषावगमे एकत्वाध्यवसायस्यैवासम्भवात् अनुभूयते च दूरदेशादौ वस्तुनि सर्वजनसाक्षिकी प्राक् सामान्यप्रतिपत्तिः तदुत्तरकालभाविनी च विशेषावगतिः। अत एव अवग्रहादिज्ञानानां कालभेदानुपलक्षणेऽपि क्रमोऽभ्युपगन्तव्यः उत्पलपत्रशतव्यतिभेद इव। द्वितीयविकल्पोऽप्यत एवानभ्युपगमार्हः, अनुगताकाराप्रतिपत्तौ तद्विशेषावभासस्यासम्भवादिति। नहि मूल-मध्याऽग्रानुस्यूतस्थूलैकाकारप्रति-
३० भासनिह्नवे विविक्तपरमाणुप्रतिभासानवद्य इति कुतस्तस्य स्वविषयव्यवस्थापनद्वारेणान्यबाधकत्वम्? न चैकत्वप्रतिभासस्य मिथ्यात्वम् तद्विषयस्य विकल्प्यमानस्याघटमानत्वादिति वक्तव्यम्, विकल्पमात्रात् प्रमाणस्यान्यथात्वायोगात्। न चानुगतावभासस्याप्रामाण्यम्, तन्निबन्धनाभावात्। न च क्षणिकानेकनिरंशपरमाण्ववभासस्तन्निबन्धनम्, तस्याभावात्। न हासंवेद्यमानस्तथाभूतावभासः प्रमाणम् इतरद् वा, प्रतीतिधर्मत्वात् प्रमाणेतरयोः। न च सञ्चितपरमाणु-

१-ज्ञानि पृ-वा० बा०। २-गम्यते पृ० ल०। ३-स्य त सि-वा० बा०। ४-व्यार्थयि-आ० हा० वि०। ५-व्याप्य-बा० बा०। ६-घ कोप्र-आ० हा० वि०। ७-पारम्र-वा० बा०। ८ "प्रदय"।ऽपेधत्वात्-मृ० ल० मां० टि०। ९-द्दृशोऽपि मा० मा०। १०-तिभेदा इ-भा० मा०। ११ "'अर्थाभाव' इत्यम्"-मृ० ल० मां० टि०। १२-स्यं कि वि-आ० हा० वि०। १३-गात् तान् न बा० बा०

निरन्वय प्रत्यक्षानुभूयमानः, सञ्चितेष्वपि तेषु प्रत्येकं समुदितेषु वा स्थूलरूपतया
दर्शनाभ्युपगमात्। स्थूलस्य च परमाणुरूपतैकस्य ग्रहणाभावोऽन्योन्यमसंक्रान्तिरोऽनिष्टः। न चान्य-
थाभासोऽन्यथाभूतार्थस्य ग्राहकः प्रतिभासः। तत्र भ्रान्तत्वमप्ययुक्ततया परमाणवः स्थूला-
कारतया: तत्र स्वरूपानपेक्षत्वेनाप्रतिभासनात्। स्थूलाकारत्वे वा तेष्वनुभूयमानतयाभासिनो
भावेऽनुगतव्यावृत्तहेतुफलरूपभावाभ्युपगमात् परमार्थाभ्युपगमप्रसक्तिः। यदि च तथाभूतप्रतिभासो
मिथ्या तदा तथाभूते तथाभूतारोपणं मिथ्येत्यन्यथाभूतवस्तुग्रहणापेक्षं प्रमाणं वक्तव्यम्। तच्च
न प्रत्यक्षम् उक्तदोषत्वात्। नाप्यनुमानम् क्षणिकपरमाणुविविक्तपरमाणुस्वभावकार्यादर्शनात्
स्थूलस्वभावस्य चोपलभ्यमानस्यैव तत्कार्यत्वम्, तस्यापरमेश्वरत्वेन परैरभ्युपगमात्। न चावस्तुनस्
तस्य तद्विरुद्धत्वात्। न हि पावकप्रतिभासो जलस्य पावकत्वेन प्रतिभाति। न च वस्तुना
व्याप्तिरपि निश्चेतुं शक्यते। अवस्तुत्वेऽपि न तस्य क्षणिकविविक्तपरमाणुस्वव्यापकत्वम्,
वस्तुत्वात् परमाणूनां न कदाचनापि प्रतिपत्तिः। नापि तद्धर्मतया वस्तुत्वाभ्युपगमः स्थूलस्य
पराभ्युपगमविषयः, वस्तुत्वाभ्युपगमे तु तस्य स्यात् सूक्ष्मस्वभावव्यापकता, सूक्ष्मांशस्यैव स्थूलस्य
अन्यथा तद्योगात्। सूक्ष्मपर्यन्तरूपश्च परमाणुः तस्याभेद्यत्वात्। भेदत्वे वा वस्तुत्वापत्तेः तदव-
यवानां परमाणुत्वापत्तिः, भेदपर्यन्तलक्षणत्वात् परमाणुस्वरूपस्य।

न च ध्रौव्योत्पत्तिव्यतिरेकेण प्रतिक्षणविनाशकता अणूनामपि सम्भवति, तयोरभावे एक-
क्षणस्थितीनामपि तेषामभावात् कुतो विनश्वरत्वम्? अथ देशकालनियतस्य स्थैर्याभावेऽपि कस्यचित्
कदाचित् पदार्थस्य वृत्तेरन्यदा अन्यत्र च निवृत्तिः, नैतदेवम्, अन्यदा अन्यत्र चावृत्तेरेवानिश्चयात्।
तथाहि-कार्य कारणयोः परस्परतो व्यावृत्तिः कथञ्चिदनुवृत्तमेकमाकारं बिभ्रतोर्विमानमात्रप्रमाद-
साकारयोरिवापरित्यक्ततादात्म्यस्वरूपयोः, आहोस्वित् घट-पटयोरिवात्यन्तभिन्नस्वरूपयोः इत्यत्र २०
निश्चयः। किञ्च, प्रत्यक्षेणैव हेतु-फलयोः कथञ्चित्तादात्म्यस्य निश्चयात् घट-पटयोरिवात्यन्त-
व्यावृत्तिलयोः परस्परतोऽभ्युपगन्तव्या, न स्वपक्षतः प्रसिद्धस्वरूपं वस्तु तद्भावे प्रमाणान्तरम-
पेक्षते, अविरोधेऽप्यत्यनिश्चये। न च कालभेदान्यथानुपपत्त्या प्रतिक्षणं भेदेऽपि पूर्वोत्तरक्षणयोः
कथञ्चित्तादात्म्यं वस्तुनो विरुध्यते येनाध्यक्षविरुद्धो निरन्वयविनाशः कल्पनामनुभवति अध्यक्ष-
विरोधेन प्रमाणान्तरस्याप्रवृत्तेः। न चानुवृत्ति-व्यावृत्त्योः परस्परं विरोधैकान्ताभ्युपगमे विज्ञान-२५
मपि सिध्येदिति कुतः क्षणस्थितिर्भावानां निरन्वया व्यावृत्तिर्वा सिद्धिमासादयेत्? अन्तर्बहिश्च
नामैकानुगतव्यावृत्तात्मकत्वात् प्रमाणतस्तथैवानुभवात् तत्स्वरूपाभावे निःस्वभावतया भावा-
प्रसक्तेः। यदि च परस्परव्यावृत्तस्वभावानां परमाणूनां कथञ्चिदनुवृत्तस्थूलैकाकारः पारमा-
र्थिको न भवेत् न किञ्चिद् बहिरध्यक्षेऽवभासेत, परमाणु-पारिमाण्डल्य-नानात्व-परोक्षत्व-
स्वभावानां सञ्चितेष्वप्यणुषु स्थूलैकाकारोऽध्यक्षस्वभावेन विरोधेन अविरोधे वाऽनैकान्तप्रस- ३०
क्तेः। तथाभूतस्वभावसद्भावेऽपि तेषु पारिमाण्डल्य-नानात्व-परोक्षत्वलक्षणानपायात्। अपाये वा
तद्रूपतात्यागात् स्थूलैकाकारस्य तेषु सांवृतत्वे साकारध्यक्षाऽज्ञानकत्वेन न किञ्चिदपि तत्र
प्रतिभासेत, तदनध्यक्षत्वे तत्प्रत्यनीकस्य स्वभावस्य पारिमाण्डल्यादेरध्यक्षादिबुद्धौ दर्शनेऽपि
तदभावात् बहिरर्थप्रतिभासशून्यं जगत् भवेत्। स्थूलैकाकारव्यतिरेकेण च प्रमाणान्तरस्याप्रवृत्तेः तत्त्वावेदकं न
च कल्पनापोढं प्रत्यक्षमभ्रान्तं भवेत्, तदभावे च प्रमाणान्तरस्याप्रवृत्तेरेकतमोऽपि कल्पनापर ३५
व्यवस्थितेनं कस्यचिदभ्युपगमः प्रतिक्षेपो वेति निर्व्यापारं जगत् भवेत्। तस्मात् क्षण-
क्षणोऽपि बाह्याभ्यन्तरक्षणस्य वस्तुनः परस्परव्यावृत्तपरमाणुरूपस्य कथञ्चिदनुवृत्तिरनुभ-

[illegible]

गन्तव्या, अन्यथा प्रतिभासविरतिप्रसक्तेः। तदभ्युपगमे च परस्परव्यावृत्तयोर्हेतु-फलयोरपि प्रत्यक्ष[illegible]
गता अनुगतिरभ्युपगमनीयैव, कल्पनाज्ञाने भ्रान्तसंविदि वा स्वसंवेदनापेक्षया विकल्पेतरयोर[illegible]
न्तेतरयोश्च परस्परव्यावृत्तयोराकारयोः कथञ्चिद् अनुवृत्तिमभ्युपगच्छन् कथमयमेषां हेतु-फलयो[illegible]
रनुवृत्तिं प्रतिक्षिपेत्? संशयज्ञानं वा परस्परव्यावृत्तोल्लेखद्वयं बिभ्रद् यथैकमभ्युपगम्यते कथं न पूर्व[illegible]
५ परक्षणप्रवृत्तमेकं हेतुफलरूपं वस्तु? शब्द-विद्युत्-प्रदीपादीनामप्युत्तरपरिणामाप्रत्यक्षत्वेऽपि तत्[illegible]
सद्भावोऽभ्युपगन्तव्यः, पारिमाण्डल्यादिवत् संविज्ञाद्याकारविवेकवद् वा अप्रत्यक्षस्यापि केनचि[illegible]
रूपेण परोक्षता, अविरोधात्। न च पारिमाण्डल्यादेः प्रत्यक्षतेति वाच्यम्, शब्दाद्युत्तरपरिणामेऽप्येव[illegible]
वक्तुं शक्यत्वात् विशेषाभावात्। अत एव अन्ते क्षयदर्शनात् प्रागपि तत्प्रसक्तिरिति न वक्तव्यम्[illegible]
मध्ये स्थितिदर्शनस्य पूर्वापरकोटिस्थितिसाधकत्वेन प्रसिद्धेः। न हि शब्दादेरनुपादाना समुत्पत्ति[illegible]
१० क्तिमती, नापि निरन्वया सन्ततिविच्छित्तिः, चरमक्षणस्याकिञ्चित्करत्वेऽवस्तुत्वापत्तितः पूर्वपूर्व[illegible]
क्षणानामपि तदापत्तितः सकलसन्तत्यभावप्रसक्तेः। न च शब्दादेर्निरुपादानोत्पत्तिरभ्युपगमेऽन्ये[illegible]
षामपि सा सोपादानाऽभ्युपगन्तुं युक्ता। तथा च सुतमबुद्धबुद्धेरपि निरुपादानोत्पत्तिप्रसक्ति[illegible]
तत्रापि शब्दादेरिव प्रागुपादानादर्शनात्। न चानुमीयमानमत्रोपादानम्, शब्दादावपि तथाप्र[illegible]
ङ्गात्। न च 'दृष्टन्यायस्यारिलो गुणो दृष्ट एव' इति परिणामसाधनं निरवकाशम्, दृष्टेऽप्य[illegible]
१५ पारिमाण्डल्यादेर्मोहाद्याकारविवेकादेर्वा अंशस्यादृष्टत्वेनानुमीयमानत्वात्, एवं च परिणामसाध[illegible]
निरवद्यमेव। यदि हि दृष्टस्याऽदृष्टोऽशः सम्भवति कथमुत्पन्नसमावस्थानुत्पन्नः कल्पनाऽऽत्मा [illegible]
सम्भवी? समासभेदस्य भावभेदसाधनं प्रत्यनैकान्तिकत्वेन प्रदर्शितत्वात्। तस्मात् यदेव प[illegible]
भवं तदेव नश्यति नङ्क्ष्यति च, यदुत्पन्नं तदेवोत्पद्यते उत्पत्स्यते च कथञ्चित्, यदेव स्थितं तदे[illegible]
तिष्ठति स्थास्यति च कथञ्चिदित्यादि सर्वमुपपन्नमिति भावस्योत्पादः स्थितिविनाशरूपः विनाशोऽपि
२० [illegible]रूपः स्थितिरपि विगमोत्पादात्मिका कथञ्चिदभ्युपगन्तव्या।

सर्वात्मना चोत्पादादेः परस्परं तद्वतश्च यद्यभेदैकान्तो भवेत् नोत्पादादित्रयं स्यादिति [illegible]
[illegible] कुतश्चित् तद्वत्ता नाम। न च [illegible] तद्वत्ता युक्ता [illegible]
[illegible]। नानुत्पादादेरपि तत्त्वप्रसक्तेः। न चोत्पादादेः परस्परतः तद्वतश्च भेदैकान्तः [illegible]
[illegible] । एतेन 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययोगाद् यदि अनन्तं [illegible]
२५ [illegible] तयोरुत्पाद-व्यय-ध्रौव्याणामपि [illegible]
[illegible] भविष्यतीति व्यर्थमुत्पादादिकल्पनम् [illegible]
[illegible]' इत्यादि यदुक्तम् तन्निरस्तं द्रष्टव्यम् एकान्तभेदाभेदयोः [illegible]
[illegible] । यदि भिन्नोत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययोगात् [illegible]
[illegible] किन्तु 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययोगात्मकमेव सत्' इत्यभ्युपगमः। विरोधादिकं चात्र [illegible]
३० [illegible], सर्ववस्तुनस्त्रयात्मकस्याबाधितप्रत्यक्षप्रतिपत्तिविषयत्वात् [illegible]
[illegible]। एकान्तनित्यानित्यस्य प्रमाणबाधितत्वात् अनुपपत्तेः [illegible]
[illegible] परिणामात् कथञ्चित् नित्यानित्यं वस्तु अबाधितप्रमाणगोचरम्
[illegible]म्।

अत एव "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्" [तत्त्वार्थ० अ० ५ सू० २९.] इति सल्लक्षणं,
३५ [illegible]। न तावत् [illegible], [illegible]
[illegible]। [illegible], [illegible]
[illegible]। [illegible]
[illegible]
[illegible]। [illegible]
४० [illegible]। [illegible]
[illegible]। [illegible]

[illegible]

स्यामर्थक्रियाविरोधात् ततो निवर्तमानं सत्त्वं निरन्वयविनश्वरस्वभावमिति सद् [illegible]
प्रमाणम्, क्षणिकेऽपि तथैवार्थक्रियाविरोधात्। तथाहि–क्षणिकत्वे कार्यकारण[illegible]
कार्यकारणभावव्यवस्था? क्रमोत्पादे हेतोरसतः कुतः फल[illegible]? निरन्वयविन[illegible]
क्षानन्तरं विनष्टस्य चिरतरविनष्टस्य च विनष्टत्वाविशेषाच्चिरतरविनष्टस्यापि [illegible]।
भावस्य हि विद्यमानत्वात् अनन्तरकार्योत्पादनसामर्थ्यं न [illegible]
विशेषो युक्तः न पुनरभावस्य, निःस्वभावत्वाविशेषात्। अनेकान्तवादिना हि [illegible]
हेतु-फलयोर्द्वयस्यापयितुं शक्यौ संवेदनस्य ग्राह्यग्राहकाकारयोरिव। भेदाऽभेदै[illegible]
न विशेषमासादयत इति न निरन्वयविनाशव्यवस्था [illegible] वा कर्तुं [illegible]
क्षणिकपक्षेऽपि सत्ताव्यतिरेकेण भवतार्थक्रिया सम्भवति सा [illegible]। [illegible]
क्षणिकस्य स्वसत्ताकाले कुर्वतोऽपि कार्यं स्वत एव न भवति, भावे वा [illegible]
कार्यकारणव्यवस्था नापि सन्तानव्यवस्था भवेत् किन्तु कार्यस्य [illegible]
येऽपि द्वितीय एव क्षणे भावः तथा [illegible]
भवेत् कार्यं सकालनियतमेव भविष्यतीति समाने [illegible]। न चास्ति [illegible]
भवतीत्यत्र निबन्धनं किञ्चिदस्ति येनाक्षणिकात् कार्योत्पत्तिर्न भवेत्। यदि [illegible]
त्पत्तिक्षणे स्थितिः कार्योत्पत्तिनतिबन्धहेतुः एवं क्षणिकत्वेऽपि तदा [illegible]
भवेत्? यदि च कारणविनाशे कार्योत्पत्तिः, स भाविव निरन्तरविनष्टे [illegible]
त्पत्तिः स्यात्। अथ कार्योत्पत्तिकाले नैव कारणस्य [illegible]
काले नैव कश्चिदुपयोगः, यतः कारणसद्भावे कार्यं भवेत्। [illegible]
प्राक् पश्चादपि कालान्तरेऽस्त्येवेति सर्वदा कार्योत्पत्ति[illegible]। [illegible]
नियमात्रं कार्योत्पत्तावुपयोगः तेषां कारणानि[illegible]
क्षणिकेऽप्यविरोधात्। तथाहि–यद् यदा यत्र [illegible]
वस्थिपति कल्पनायां न काचित् क्षतिः। न च [illegible]
न किञ्चित् कारणाभिमतभावेन तस्य कृतमिति न तत् [illegible]
क्षणिकपक्षेऽप्यस्य समानत्वात्। तस्मात् कथञ्चिद् [illegible]
यथादर्शनं हेतुफलभावव्यवस्थितेः परिणामसिद्धिः [illegible]।

न चाभेदबुद्धिर्भ्रान्ता, भेदबुद्धावपि [illegible]
मिथ्याबुद्धीनामपि विसंवादो भावत्वे, [illegible]
क्षत्वे क्रम-यौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात् [illegible]
गच्छेत्। अन्यथा सत्वादेर्हेतोर्विपक्षव्यावृत्ति[illegible]
क्रियाविरोधः क्षणिकत्वेऽर्थक्रियोपल[illegible]
विरोधादेव क्षणिके [illegible]
र्थतिरेकसिद्ध[illegible]
कनिश्चयात् [illegible]
तायमुपलम्भनियमाभावात् [illegible]
क्षणोत्तर [illegible]
तस्या भप्रयोगात्। न हि [illegible]
मानमनुपलभ्यमानं वा [illegible]
रेव सादरम्, [illegible]

१ कर्तुं युक्ता [illegible]
[illegible]

यस्तु अबाधितप्रतिपत्तिजन्मनो हेतुरभ्युपगन्तव्यम्, अभ्रान्तप्रतिपत्तेर्वस्तु[illegible] नियतव्यवहारोच्छेदप्रसक्तेः। अत एव उपलब्धमपि क्षणिकत्वं विपक्ष इव न [illegible] रणमन्यसिद्धम्, यथावस्तूपलम्भनियमाभावात्।

यदपि 'ये यद्भावं प्रत्यनपेक्षास्ते तद्भावनियताः, यथा अन्त्या कारणसामग्री [illegible] विनाशं प्रत्यनपेक्षश्च भावः' इत्यभिधानम्, तदपि परिणामप्रसाधकम्। [illegible] नपेक्षतया तद्भावनियतत्वोपपत्तेः। पूर्वक्षणस्य स्वयमेवोत्तरीभवतोऽपरापेक्षाऽभावात् [illegible], उत्पन्नस्य चोत्पत्ति-स्थिति-विनाशेषु कारणान्तरानपेक्षस्य पुनः पुनरुत्पत्ति-स्थिति-[illegible] मवश्यं भावि तदेवं कस्यचिदंशस्य पदार्थाध्यक्षतायामन्यनिर्णये तस्य [illegible] नोत्पन्नस्यांशान्तरेण पुनः पुनरुत्पत्तिं नाभ्युपगच्छेत् येनैकं वस्त्वनन्तपर्यायं [illegible] न्तसाधने उदाहरणमपि किञ्चिदस्ति, अध्यक्षाधिगतमनेकान्तमन्तरेणान्तर्बहिश्च [illegible]। न च निरन्वयविनाशमन्तरेण किञ्चिद् वस्तु अनुपपद्यमानं संवेद्यते, यतो [illegible] अध्यक्षप्रवर्तितमनेकान्तमन्तर्विकल्पाविकल्पस्वरूपं संशय-विपर्यासस्वभावं वा [illegible] मपहाय निरन्वयक्षणक्षयलक्षणं वस्तु प्रकल्पेत। न चानुवृत्तिव्यतिरेकेण [illegible] मात्रोऽपि युक्तिमत्त्वतः आस्तां स्मृति-प्रत्यभिज्ञा-वासना-सन्तानादिव्यवहारः। [illegible] भेदेऽपि कथञ्चित् तत्तादात्म्यमन्तरेण भेदानामयं नियमः सिद्धिमासादयति [illegible], अन्यथा [illegible] [illegible] तादात्म्याभावप्रसक्तिर्भवेत् यतः शक्यमनात्मैवं [illegible] [illegible] निमित्तमन्तरेण प्रतिक्षणं विविक्तोदयशीलेन रूपेणेति। एवं च—

"अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः।
[illegible]भेदवानिव लक्ष्यते॥" [ ]

[illegible] स्यात्। परेणापि चैवं वक्तुं शक्यत एव—

"[illegible]विभागोऽप्यविद्यावि[illegible]।
[illegible]विभागैर्भेदवानिव लक्ष्यते॥" इति।

[illegible]

[illegible]

ण य तइओ अत्थि णओ ण य सम्मत्तं ण तेसु पडिपुण्णं।
जेण दुवे एगन्ता विभज्जमाणा अणेगन्तो ॥ १४ ॥

न च तृतीयः परस्परसापेक्षोभयग्राही अस्ति नयः कश्चित् तथाभूतार्थस्यानेका[illegible] त्मकत्वात् तद्ग्राहिणः प्रत्ययस्य नयात्मकत्वानुपपत्तेः। न च सम्यक्त्वं न तयोः प्रति[illegible] ५ प्रतिषेधद्वयेन प्रकृतार्थावगतेः। अतोऽयं हि प्रामाण्यं सापेक्षं गृह्यमाणयोरनयोरे[illegible] नययोर्व्यवस्थितं येन द्वावपि एकान्तरूपतया व्यवस्थितौ मिथ्यात्वनिबन्धनम् [illegible] य-व्यतिरेकौ विशेषेण परस्परात्यागरूपेण भज्यमानौ गृह्यमाणावनेकान्तो भवतीति [illegible] कत्वहेतुत्वमेतयोरिति ॥ १४ ॥

[निरपेक्षग्राहित्वे मूलनयवदुत्तरनयानामपि मिथ्यात्ववर्णनम्]

१० एवं सापेक्षद्वयग्राहिणो नयत्वानुपपत्तेस्तृतीयनयाभावः प्रदर्शितः, निरपेक्षग्राहिणां तु मिथ्या[illegible] दर्शयितुमाह—

जह एए तह अण्णे पत्तेयं दुण्णया णया सव्वे।
हंदि हु मूलणयाणं पण्णवणे वावडा ते वि ॥ १५ ॥

यथा एतौ निरपेक्षग्राहिणौ मूलनयौ मिथ्यात्वौ तथा उभयवादरूपेण [illegible]
१५ [illegible] मिथ्यात्वनिबन्धनस्य [illegible] प्रत्येकम् [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
२० [illegible] ॥ १५ ॥

[[illegible] प्रदर्शनम्]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

२५ सव्वणयसमूहम्मि वि णत्थि णओ उभयवायपण्णवओ।
मूलणयाण उ आणं पत्तेय विसेसियं बिंति ॥ १६ ॥

[illegible] नास्ति कश्चित् नयः उभयवादप्रज्ञापकः। [illegible]
[illegible]
[illegible]
३० [illegible] ॥ १६ ॥

[illegible]

[नित्यानित्यैकान्तपक्षद्वयेऽप्यात्मनि संसारसुख-दुःखादेरनुपपत्तिप्रदर्शनम्]

न केवलं बाह्यघटादिवस्तु उभयात्मकं तथाविधप्रमाणग्राह्यत्वात् किन्त्वान्तरमपि हर्ष-शोक-भय-करुणौदासीन्याद्यनेकाकारविवर्त्तात्मकैकचेतनास्वरूपम् तदात्मकहर्षाद्यनेकविकारानेकात्मकं च स्वसंवेदनाध्यक्षप्रतीतम् तस्य भेदाभेदैकान्तैकरूपताभ्युपगमे दृष्टाऽदृष्टविषयसुखदुःखसाधनस्वीकार-त्यागार्थप्रवृत्ति-निवृत्तिस्वरूपसकलव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिरिति प्रतिपादयितुमाह— ५

ण य दव्वट्ठियपक्खे संसारो णेव पज्जवणयस्स ।
सासय-वियत्तिवायी जम्हा उच्छेअवाईआ ॥ १७ ॥

द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयद्वयाभिमते वस्तुनि न संसारः सम्भवति, शाश्वत-व्यक्तिप्रतिक्षणान्यत्वैकान्तात्मकचैतन्यग्राहकविषयीकृतत्वात् पावकज्ञानविषयीकृते उदकवत् । तथाहि—संसारः संसृतिः सा चैकान्तनित्यस्य पूर्वावस्थाऽपरित्यागे सति न सम्भवति तत्परित्यागे १० नैव-गतेः भावान्तरापत्तेर्वा—संसृतेः सम्भवात् । नाप्युच्छेदे उत्पत्त्यनन्तरनिरन्वयध्वंसलक्षणे संसृतिः सम्भवति गतेः भावान्तरापत्तेर्वा कथञ्चिद् अन्वयिरूपमन्तरेण अयोगात् । अथैकस्य पूर्वाऽपर-शरीराभ्यां वियोग-योगौ संसारः असावपि सदा अविकारिणि न सम्भवति, नित्यस्य पूर्वाऽपर-शरीराभ्यां वियोग-योगानुपपत्तेः । निरन्वयक्षणध्वंसिनोऽप्येकाधिकरणत्वासम्भवात् न तल्लक्षणः संसारः । न च अमूर्त्तस्यात्मनः असर्वगतैकमनोऽभिव्यक्तशरीरेण विशिष्टवियोग-योगौ संसारः मन- १५ सोऽकर्तृत्वेन शरीरसम्बन्धस्यानुपपत्तेः । यो ह्यदृष्टस्य विधाता स तन्निर्वर्तितशरीरेण सह सम्बध्यते, न चैवं मनः, न च मनसः शरीरसम्बन्धेऽपि तत्कृतसुख-दुःखोपभोक्तृत्वम् आत्मनि तस्याभ्युपगमात् तदर्थं च शरीरसम्बन्धोऽभ्युपगम्यत इति तत्सम्बन्धपरिकल्पनं मनसो व्यर्थम् मनसि सुख-दुःखो-पभोक्तृत्वाभ्युपगमे वा आत्मकल्पनावैयर्थ्यम् मनस आत्मत्वसिद्धेः ॥ १७ ॥

तथा— २०

सुह-दुक्खसम्पओगो ण जुज्जए णिच्चवायपक्खम्मि ।
एगंतुच्छेयम्मि य सुह-दुक्खवियप्पणमजुत्तं ॥ १८ ॥

सुखेन अबाधास्वरूपेण, दुःखेन बाधनालक्षणेन, सम्प्रयोगः सम्बन्धः न युज्यते न घटते आत्मनो नित्यवादपक्षे द्रव्यास्तिकाभ्युपगमे सुखस्वभावस्य अविचलितरूपत्वात् सदा सुखरूपतैव आत्मनः न दुःखसम्प्रयोगः दुःखस्वभावत्वे तद्रूपतैव तस्यादेव । एकान्तोच्छेदे च २५ पर्यायास्तिकपक्षे सुख-दुःखसम्प्रयोगो न युज्यत इति सम्बन्धः । तथा पक्षद्वयेऽपि सुखार्थम् दुःखवियोगार्थं च विशिष्टं कल्पनं यतनम्—'कल्पतेः' अत्र यतनार्थत्वात्—अयुक्तम् अघटमानकम् सुख-दुःखोपादानत्यागार्थप्रयत्नस्याप्ययुक्तत्वमुक्तन्यायात् ।

"संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम् ।" [साङ्ख्यका० ४०] ३०
इति साङ्ख्यमतमपि निरस्तम् न्यायस्य सर्वैकान्तसाधारणत्वात् ॥ १८ ॥

१-भयात्मकस्तथा—बृ० वा० बा० । २ णेय य—बृ० ल० बा० बा० ।
"नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते । प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम्" ॥ ३७ ॥
"प्रमाण-कारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत् । ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद् बहिः" ॥ ३८ ॥
"प्रमाण-कारकैर्व्यक्तं ... । ... नित्यत्वैकान्तबाधिनी" ॥ ३९ ॥
"यदि सत् सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति । परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी" ॥ ४० ॥
"पुण्य-पापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभाव: फलं कुत: । बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायक:" ॥ ४१ ॥
"क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसम्भव: । प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भ: कुत: फलम्" ॥
—आप्तमीमां० पृ० २२-२२ परि० १ । अष्टस० पृ० १०८-१६१ । ...-सिद्धेः सुद—भा० पु० दि० । ...
[illegible]-तिः स्व धे—आ० ४ विवर्तित—भ० । ५ दृष्टस्य आ० । ६-सिद्धेः सुद—आ० पु० दि० ।
[illegible]—आ० । ८ "अहंकारादिभिः"—मां० टि० ।

ण य तइओ अत्थि णओ ण य सम्मत्तं ण तेसु पडिपुण्णं ।
जेण दुवे एगन्ता विभज्जमाणा अणेगन्तो ॥ १४ ॥

न च तृतीयः परस्परसापेक्षोभयग्राही अस्ति नयः कश्चित् तथाभूतार्थस्यानेक-
त्मकत्वात् तद्ग्राहिणः प्रत्ययस्य नयात्मकत्वानुपपत्तेः । न च सम्यक्त्वं न तयोः प्रति-
५ प्रतिषेधद्वयेन प्रकृतार्थावगतेः । अदोषं हि प्रामाण्यं सापेक्षं गृह्यमाणयोरनयो-
पययोर्व्यवस्थितं येन द्वावपि एकान्तरूपतया व्यवस्थितौ मिथ्यात्वनिबन्धनम् तत्परित्यागेन
य-व्यतिरेकौ विशेषेण परस्परात्यागरूपेण भज्यमानौ गृह्यमाणावनेकान्तो भवतीति
क्त्वहेतुत्वमेतयोरिति ॥ १४ ॥

[निरपेक्षग्राहित्वे मूलनयवदुत्तरनयानामपि मिथ्यात्ववर्णनम्]

१० एवं सापेक्षद्वयग्राहिणो नयत्वानुपपत्तेस्तृतीयनयाभावः प्रदर्शितः, निरपेक्षग्राहिणां तु मिथ्या-
दर्शयितुमाह—

जह एए तह अण्णे पत्तेयं दुण्णया णया सव्वे ।
हंदि हु मूलणयाणं पण्णवणे वावडा ते वि ॥ १५ ॥

यथा एतौ निरपेक्षद्वयग्राहिणौ मूलनयौ मिथ्यादृष्टी तथा उभयवादरूपेण व्यवस्थि-
१५ मपि परस्परनिरपेक्षत्वस्य मिथ्यात्वनिबन्धनस्य तुल्यत्वात् प्रत्येकम् इतरानपेक्षा अन्ये
दुर्नयाः न च प्रकृतनयद्वयव्यतिरिक्तनयान्तरारब्धत्वादुभयवादस्य नयानामपि यत्किञ्चिदन्य
पयितुमशक्यत्वात् तद्रूपस्यान्ये सम्यक्प्रत्यया भविष्यन्तीति वक्तव्यम्, यतः हंदि इत्येवं
हुः इति हेतौ मूलनयद्वयपरिच्छिन्नवस्तुन्येव व्यापृतास्तेऽपि तद्विषयव्यतिरिक्तविषया-
भावात् सर्वनयवादानां च सामान्यविशेषोभयैकान्तविषयत्वात् । तन्न नयान्तरसद्भावः यतः
२० रब्धोभयवादे नयान्तरं भवेत् ॥ १५ ॥

[सङ्ग्रहादीनां मूलनयग्राह्यग्राहित्वान्नोभयवादप्रज्ञापकत्वमिति प्रदर्शनम्]

ननु सङ्ग्रहादिनयसद्भावात् कथं तद्व्यतिरिक्तनयान्तराभावः ? सत्यम्, सन्ति सङ्ग्रहादयः
तद्विषयव्यतिरिक्तविषयान्तराभावतस्तद्द्वितयविषयास्तेऽपि तद्दूषणेनैव दूषिताः यतो न मूल-
तच्छायास्तदवस्थाः संभवन्तीत्याह—

२५ सव्वणयसमूहम्मि वि णत्थि णओ उभयवायपण्णवओ ।
मूलणयाण उ आणं पत्तेय विसेसियं बिंति ॥ १६ ॥

संग्रहादिसकलनयसमूहेऽपि नास्ति कश्चिद् नय उभयवादप्ररूपकः यतः मू-
नयाभ्यामेव यत् प्रतिज्ञातं वस्तु तदेव आश्रित्य प्रत्येकरूपाः संग्रहादयः पूर्वपूर्वनयाधिग-
विशिष्टमंशान्तरमधिगच्छन्तीति न विषयान्तरगोचराः । अतो व्यवस्थितम् परस्परात्यागप्रवृ-
३० मान्यविशेषविषयसङ्ग्रहाद्यात्मकैकनयद्वयाधिगम्यात्मकत्वात् वस्त्वप्युभयात्मकम् ॥ १६ ॥

---

१ 'द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं गमयतः' इति परिभाषावचनं प्रसिद्धम् । २ अन्वयरूपो द्रव्यार्थिक व्यतिरेक-
पर्यायार्थिकः । ३-तुल्यभूत-वा० बा० । ४-ग्राहिणोनैव-वृ० भा०बा० आ० हा० वि० । ५-दुर्णया-
भा० मा० । ६-दस्या न-भ० त्रिना । ७ व्यापृतास्ते-वृ० स० । व्यामृतास्ते-वा० बा० । ८ स्तद्वि-
दविषया-वा० बा० । ९-यउ । वृ० । १० उ याणं आ हा० वि० । ११-यं बेंति वृ० । १२-हाप-
क-हा० वि० ।-द्वाभ्यागम-आ० । १३-कमय-वा० बा० । १४-गमात्म-वृ० स० बा० बा० आ०
बिना । १५-त्मत्वात् वा० बा० ।

[नित्यानित्यैकान्तपक्षद्वयेऽप्यात्मनि संसारसुख-दुःखादेरनुपपत्तिप्रदर्शनम्]

न केवलं बाह्यघटादिवस्तु उभयात्मकं तथाविधप्रमाणमाहात्म्यात् किन्त्वान्तरमपि हर्ष-शोक-भय-करुणौदासीन्याद्यनेकाकारविवर्त्तात्मकैकचेतनास्वरूपम् तदात्मकहर्षाद्यनेकविकारानेकात्मकं च स्वसंवेदनाध्यक्षप्रतीतम् तस्य भेदाभेदैकान्तैकरूपताभ्युपगमे इष्टाऽनिष्टविषयसुख-दुःखसाधनसंनिधान-त्यागार्थप्रवृत्ति-निवृत्तिस्वरूपसकलव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिरिति प्रतिपादयितुमाह—   ५

ण य दव्वट्ठियपक्खे संसारो णेव पज्जवणयस्स ।
सासय-वियत्तिवाची जम्हा उच्छेअवाईआ ॥ १७ ॥

द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयद्वयाभिमते वस्तुनि न संसारः सम्भवति, शाश्वत-व्यक्तिप्रतिक्षणान्वयैकान्तात्मकचैतन्यग्राहकविषयीकृतत्वात् पावकज्ञानविषयीकृते उदकवत् । तथाहि—संसारः संसृतिः सा चैकान्तनित्यस्य पूर्वावस्थाऽपरित्यागे सति न सम्भवति तत्परित्यागे १० चैव-गतेः भावान्तरापत्त्या—संसृतेः सम्भवात् । नाप्युच्छेदे उत्पत्त्यनन्तरनिरन्वयध्वंसलक्षणे संसृतिः सम्भवति गतेः भावान्तरापत्तेर्वा कथञ्चिद् अन्वयिरूपमन्तरेण अयोगात् । अथैकस्य पूर्वाऽपर-शरीराभ्यां वियोग-योगौ संसारः असावपि सदा अविकारिणि न सम्भवति, नित्यस्य पूर्वाऽपर-शरीराभ्यां वियोग-योगानुपपत्तेः । निरन्वयक्षणध्वंसिनोऽप्येकाधिकरणत्वासम्भवात् न तल्लक्षणः संसारः । न च अमूर्त्तस्यात्मनः असर्वगतैकमनोऽभिव्यक्तशरीरेण विशिष्टवियोग-योगौ संसारः मन- १५ सोऽकर्तृत्वेन शरीरसम्बन्धस्यानुपपत्तेः । यो ह्यदृष्टस्य विधाता स तन्निर्वर्तितशरीरेण सह सम्बध्यते, न चैवं मनः, न च मनसः शरीरसम्बन्धेऽपि तत्कृतसुख-दुःखोपभोक्तृत्वम् आत्मनि तस्याभ्युपगमात् तदर्थं च शरीरसम्बन्धोऽभ्युपगम्यत इति तत्सम्बन्धपरिकल्पने मनसो व्यर्थम् मनसि सुख-दुःखो-पभोक्तृत्वाभ्युपगमे वा आत्मकल्पनावैयर्थ्यम् मनस आत्मत्वसिद्धेः ॥ १७ ॥

तथा—   २०

सुह-दुक्खसम्पओगो ण जुज्जए णिच्चवायपक्खम्मि ।
एगंतुच्छेयम्मि य सुह-दुक्खवियप्पणमजुत्तं ॥ १८ ॥

सुखेन अबाधास्वरूपेण, दुःखेन बाधनालक्षणेन, सम्प्रयोगः सम्बन्धः न युज्यते न घटते आत्मनो नित्यवादपक्षे द्रव्यास्तिकाभ्युपगमे सुखस्वभावस्य अविचलितरूपत्वात् सदा सुखरूपतैव आत्मनः न दुःखसम्प्रयोगः दुःखस्वभावत्वे तद्रूपतैव तत्त्वादेव । एकान्तोच्छेदे च २५ पर्यायास्तिकपक्षे सुख-दुःखसम्प्रयोगो न युज्यत इति सम्बन्धः । तथा पक्षद्वयेऽपि सुखार्थम् दुःखवियोगार्थं च विशिष्टं कल्पनं यतनम्—'कल्पतेः' अत्र यतनार्थत्वात्—अयुक्तम् अघटमान-कम् सुख-दुःखोपादानत्यागार्थप्रयत्नस्याप्ययुक्तत्वमुक्तन्यायात् ।

"संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम् ।"   [साङ्ख्यका० ४०]
इति साङ्ख्यमतमपि निरस्तम् न्यायस्य सर्वैकान्तसाधारणत्वात् ॥ १८ ॥   ३०

१-भयात्मकस्तथा-बृ० बा० वा० । २ चेव य-बृ० ल० बा० वा० ।
"नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते । प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम्" ॥ ३७ ॥
"प्रमाण-कारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत् । ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद् बहिः" ॥ ३८ ॥
"यदि सत् सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति । परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी" ॥ ३९ ॥
"पुण्य-पापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः । बन्ध-मोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः" ॥ ४० ॥
"क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसंभवः । प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम्" ॥ ४१ ॥
—आप्तमी० पृ० ११-२१ पद्य० ३ । अष्टश० पृ० १०८-१४९ ।
३-तिः सा च-भा० ४-विपर्ययित-स० । ५ सम्बन्धस्य-भा० । ६-सिद्धेः सुह-भा० पु० वि० । ७-दिट्ठ का-भा० । ८ "भावैरधिवा."-सां० टि० ।

[एकान्तपक्षे चात्मनि कर्मणो बन्ध-स्थितिकारणानुपपत्तिप्रकटनम्]

एकान्तपक्षे आत्मसुख-दुःखोपभोग-निर्वर्त्तकशरीरसम्बन्धहेत्वदृष्टोत्पादकनिमित्तानामसम्भवं दर्शयन्नाह—

कम्मं जोगनिमित्तं बज्झइ बन्ध-ट्ठिई कसायवसा।
५ अपरिणउच्छिण्णेसु य बंधट्ठिइकारणं णत्थि ॥ १९ ॥

कर्म अदृष्टम्, योगनिमित्तं मनो-वाक्-कायव्यापारनिमित्तम्, बध्यते आदीयते, बध्यत इति बन्धः अदृष्टमेव तस्य स्थितिः कालान्तरफलदातृत्वेन आत्मन्यवस्थानम् सा कषायवशात् क्रोधादिसामर्थ्यात् एतदुभयमपि एकान्तवाद्यभ्युपगते आत्मचैतन्यलक्षणे भावे अपरिणते उत्सन्ने च बन्धस्थितिकारणं नास्ति। न ह्यपरिणामिनि अत्यन्ताऽनाधेया-
१० तिशये आत्मनि क्रोधादयः सम्भवन्ति, नाप्येकान्तोत्सन्ने अनुसन्धानविकले 'अहमनेनाऽऽक्रुष्टः' इति द्वेषसम्भवः तथा च 'अन्य आक्रुष्टः अन्यो रुष्टः' 'अन्यो[1] व्यापृतः अपरो बद्धः अपरश्च मुक्तः' इति कुशलाकुशलकर्मगोचरप्रवृत्त्याद्यारम्भवैफल्यप्रसक्तिः। न चैकसन्ततिनिमित्तोऽयं व्यवहारः, क्षणिकैकान्तपक्षे सन्ततिकल्पनाबीजभूतोपादानोपादेयभावस्यैव अघटमानत्वात्। न चेयमनुसन्धानप्रतिपत्तिर्मिथ्या, द्वेष गर्व-शाठ्याऽसन्तोषादीनामन्योन्यविरुद्धस्वभावानां क्रमविवर्त्तिनां चिद्विवर्त्तानां
१५ स्वसंवेदनाध्यक्षसिद्धानाम् तथा तथाऽनुभवितुश्च[2] संशय-विपर्यासाऽदृढज्ञानागोचरीकृतस्यैकस्य चैतन्यस्यानुभवात्। न च बाधारहितानुभवविषयस्यापह्नवः सुखादेरप्यनुभवविषयस्यापह्नुतिप्रसङ्गात् तथा च प्रमाणप्रमेयादिव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिः। यदपि—

"मिथ्याऽध्यारोपहानार्थं यत्नोऽसत्यपि मोक्तरि" [ ]

इत्युक्तम्, तदप्यनेनैव प्रतिविहितम्, यथोक्तप्रतिपत्तेर्मिथ्यात्वासिद्धेः। न चानुमाननिश्चितेऽर्थे[3]
२० आरोपबुद्धेरुत्पत्तिर्धूमनिश्चयावगतधूमध्वज इव, न च मिथ्याज्ञानस्य सहजत्वात् विपरीतार्थोपस्था[4]पकानुमानप्रवृत्तावपि न निवृत्तिः तथाभ्युपगमे बोधसन्तानवत् तस्य सर्वदाऽनिवृत्तिरित्यमुक्ति[5]प्रसक्तिः असहजं तु तत्त्वज्ञानप्रादुर्भावेऽवश्यं निवर्त्तते शुक्तिकावगमे रजतभ्रम इव अनिवृत्तौ वा न प्रमाणमप्रमाणबाधकं भवेत्[6]। न च क्षणक्षयनिश्चये 'स एवाहम्' इति प्रत्ययो युक्तः अपि तु 'स इव'[7] इति स्यात्, नहि गवयनिश्चये 'गौरेव' इति प्रत्ययो दृष्टः अपि तु 'गौरिव' इति। न च कमर्ष-
२५ र्षिष्वभिष्वङ्ग-द्वेषादिपर्यायेषु चैतन्यानुस्यूतिप्रत्ययस्य मानसत्वमात्मनि क्षणक्षयमनुमानाद् निश्चिन्वतोऽपि तदैव स्पष्टमनुभूयमानत्वाद् विकल्पद्वयस्य युगपदुत्पत्तिः परैर्नेष्टेति[8] विकल्परूपत्वे एकत्वप्रत्ययस्य[9] क्षणिकत्वनिश्चयसमये सद्भावो न भवेत् इत्येकान्तनित्याऽनित्यव्युदासेनोभयपक्ष एव बन्धस्थितिकारणं[10] युक्तिसङ्गतम् ॥ १९ ॥

[एकान्तवादे बन्धाऽभावेन तन्मूलकसंसारनिवृत्त्यादेरनुपपत्तिप्रकाशनम्]

३० किञ्च, एकान्तवादिनां संसारनिर्वृत्ति-तत्सुखमुक्तिप्राप्त्यर्थां प्रवृत्तिरसङ्गतेत्याह[11]—

---

१ अन्यो व्यापृतः वा० बा० भा०। अन्यो वावृतः वृ०। २ तथाऽनु-आ० हा०। ३-निश्चितार्थे भा-मा०। -निश्चितर्थे आ-हा०। ४-तार्थो स्था-हा०। ५-दा नि-वा० बा०। ६-दुर्भावो-हा०। -दुर्भावे ब्र० मां० वहिः। ७ स एव मां० मां० विना। ८-परैष्य-मां०। -वर्तिष्य-ब्र० ब्रां० वहिः। ९-स्य च यु-वृ० वा० बा०। १०-कारणं ब्र-वृ० वा० बा०। ११-निवृत्तिवत्सुख-वा० बा०। -निर्वृत्तिवत्सुख-वृ०। -निवृत्तिवत्सुख-ब्र० मां० वहिः०।

बंधम्मि अपूरन्ते संसारभओघदंसणं मोज्झं ।
बन्धं व विणा मोक्खसुहपत्थणा णत्थि मोक्खो य ॥ २० ॥

बन्धे ऽसत्यपि संसारो जन्म-मरणादिप्रपञ्चस्तत्कारणे वा मिथ्यात्वाद्युपादानम् [illegible] भयौघो भीतिप्राचुर्यं तस्य दर्शनम् 'सर्वं चतुर्गतिपर्यटनं दुःखात्मकम्' इति पर्यालोचनं मौढ्यं मूढता अनुपपद्यमानत्वात् [illegible] मिथ्याज्ञानं [illegible] [illegible] मिथ्याज्ञानपूर्विका च प्रवृत्तिर्निवृत्तिरेव, बन्धेन विना संसारनिवृत्ति-मोक्षसुखप्रार्थना च न भवत्येव तथा मोक्षश्चानुपपन्नः [illegible] [illegible], बन्धाभावश्च योग-कषाययोः प्रकृति-स्थिति-अनुभाग-प्रदेश[illegible] [illegible] विरुद्धत्वात् । न [illegible] [illegible] न [illegible], [illegible] [illegible] प्रतिपत्तेः । न च [illegible] अविद्या[illegible] [illegible] [illegible], अविरोधे [illegible] । [illegible] इति न पुनः प्रतन्यते ॥ २० ॥

[सर्वेषामपि नयानामन्योऽन्यानिश्रितत्वे मिथ्यात्वम् अन्योन्यनिश्रितत्वे पुनः सम्यक्त्वमिति प्रतिपादनम्]

[illegible] इति [illegible] —

तम्हा सव्वे वि णया मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा ।
अण्णोण्णणिस्सिआ उण हवंति सम्मत्तसब्भावा ॥ २१ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मनवृत्तेः । न च प्रत्येकमसम्यक्त्वे समुदायेऽपि सम्यक्त्वं युक्तम् सिकतासु तैलवत्, असतः सदुत्पत्तेः सतो वा असदुत्पत्तेर्विरोधाच्च ।

अत्राभिधीयते-प्रत्येकमन्यापेक्षितेतरांशस्वविषयग्राहकतयैव सन्तो नयाः तद्व्यतिरिक्तरूपतया त्वसन्त इति सतां तत्समुदाये सम्यक्त्वे न कश्चिद् दोषः, नन्वितरेतरविषयाऽपरित्यागवृत्तीनां ५ ज्ञानानां कथं समुदायः सम्यग्मयी येन तत्र सम्यक्त्वमभ्युपगम्येत? अनुक्तोपालम्भ एषः; न ह्येकाऽनेकज्ञानोत्पादस्तेषां समुदायो विवक्षितः अपि स्वपरविषयैकेतररूपविषयाध्यवसाय एव समुदायः । अन्योन्यनिश्रिताः इत्यनेनाप्ययमेवार्थः प्रतिपादितः । नहि द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकाभ्यामन्यत्पृथग्भूतान्यानतु निरवयवसंयोगवदुभयग्राह्योऽपरः समस्ति, ननु यदि प्रमाणं नयाः "प्रमाणनयैरधिगमः" [तत्त्वार्थ० अ० १ सू० ६] इति प्रमाण-नयभेदकल्पनावैयर्थ्यप्रसक्तिः अथ अप्रमाणम् १० तदाऽनधिगमानुपपत्तिः तत्पृथग्भूतस्यापरस्यासंवेदनात् प्रमाणाभावप्रसक्तिश्च, असदेतत् । यतः प्रमाणं नैताः भवन्ति इतररूपसापेक्षं स्वविषयं परिच्छिन्दन्तीति नया इति व्युत्पत्तेः । न चाविसंवादकाः नयास्तेऽसत्यर्थत्वेन ज्ञानार्थत्वात् ज्ञानस्य च परिच्छेदात्मकत्वात् । न च परिच्छेदकत्वेऽपि प्रमाणता, [illegible]नेकान्तवस्तुग्राहकत्वेन 'प्रदेशं मानं प्रमाणम्' 'इतरांशाप्रतिक्षेपी नयः' इति [illegible] । न चानेकान्तात्मकवस्तुग्राहिणो नया न भवन्ति, १५ प्रत्येकं [illegible]त्वात् तेषाम् तद्व्यतिरिक्तस्य वाच्यस्य तद्विषयस्याननुभवात् । प्रमाणाभावोऽपि न, [illegible] कश्चित् तद्व्यतिरिक्तस्य प्रमाणत्वेनानुभवविरहात् [illegible] [illegible] तेन प्रतीतेः । न च संशयादिज्ञानेष्वात्मनः प्रमाणत्वेऽतिप्रसङ्गः, प्रतीयतेऽनेन [illegible] वा प्रमाणमिति 'प्र'शब्देन तस्य निरस्तत्वात् । न चात्मनः कर्तृत्वात् करण[illegible], [illegible]-ज्ञानात्मकस्य तस्यानेकरूपत्वेन कर्तृकरणभावाविरोधात् । २० [illegible] प्रत्येकं मिथ्यात्वेऽपि नयाः समुदिताः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यन्त इत्यत्र न समुदायोऽर्थान्तरम् [illegible] 'अन्योन्यनिश्रिताः' इत्येतद्विरुद्धम् [illegible] [illegible] 'अप्रयुक्तत्वात्' इति हेतुरसिद्धः । 'परिपूर्णवस्त्वनधिगन्तृत्वात्' [illegible] सिद्धिः [illegible] न समुदायिनो प्रयुक्तनिषेधे साध्ये । अथ [illegible] [illegible] अत्यन्ताविरोधः समुदायिव्यतिरिक्तस्यैकान्तेन समुदायस्याभावात् २५ [illegible] सिद्धसाध्यता च ॥ २१ ॥

[प्रत्येकं नयेषु मिथ्यात्वेऽपि समुदितेषु सम्यक्त्वस्य रत्नावलीदृष्टान्तेन समर्थनम्]

न च समुदायेऽपि नयाः [illegible] इति न कश्चित् [illegible], [illegible] [illegible] इत्येतदाह—

[illegible] प्रत्येकं नयेषु न सम्यक्त्वम्, तत् तेषां समुदायेऽपि न भवति, यथा [illegible] ३० [illegible] 'समुदायेऽपि न भवति' इत्यत्र दृष्टान्तमाह—

[illegible]

जहऽणेयलक्खण-इत्यादि—

> जहऽणेयलक्खणगुणा वेरुलियाई मणी विसंजुत्ता ।
> रयणावलिववएसं न लहंति महग्घमुल्ला वि ॥ २२ ॥
>
> तह णिययवायसुविणिच्छिया वि अण्णोण्णपक्खणिरवेक्खा ।
> सम्मद्दंसणसद्दं सव्वे वि णया ण पावेंति ॥ २३ ॥
>
> जह पुण ते चेव मणी जहा गुणविसेसभागपडिबद्धा ।
> 'रयणावलि'त्ति भण्णइ जहंति पाडिक्कसण्णाउ ॥ २४ ॥
>
> तह सव्वे णयवाया जहाणुरूवविणिउत्तवत्तव्वा ।
> सम्मद्दंसणसद्दं लहन्ति ण विसेससण्णाओ ॥ २५ ॥

यथा अनेकप्रकार विषविघातहेतुत्वादीनि लक्षणानि नीलत्वादयश्च गुणा येषां ते वैडूर्यादयो मणयः पृथग्भूता रत्नावलीव्यपदेशं न लभन्ते महार्घमूल्या अपि ॥२२॥

तथा प्रमाणाख्यायाम् [illegible] स्वविषयपरिच्छेदकाले वा स्वविषयपरिच्छेदकत्वेन सुनिश्चिता अपि अन्योन्यपक्षनिरपेक्षाः 'प्रमाणम्' इत्याख्यां सर्वेऽपि नया न प्राप्नुवन्ति निजं च [illegible] सुविनिश्चिता हेतुप्रदर्शनकुशला अन्योन्यपक्षनिरपेक्षत्वात् सम्यग्दर्शनशब्दं 'सुनया' इत्येवंरूपं सर्वेऽपि संग्रहादयो नया न प्राप्नुवन्ति ॥ २३ ॥

यदा पुनस्त एव मणयो यथा गुणविशेषपरिपाट्या प्रतिबद्धाः 'रत्नावलि' इति [illegible] प्रत्येकाभिधानानि च त्यजन्ति रत्नानुविद्धतया रत्नावस्थान[illegible] न रत्नानां प्रतीतिः 'रत्नावली' इति तत्र व्यपदेशो न पुनः प्रत्येकाभिधानम् ॥ २४ ॥

तथा सर्वे नयवादा यथानुरूपविनियुक्तवक्तव्या इति यथा इति वीप्सार्थे अनु इति सादृश्ये [illegible] इति [illegible] पुनरर्थाधारेण [illegible] "यथाऽसादृश्ये" [पाणि० अ० २ पा० १ सू० ७ सिद्धान्तकौ० अं० ६६१ पृ० १६६] इत्यनेन । यद् यदनुरूपं तत्र विनियुक्तं [illegible] सम्यग्दर्शनशब्दं 'प्रमाण' इत्याख्यां लभन्ते न विशेषसंज्ञाः [illegible] ॥ २५ ॥

[दृष्टान्तोपन्यासप्रयोजकानां तद्गुणानां परिगणनम्]

दृष्टान्तगुणप्रतिपादनायाह—

लोइयपरिच्छयसुहो निच्छयवयणपडिवत्तिमग्गो य।
अह पण्णवेणाविसउ त्ति तेण वीसत्थमुवणीओ ॥ २६ ॥

५ व्युत्पत्तिविकल-तनुकप्राणिसमूहसुखग्राह्यम् एकानेकात्मकभावविषयवचोऽवगमजनकत्वं च अथ इत्यवधारणार्थः अनन्तधर्मात्मकवस्तुप्ररूपकवाक्यविषयत्वं दृष्टान्तस्यैव। एतैः कारणैः शङ्काव्यवच्छेदेन अयमुपदर्शित इति गाथातात्पर्यार्थः।

न चावल्यवस्थायाः प्राग् उत्तरकालं च रत्नानां पृथगुपलम्भात् इह च सर्वदा तथोपलम्भाभावाद् विषममुदाहरणमिति वक्तव्यम्, आवल्यवस्थाया उदाहरणत्वेनोपन्यासात्। न च दृष्टान्त-दार्ष्टा-
१० न्तिकयोः सर्वथा साम्यम् तत्र तद्भावानुपपत्तेः ॥ २६ ॥

[दृष्टान्तस्य साध्यसमतां वदतामेकान्तवादिनां निरासाय पञ्चानां तदभिप्रायाणां निर्देशः]

(१) "रत्नादिकारणेष्वावल्यादिकार्यं सदेव" [ ] इति साङ्ख्यः।

(२) "तेषामेवानेन रूपेण व्यवस्थितत्वात् तद्व्यतिरिक्तं विकारमात्रं कार्यं न च" [ ] इति साङ्ख्यविशेष एव।

१५ (३-४) "न कार्यं कारणे विद्यते इति तेभ्यस्तत् पृथग्भूतम् यदि कारणमेव कार्यरूपेण व्यवतिष्ठते परिणमते वा" [ ] इति वैशेषिकादयः।

(५) "न च कार्यम् कारणं वास्ति द्रव्यमात्रमेव तत्त्वम्" [ ] इत्यपरः।

एवंभूताभिप्रायवन्त एकान्तवादिनो दृष्टान्तस्य साध्यसमतां मन्यन्ते तान् प्रत्याह—

इहरा समूहसिद्धो परिणामकओ व्व जो जहिं अत्थो।
२० ते तं च ण तं तं चेव व त्ति नियमेण मिच्छत्तं ॥ २७ ॥

इतरथा उक्तप्रकारादन्यथा समूहे रत्नानां सिद्धो निष्पन्नः परिणामकृतो वा यस्य-

---

१ "[illegible]"—बृ० स० मो० टि०।

"अथ दृष्टान्तः × × × यत्र लौकिक-परीक्षकाणां दर्शनं न व्याहन्यते"—अ० १। आ० १। सू० १ [illegible] पृ० [illegible] पं० ११।

"[illegible] लौकिक-परीक्षकाणां [illegible]"—न्याय० पृ० १५ पं० १२। [illegible] पृ० ५२ पं० ११।

"[illegible] लौकिक-परीक्षकाणां [illegible] बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः"—अ० १। आ० १। सू० २५।

× × × [illegible]"—न्याय० [illegible] पृ० [illegible] पं० १०।

[illegible] पृ० १०२ पं० ११। [illegible] पृ० २११ पं० ११।

[illegible]—

"[illegible]" ॥ ५१ ॥

—[illegible] नि० पृ० १४ [illegible]।

[illegible].—

"[illegible]" ॥

"[illegible]" ॥

"[illegible]" ॥

—[illegible]

[illegible]

दिप्रावस्थादिः क्षीरादिषु दध्यादिर्वा यो यत्र अर्थः ते मण्वादय आवस्थादि कार्यम् क्षीरं वा दध्यादिकम् तत्र सत्तसद्भावात् तस्य तत्परिणामरूपत्वात्। 'समूहसिद्धः' 'परिणामकृतो वा' इति द्वयोपादानं लौकिकव्यवहारापेक्षया। परमार्थतस्तु परमाणुसमूहपरिणामात्मकत्वात् सर्वं एव समूहकृतः परिणामकृतो वेति न भेदः।

[(१) सांख्याभिमतत्वेनोपन्यस्तस्य सत्कार्यवादस्य निरसनम्] ५

अयं चाभ्युपगमो मिथ्या। तथाहि—यद्येकान्तेन कारणे कार्यमस्ति तदा कारणस्वरूपवत्
[illegible] कारणव्यापारसाफ-
[illegible] आहोस्वित् कार्या-
[illegible] सत्वे कारकव्यापार-
वैफल्यात् असत्त्वे स्वाभ्युपगमविरोधात्। अभिव्यक्तावपि पक्षद्वयेऽप्येतदेव दूषणम्। आवरणवि-१०
नाशेऽपि न कारकव्यापारः, सतो विनाशाभावात् असतो भावस्योत्पादवत्। तत्र सत्कार्यवादे कार-
कव्यापारसाफल्यम्। न चान्धकारपिहितघटाद्यनुपलम्भे अन्धकारोपलम्भवत् कार्यावारकोपलम्भः
येन प्रतिनियतं किञ्चित् तदावारकं व्यवस्थाप्येत। न च कारणमेव कार्यावारकम् तस्य तदुपकार-
कत्वेन प्रसिद्धेः न ह्यालोकादि रूपज्ञानोपकारकं तदावारकत्वेन वक्तुं शक्यम्। किञ्च, आवारकस्य
मूर्तत्वे कारणरूपस्य न कार्यस्य तदभ्यन्तरप्रवेशः मूर्तस्य मूर्तेन प्रतिघातात् अप्रतिघाते च यथा १५
कार्यं कारणाभ्यन्तरप्रविष्टत्वात् तेन आवृतम् [illegible]
अप्रतिघातेन तदनुप्रविष्टत्वाविशेषात्। अथ [illegible]
नन्वेवमदर्शनेऽपि तस्य स्पर्शोपलम्भप्रसङ्गः तं[illegible]
पविनाशोर्थं प्रसक्तम्। न च पटादेरिव घटादिकं प्रति कारणस्य कार्याऽऽवारकत्वमिति न स्पर्शो-
पलब्धिः, पटध्वंसे इव मृत्पिण्डध्वंसे तदावृतकार्योपलब्धिप्रसङ्गात् एकाभिव्यञ्जकव्यापारादेव २०
सर्वव्यङ्ग्योपलब्धिश्च भवेत् एकप्रदीपव्यापारात् तत्सन्निधानव्यवस्थितानेकघटादिवत्। किञ्च,
कारणकाले कार्यस्य सत्त्वे स्वकाल इव कथमसौ तेनावियते? नापि मृत्पिण्डकार्यतया पटादिवत्
घटो व्यपदिश्येत, असत्त्वे च नावृतिः अविद्यमानत्वादेव। एकान्तसतः करणविरोधात् असद-
करणादिभ्यो न सत्कार्यसिद्धिः। प्रतिक्षिप्तश्च प्रागेव सत्कार्यवाद इति न पुनरुच्यते।

[(२) सांख्यविशेषमतत्वेनोपन्यस्तस्य कारणात्मकपरिणामवादस्य निरसनम्] २५

अनर्थान्तरभूतपरिणामवादोऽपि प्रतिक्षिप्त एव। न हि अर्थान्तरपरिणामाभावे परिणाम्येव कारणलक्षणोऽर्थः, पूर्वापरयोरेकत्वविरोधात्। न च परिणामाभावे परिणामिनोऽपि भावो युक्तः परिणामनिबन्धनत्वात् परिणामित्वस्य। अभिन्नस्य हि पूर्वापरावस्थाहानोपादानात्मतया एकस्य वृत्तिलक्षणः परिणामो न युक्तियुक्तः। तथैकान्ताभेदे कारणमेवानर्थान्तरकार्यरूपतया परिणमत इति स्थितम्। ३०

---

१ "यथाक्रमं योगः"–वृ० स० मां० टि०। २ "समूह."–मां० टि०। ३ परिणामः"–मां० टि०। ४ स-स्य परि–प्र० मां० बहिः। ५ "कारणव्यापार"–वृ० स० मां० टि०। ६–व्यक्तावुत वृ०। यथा 'तेऽत्र' 'कोऽत्र' इत्यादौ अकारलोपे तत्सूचकम् अवग्रहाभिधेयं चिह्नं विधीयते तथा पुरातनप्रतिषु 'व्यक्तौ उत' इत्यस्य संधौ 'व्यक्तावुत' इति लिख्यते 'वु' इत्यस्य शिरसि ० इति चिह्नम् उकारसूचकं विहितं लिपिकारैः इति प्रदर्शनार्थमयं पाठो न्यस्तः नैतद् पाठा-न्तरम्। ७ "तदनव"(त्व) इत्यपक्षद्वये–मां० टि०। ८ कारणव्या–वृ० स० मां० हा० विना। ९ "ह्याला-वारकत्वेन"–मां० टि०। १० "कार्यदर्शन"–वृ० स० मां० टि०। ११ "कारण"–मां० टि०। १२ "कार्यस्य"–मां० टि०। १३ तस्य "दर्शस्य"–मां० टि०। १४ तस्य "कार्यस्य"–मां० टि०। १५–शक्तत्वं प्र–वृ० स० बा० बा० विना। १६ "कार्यरूपो भाव."–वृ० स० टि०। "कार्यरूपोऽभाव."–मां० टि०। १७ तेन "कारणेन"–वृ० स० मां० टि०। १८–सत्कर–भा० हा०।

१९ "असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसंभवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम्॥
सांख्यकारि०" (सांख्यका० ९)–भां० मां० टि०। पृ० २८१ पं० १८।

२० पृ० २९६ पं० ८। २१–क्षण प–मां० भा० हा० वि०।

[(३) वैशेषिकाभिमतत्वेनोपन्यस्तस्यासत्कार्योत्पत्तिवादस्य निरसनम्]

मृत्पिण्डावस्थायां घटार्थक्रिया-गुणव्यपदेशाभावात् 'असदुत्पन्नं कार्यम्' इत्ययमप्येकान्तो मिथ्यावाद एव। कार्योत्पत्तिकाले कारणस्याविचलितरूपस्य कार्याद्व्यतिरिक्तस्य सत्त्वे पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गात्। तद्व्यतिरिक्तस्य तस्य सद्भावे कारणस्य प्राक्तनस्वरूपेणावस्थितत्वात् अकारणा
५ कार्योत्पत्तिर्भवेत् कारणस्य प्राक्तनोऽकारणस्वरूपापरित्यागात् परित्यागे वा कार्यकरणस्वरूपाङ्गीकारेण तस्यैवावस्थितत्वादनेकान्तसिद्धिः। व्यतिरेके च कारणात् कार्यस्य पृथगुपलम्भप्रसङ्गः। न च तदाश्रितत्वेन तस्योत्पत्तेर्न तत्प्रसङ्ग इति वक्तव्यम्, अवयविनः समवायस्य च निषेत्स्यमानत्वात् निषिद्धत्वाच्च।

[(४) बौद्धाभिमतत्वेनोपन्यस्तस्य 'कारणाद् भिन्नं कार्यं तत्रासदेव' इति वादस्य निरसनम्]

१० कारणाद् व्यतिरिक्तं तत्र असदेव कार्यमित्ययमपि पक्षो मिथ्यात्वमेव। तथाहि-एकान्ततो निवृत्ते कारणे कार्यमुत्पद्यत इत्यत्र कारणनिवृत्तिः सद्रूपा, असद्रूपा वेति वक्तव्यम्। सद्रूपत्वेऽपि न तावत् कारणस्वरूपा, कारणस्य नित्यत्वप्रसक्तेः निवृत्तिकालेऽपि कारणसद्भावात्। न चाविचलितस्वरूपमृत्पिण्डसद्भावे घटोत्पत्तिर्दृष्टेति कार्यानुत्पत्तिप्रसक्तिश्च। नापि कार्यरूपा तन्निवृत्तिः कारणानिवृत्तौ कार्यस्यैवानुत्पत्तेः। एवं च कार्यानुत्पादकत्वेन कारणस्याप्यसत्त्वमेव। न च कार्योत्पत्तिरेव कारण-
१५ निवृत्तिरिति कारणानिवृत्तेर्न कार्योत्पत्तिरिति नायं दोषः, कार्यगतोत्पादस्य कारणगतविनाशरूपत्वायोगात् भिन्नाधिकरणत्वात् कारणनिवृत्तेश्च कार्यरूपत्वे कारणं कार्यरूपेण परिणतमिति घटस्य मृत्स्वरूपवत् कपालेष्वप्युपलब्धिप्रसङ्गः। नाप्युभयरूपा तन्निवृत्तिः, कारणनिवृत्तिकाले कार्य-कारणयोर्युगपदुपलब्धिप्रसक्तेः। नाप्यनुभयस्वरूपा तन्निवृत्तिः, मृत्पिण्डविनाशकाले विवक्षितमृत्पिण्डघटव्यतिरिक्ताऽशेषजगदुत्पत्तिप्रसक्तेः। अथ असद्रूपा तन्निवृत्तिः तत्रापि यदि कारणाभावरूपा
२० तदा कारणाभावात् कार्योत्पादप्रसक्तेर्निर्हेतुकः कार्योत्पाद इति देश-कालाऽऽकारनियमः कार्यस्य न स्यात् अभावाच्च कार्योत्पत्तौ विश्वमदरिद्रं भवेत्। नापि कार्याभावरूपा तन्निवृत्तिः कार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात्। नाप्युभयाभावस्वभावा द्वयोरप्यनुपलब्धिप्रसक्तेः। नाप्यनुभयाभावरूपा विवक्षितकारण-कार्यव्यतिरेकेण सर्वस्यानुपलब्धिप्रसक्तेः कारणस्योपलब्धिप्रसक्तेश्च। कारणभावाभावरूपापि न तन्निवृत्तिः, कारणस्यानुगतव्यावृत्तताप्रसक्तेः। अत एव च सदसद्रूपं स्व-पररूपापेक्षया अनेकान्त-
२५ वादिभिर्वस्त्वभ्युपगम्यते। पररूपेणेव स्वरूपेणाप्यसत्त्वे वस्तुनो निःस्वभावताप्रसक्तेः। स्वरूपवत् पररूपेणापि सत्त्वे पररूपताप्रसक्तेः। एकरूपापेक्षयैव सदसत्त्वविरोधात् अन्यथा वस्त्वेव न भवेत्। नापि कार्यभावाभावरूपा, कार्यस्योत्पत्त्यनुत्पत्त्युभयरूपताप्रसक्तेः तथा च सिद्धसाध्यता केवलोभयपक्षोक्तदोषप्रसक्तिश्च। नापि कार्यकारणोभयभावाभावरूपा, प्रत्येकपक्षोदितसकलदोषप्रसक्तेः। परस्परसव्यपेक्षकार्यकारणभावाभावरूपकारणनिवृत्त्यभ्युपगमेऽनेकान्तवादप्रसक्तिश्च। नाप्यनुभय-
३० भावाभावरूपा अनुभयरूपस्य वस्तुनोऽभावात्। न च तन्निवृत्तेः सत्त्वम् एकान्तभावाभावयोर्विरोधात्। अनुभयभावाभावरूपत्वे तु तस्याः कारणस्याऽप्रच्युतत्वात् तथैवोपलब्धिप्रसङ्गः। अपि च, कारणनिवृत्तिस्तत्स्वरूपाद् भिन्ना, अभिन्ना वा? यद्यभिन्ना, निवृत्तिकालेऽपि कारणस्योपलब्धिप्रसङ्गः तन्निवृत्तेः कारणात्मकत्वात् स्वकालेऽपि वा कारणस्योपलब्धिर्न स्यात् तस्य तन्निवृत्तिरूपत्वात्। भिन्ना चेत् 'कारणस्य निवृत्तिः' इति सम्बन्धाभावात् अभिधानानुपपत्तिः। सङ्केतवशात्
३५ अभिधानप्रवृत्तावपि आधेयनिवृत्तिकाले अधिकरणस्य सत्त्वम् असत्त्वं वेति वक्तव्यम्। सत्त्वे कारणविनाशानुपपत्तिः आधेयनिवृत्त्या कारणस्वरूपस्याऽऽधारस्याऽविरोधात् विरोधे वा कारण-तन्निवृ-

---

१ घटाद्यर्थ–मां॰ भा॰ वि॰। २–रणे का–वृ॰ ल॰ वा॰ बा॰ विना।–रणका–भां॰। ३–नाकारण–मां॰। ४ कार्यकार–वा॰ बा॰ मां॰। ५ "पृथगुपलम्भः"–मा॰ टि॰। ६ पृ॰ १०६ पं॰ ९। ७–पाले-पूपल–वृ॰ ल॰।–पालेष्वपल–वा॰ बा॰। ८ "घटस्यानिवृत्ते."–मां॰ टि॰। ९ प्र॰ पृ॰ पं॰ ११ तथा पं॰ २१। १० प्र॰ पृ॰ प॰ १७ तथा २२। ११–गमे। ने–वृ॰। १२ तस्य का–वृ॰। ल॰ सं॰। १३ "कारण"स्वरूपात्–वृ॰ ल॰ टि॰। १४ "आधेया चासौ निवृत्तिश्च"–मां॰टि॰।

ण्योः कार्यकारणभावात् कारणत्वेऽप्यविकारत्वविरोधः कारणोऽपि विकारत्वाद्विरोधात्, तत्र घटपूर्वं भूत्, । तत्र कारणं निवृत्तेऽपि विकारत्वात् सति न भवेत्, न, निवृत्तिकाले कार्यस्य स्वभावस्योत्पत्तेः, विनाशस्य पूर्वं कारणस्य तदनुत्पत्तिनिरोधादिः स्वभावेन तदनुत्पत्तिविरोधात् प्रतिबन्धे प्रत्यासत्ति इति तत्र प्राग् हेतुस्वभावे ।। न च तावदेतत् पूर्वं च कारणनिवृत्तिः, कारणान्तरसद्भावादिप्रतिविरोधात् । न हि कारणनिवृत्तिः, नोऽपि पूर्वं, कारणस्वभावत्वं तदुत्पत्तिप्रसङ्गः प्रत्यक्षेण एव कारणान्तरानुवृत्तिः एव इत्येते अनन्तरे वा न कदाचित् कारणान्तरानुवृत्तिप्रसङ्गेन प्रतिवस्त्वाऽविरोधात् । न च कारणनिवृत्तिः, तदेतत्, स्वात्मनि विधाविरोधात् । न च निर्हेतुकं च कारणान्तरमेव तत्र प्राग् विरोधात् घटेनोत्पत्तिविनाशाभावात् ।

तत्र न कारणं निवृत्तेऽपि अविकारत्वं वा किन्तु स्वयमेव न भवति, तत्रापि किं स्वभावः स्वयमेव स्वयं न भवति, आहोस्वित् स्वभावान्तरमिति विकल्पद्वयमभिधानीयम् । यदि प्राक्तनविकल्पः, तदा १० कारणानुत्पत्तिप्रसङ्गः प्रमाणाभाव एव निवृत्ताऽप्रमाणत्वात् तत्प्रभावे न निवृत्तिरपि अनुत्पत्तिः विनाशासम्भवात् । नापि द्वितीयः तदा निवृत्तिसमये स्वभावानुत्पत्तेः कारणस्य भावाऽभावयोः स्वभावान्तरविरोधात् यदि हि स्वभावान्तरं यत्र न भवेत् तदा भवनाऽभवनयोरविरोधात् "स्वयमेव भावो न भवेत्" [ ] इति वचनो वैदेन मान्यता । न च जन्मान्तरं भाव-

भावस्य स्वभावत्वात् निरन्वयविनाशाभावः सर्वथाऽपि जन्मान्तरं 'स एव न भवति' इत्यनेन १५ भावस्य अभावपर्यायाभ्युपगमात् कार्यस्य निवृत्तावपि न तस्याभावप्रसङ्गः । भावस्य अभावा-त्मकत्वाभावे दोष इति चेत्, न, तत्रापि पर्युदासाभावात्मकत्वं भावस्य, प्रसज्यरूपाभावात्मकत्वं वा ? प्रथमपक्षे स्वरूपपरित्यागेन तदात्मकत्वं प्रतिपद्यते, भावरूपेण वा ? प्रथमपक्षे स्वभाव-प्रतिषेधपर्यवसानत्वात् पर्युदासाभावात्मको भावो भवेत् । न चार्थो नाम तत्त्वादेकप्रमाणा-भावात् तदाभ्युपगमप्रसङ्गप्रमाणाभ्युपगमे च प्रसज्यपर्युदासात्मको भावो भवेदित्येतावन्त- २० प्रतिपत्तिः । द्वितीयपक्षेऽपि न पर्युदासः अविविक्तत्वस्वरूपत्वात् पूर्वभावस्वरूपम् । प्रसज्यरूपा-भावात्मकत्वेऽपि भावस्य प्रतिषिध्यमानस्याभावो यतस्तः न तावत् मृत्पिण्डस्वरूपं कारणस्वभावः तस्य प्रतिषिध्यमानत्वात् निषिध्यमानस्य भावस्यानुपपत्तेः । नापि घटस्वरूपं कार्यस्वभावः, कारणनिवृत्तेर्हि प्राक् घटस्यासत्त्वेन 'असत्' इतिप्रत्ययविषयत्वात् 'असत्' प्रत्ययविषयत्वे च 'असत् प्रागन्यो न भवति' 'प्रागभावोऽयम्' इति च प्रसज्यपर्युदासव्यवहारो द्वयोः सम्भवेति प्रतिषेध- २५ प्रधानविधिगुणत्वेनविधिप्रधानप्रतिषेधगुणत्वेनयोः तत्त्वयोः प्रवृत्तिनिमित्तपर्यायाधारभूतं द्रव्यं विषयत्वेनाभ्युपगन्तव्यमन्यथा तद्योगात् । तथा चाभेदस्य स्याद्वादापत्तिप्रसिद्धिरिति तथाभूतस्य तस्य चतुर्थः प्रमाणस्याभावस्य निषेद्धुमशक्यत्वात् । एवंभूतेन घटस्योत्पत्तेः प्रागनिवृत्ते क्रियायाः प्रवृत्त्यभावः पदार्थस्वरूपात् तत्स्वभावेऽपि प्रवृत्त्यादयस्यायत्नतः । कारणेऽप्येतैरविरोधतत्त्वम् प्रयोगे द्वयोरप्यभावप्रसङ्गः । न "धटत्वस्य तथाऽप्रतीतेः । तत्र मृत्पिण्डे घटस्य सत्त्वम् । ३०

नाप्येकान्ततोऽसत्त्वम्, मृत्पिण्डस्यैव कथञ्चित् घटरूपतया परिणतेः । सर्वात्मना विनष्टनि-वृत्तौ पूर्वोत्तरयोरतिवृत्तेः घटसद्भावपूर्वयोराधारभूतमेकं द्रव्यं मृदात्मकमेकाकारतया मृत्पिण्ड-घटयोः प्रतीयमानमभ्युपगन्तव्यम् । न च कौरणप्रवृत्तिकाले कारणगता मृद्रूपता तन्निवृत्तिकाले च कार्यगता स्वरूपेण नोपपन्न मृद्रूपतायाः एकत्वम्, भेदप्रतिपत्तावपि मृत्पिण्ड-घटरूपतया कथञ्चिदेकत्वस्याधिगमप्रत्यक्षगोचरत्वात् उपलभ्यत एव हि कुम्भकारव्यापारात्प्रागेतदं मृद्रूपं ३५

१"कार्यत्वम्"-बृ॰ टि॰ । २ "कार्यता"नभ्युपगमे-बृ॰ टि॰ । ३ च कारण कारण हे-बृ॰ भां॰ मां॰ । च कारणाद्-बृ॰ वै॰ । ४ घटस्य भां॰ मां॰ । घटेन प्र॰ मां॰ बहिः । ५ जन्मान्तरं मां॰ । जन्मा-न्तरं प्र॰ मां॰ बहिः । ६ "भाव"स्वनिश्चि-बृ॰ स॰ मां॰ टि॰ । ७-स्पा नि-भां॰ ।-स्वानि-प्र॰ मां॰ बहिः । ८ "पर्युदासात्मको(ऽ)भावः"-बृ॰ स॰ टि॰ । "पर्युदासात्मकोऽभावः"-भां॰ टि॰ । ९ तथा "स्वरूपपरि-हारलक्षणा"-बृ॰ स॰ मां॰ टि॰ । १०-पक्षे या प्र-बृ॰ स॰ वा॰ बा॰ । ११-स्वकेऽपि-मां॰ । १२-स्वाप च-भां॰ । १३-स्य घटस्तु-भां॰ मां॰ भा॰ । १४ कारणघट-भां॰ । १५ "द्रव्यं"विशेषण्-बृ॰ स॰ मां॰ टि॰ । १६ "कार्यत्वम्"-बृ॰ स॰ मां॰ टि॰ । १७ प्रसङ्गेन द्व-भा॰ । "क्रियायाः" प्रसङ्गे-बृ॰ स॰ मां॰ टि॰ । १८ "कारण-कार्ययोः"-बृ॰ स॰ मां॰ टि॰ । १९ धैयत-भा॰ । २० कारणनिवृ-प्र॰ मां॰ बहिः ।

[(३) वैशेषिकाभिमतत्वेनोपन्यस्तस्यासत्कार्योत्पत्तिवादस्य निरसनम्]

मृत्पिण्डावस्थायां घटार्थक्रिया-गुणव्यपदेशाभावात् 'असदुत्पद्यते कार्यम्' इत्ययमप्येकान्तो मिथ्यावाद एव। कार्योत्पत्तिकाले कारणस्याविचलितरूपस्य कार्याद्व्यतिरिक्तस्य सत्त्वे पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गात्। तद्व्यतिरिक्तस्य तस्य सद्भावे कारणस्य प्राक्तनस्वरूपेणैवावस्थितत्वात् अकारणात् ५कार्योत्पत्तिर्भवेत् कारणस्य प्राक्तनाऽकारणस्वरूपापरित्यागात् परित्यागे वा कार्यकरणस्वरूपस्वीकारेण तस्यैवावस्थितत्वादनेकान्तसिद्धिः। व्यतिरेके च कारणात् कार्यस्य पृथगुपलम्भप्रसङ्गः। न च तदाश्रितत्वेन तस्योत्पत्तेर्न तत्प्रसङ्ग इति वक्तव्यम्, अवयविनः समवायस्य च निषेत्स्यमानत्वात् निषिद्धत्वाच्च।

[(४) बौद्धाभिमतत्वेनोपन्यस्तस्य 'कारणाद् भिन्नं कार्यं तत्रासदेव' इति वादस्य निरसनम्]

१० कारणाद् व्यतिरिक्तं तत्र असदेव कार्यमित्ययमपि पक्षो मिथ्यात्वमेव। तथाहि-एकान्ततो निवृत्ते कारणे कार्यमुत्पद्यत इत्यत्र कारणनिवृत्तिः सद्रूपा, असद्रूपा वेति वक्तव्यम्। सद्रूपत्वेऽपि न तावत् कारणस्वरूपा, कारणस्य नित्यत्वप्रसक्तेः निवृत्तिकालेऽपि कारणसद्भावात्। न चाविचलितस्वरूपमृत्पिण्डसद्भावे घटोत्पत्तिर्दृष्टेति कार्यानुत्पत्तिप्रसक्तिश्च। नापि कार्यरूपा तन्निवृत्तिः कारणानिवृत्तौ कार्यस्यैवानुत्पत्तेः। एवं च कार्यानुत्पादकत्वेन कारणस्याप्यसत्त्वमेव। न च कार्योत्पत्तिरेव कारण-१५निवृत्तिरिति कारणानिवृत्तेर्न कार्योत्पत्तिरिति नायं दोषः, कार्यगतोत्पादस्य कारणगतविनाशरूपत्वायोगात् भिन्नाधिकरणत्वात् कारणनिवृत्तेश्च कार्यरूपत्वे कारणं कार्यरूपेण परिणतमिति घटस्य मृत्स्वरूपवत् कपालेष्वप्युपलब्धिप्रसङ्गः। नाप्युभयरूपा तन्निवृत्तिः, कारणनिवृत्तिकाले कार्य-कारणयोर्युगपदुपलब्धिप्रसक्तेः। नाप्यनुभयस्वरूपा तन्निवृत्तिः, मृत्पिण्डविनाशकाले विवक्षितमृत्पिण्डघटव्यतिरिक्ताऽशेषजगदुत्पत्तिप्रसक्तेः। अथ असद्रूपा तन्निवृत्तिः तत्रापि यदि कारणाभावरूपा २०तदा कारणाभावात् कार्योत्पादप्रसक्तेर्निर्हेतुकः कार्योत्पाद इति देश-कालाऽऽकारनियमः कार्यस्य न स्यात् अभावाच्च कार्योत्पत्तौ विश्वमदरिद्रं भवेत्। नापि कार्याभावरूपा तन्निवृत्तिः कार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात्। नाप्युभयाभावस्वभावा द्वयोरप्यनुपलब्धिप्रसक्तेः। नाप्यनुभयाभावरूपा विवक्षितकारण-कार्यव्यतिरेकेण सर्वस्यानुपलब्धिप्रसक्तेः कारणस्योपलब्धिप्रसक्तेश्च। कारणभावाभावरूपापि न तन्निवृत्तिः, कारणस्यानुगतव्यावृत्तताप्रसक्तेः। अत एव च सदसद्रूपं स्व-पररूपापेक्षया अनेकान्त-२५वादिभिर्वस्त्वभ्युपगम्यते। पररूपेणेव स्वरूपेणाप्यसत्त्वे वस्तुनो निःस्वभावताप्रसक्तेः। स्वरूपवत् पररूपेणापि सत्त्वे पररूपताप्रसक्तेः। एकरूपापेक्षयैव सदसत्त्वविरोधात् अन्यथा वस्त्वेव न भवेत्। नापि कार्यभावाभावरूपा, कार्यस्योत्पत्त्यनुत्पत्त्युभयरूपताप्रसक्तेः तथा च सिद्धसाध्यता केवलोभयपक्षोक्तदोषप्रसक्तिश्च। नापि कार्यकारणोभयभावाभावरूपा, प्रत्येकपक्षोदितसकलदोषप्रसक्तेः। परस्परसव्यपेक्षकार्यकारणभावाभावरूपकारणनिवृत्त्यभ्युपगमेऽनेकान्तवादप्रसक्तिश्च। नाप्यनुभय-३०भावाभावरूपा अनुभयरूपस्य वस्तुनोऽभावात्। न च तन्निवृत्तेः सत्त्वम् एकान्तभावाभावयोर्विरोधात्। अनुभयभावाभावरूपत्वे तु तस्याः कारणस्याऽप्रच्युतत्वात् तथैवोपलब्धिप्रसङ्गः। अपि च, कारणनिवृत्तिस्तत्स्वरूपाद् भिन्ना, अभिन्ना वा? यद्यभिन्ना, निवृत्तिकालेऽपि कारणस्योपलब्धिप्रसङ्गः तन्निवृत्तेः कारणात्मकत्वात् स्वकालेऽपि वा कारणस्योपलब्धिर्न स्यात् तस्य तन्निवृत्तिरूपत्वात्। भिन्ना चेत् 'कारणस्य निवृत्तिः' इति सम्बन्धाभावात् अभिधानानुपपत्तिः। सङ्केतवशात् ३५अभिधानप्रवृत्तावपि आधेयनिवृत्तिकाले अधिकरणस्य सत्त्वम् असत्त्वं वेति वक्तव्यम्। सत्त्वे कारणविनाशानुपपत्तिः आधेयनिवृत्त्या कारणस्वरूपस्याऽऽधारस्याऽविरोधात् विरोधे वा कारण-तन्निवृ-

---

१ घटाद्यर्थ-मां० भा० वि०। २-रणे का-वृ० ल० बा० बा० विना।-रणका-भां०। ३-नाकारण-मां०। ४ कार्यकार-वा० बा० मां०। ५ "पृथगुपलम्भ."-मां० टि०। ६ पृ० १०६ पं० ९। ७-पाले-पूपल-वृ० ल०।-पालेष्पल-वा० बा०। ८ "घटस्यानिवृत्ते."-मां० टि०। ९ प्र० पृ० पं० ११ तथा पं० २१। १० प्र० पृ० पं० १७ तथा २२। ११-गमे। ने-वृ०। १२ तस्य का-वृ०। ल० स०। १३ "कारण"स्वरूपात्-वृ० ल० टि०। १४।"आधेया चासौ निवृत्तिश्च"-मां०टि०।

पिण्डाकारपरित्यागेन शिवकाद्याकारतया परिणममानम् नहि तत्र 'इदं कार्यमाधेयभूतं विलक्षणमुपजातं पङ्के पङ्कजवत्' इति प्रतिपत्तिः । नापि तत्करणनिर्वर्तनतया दण्डोत्पादितघटवत् । नापि तत्कर्तृतया कुविन्दव्यापारसमासादितात्मलाभपटवत् । नापि तदुपादानतया आत्मपुद्गलोत्पादिताम्रफलवत् । तस्मात् पूर्वपर्यायविनाश उत्तरपर्यायोत्पादात्मकः, तद्देशकालत्वात्, घटोत्पादवत् । अभावरूपत्वाद्वा प्रदेशस्वरूपघटाद्यभाववत् । प्रागभावाभावरूपत्वाद्वा घटस्वात्मवत् । एवमनभ्युपगमे पूर्वपर्यायस्य ध्वंसात् उत्तरस्य चानुत्पत्तेः शून्यताप्रसक्तिः । उत्तरपर्यायोत्पादोऽप्युक्तरूपधा तदुत्पादः पूर्वपर्यायप्रध्वंसात्मकः प्रागभावाभावरूपत्वात् प्रध्वंसाभावाभाववत् । न च प्राक्पर्यायविनाशात्मकत्वे उत्तरपर्यायभवनस्य तद्विनाशे पूर्वपर्यायस्योन्मज्जनप्रसक्तिः अभावाभावस्य भावात्मनोऽनभ्युपगमाद् वस्तुनः तस्य प्रतिनियतपरिणतिरूपत्वात् । भावाभावोभयरूपता प्रतिनियतस्य वस्तुनः प्रादुर्भावे मुद्गरादिव्यापारानन्तरमुपलभ्यमानस्य कपालादेरभावस्य नाहेतुकता । न चोभयरूपैकव्यापारादुत्पत्तिविरोधः तथाप्रतीयमाने विरोधासिद्धेः । ततस्तद्विपरीत एव विरोधविरहे सर्वैकान्ते प्रमाणानवतारात् । तथात्मकैकत्वेन प्रतीयमानं प्रति हेतोर्जनकत्वविरोधे घटस्य[illegible] स्व-परविनाशोत्पादकत्वं विरुध्येत, एवं चाकारणा घटक्षणान्तरोत्पत्तिर्भवेत् । न च विनाशप्रसज्य-पर्युदासपक्षद्वयेऽपि व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तादिविकल्पतो हेत्वयोगान्निर्हेतुकता युक्ता, भावहेतुत्वेऽपि तथाविकल्पनस्य समानत्वेन प्राक् प्रदर्शितत्वात् ।

यदपि 'विनाशस्य निर्हेतुकत्वात् स्वभावानुबन्धित्वेति निरन्वयक्षणक्षयिता भावानामिति [illegible]' तदप्यसङ्गतम् । विनाशहेतोर्मुद्गरादेर्घटादिविनाशस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् । न प्रत्यक्षादि [illegible] प्रामाण्यमात्मसात्करोति । यदपि 'विनाशं प्रति हेतोरसामर्थ्यात् [illegible] निर्विनाश इति मानस्या,' तदप्यसङ्गतम्, विनाशहेतोर्भावाभावीकरणसामर्थ्यात् । [illegible] अन्यथा स्वयमेव नाशोऽपि भावानां [illegible] 'स्वयमेव भावो नास्ति' इति भवेत् । [illegible] 'स्वयमेव हेतुनिरपेक्षो भावो नश्यति' [illegible] । [illegible] 'विनष्टो भावः' इति प्रत्ययो [illegible] 'उत्पन्नानि कपालानि' इति प्रत्ययो [illegible] ।

[illegible]

किञ्च, कारणसत्तासमये कार्यस्याभवतः स्वयमेव पश्चाद् भवतः सत्कार्यत्वप्रसक्तिश्च। तथाहि–यस्मिन् सति यत् भवति असति च भवति तत् तस्य न कार्यम् इतरच्च न कारणम्, यथा कुलालस्य पटादिः। क्षणक्षयपक्षे च प्रथमक्षणे कारणाभिमतभावसद्भावे न भवति कार्यम् असति तस्मिन् द्वितीयक्षणे भवति चेति न तत् तत्कार्यं इतरच्च तत्कारणमिति हेतुफलभावाऽभावस्य तन्मात्र-निबन्धनत्वात्। अत एव क्षणिकाद् अर्थक्रिया व्यावर्त्तमाना स्वं व्याप्यं सत्त्वलक्षणमादाय निवर्त्तत ५ इति यत्र सत्त्वं तत्राऽक्षणिकत्वं सिद्धिमासादयति। न च कार्यकालेऽभवतोऽपि कारणस्य प्राक्तना-नन्तरक्षणभावित्वात् कारणत्वम् कार्यकाले स्वयमेवाभवनोऽकारणान्तरवत् कारणत्वायोगात् कार्यस्य च कारणकाले आत्मनैवाऽभवतः कार्यान्तरवत् तत्कार्यत्वानुपपत्तेः। क्षणिकस्य च प्रमाणा-विषयत्वात् तत्र कार्यकारणभावपरिकल्पना युक्तिसङ्गता। न चानुपलम्भेऽपि तत्र कार्यकारणभाव-व्यवस्था अतिप्रसङ्गात्। न च क्षणक्षयमीक्षमाणोऽपि सदृशापरापरोत्पत्त्यादिविभ्रमनिमित्ताद् १० नोपलक्षयतीति वक्तव्यम् यतो नाध्यक्षात् क्षणक्षयमलक्षयंस्तत्र कार्यकारणभावं व्यवस्थापयितुं शक्नोति, नाप्यनुमानात् क्षणिकत्वं व्यवस्थापयितुं समर्थः, तस्य स्वांशमात्रावलम्बितया वस्तु-विषयत्वायोगात्। न च मिथ्याविकल्पेनाध्यवसितं क्षणिकत्वं वस्तुतो व्यवस्थापितं भवति।

यदपि 'अक्षणिकेः क्रम-यौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात्' इत्याद्युक्तम्, तदपि सहकारिसन्निधा-नवशादक्षणिकस्य क्रमेणार्थक्रियां निर्वर्त्तयतोऽयुक्तमेव। यदप्युक्तम् 'तत्करणस्वभावश्चेदक्षणिकः १५ प्रागेव तत्करणप्रसङ्गः पश्चादिव स्वभावाविशेषात्' इति, तदप्ययुक्तम्, यतो न वै किञ्चिदेकं जनकम् सामग्रीतः फलोत्पत्तेः। अक्षणिकश्च सामग्रीसन्निधानापेक्षया कार्यनिर्वर्त्तनस्वभावः केवलस्तु तदकरणस्वभावः। न च तदा भाविकार्याकरणादवस्तुत्वम्, क्षणिकेऽपि प्रथमक्षणे कार्या-करणादवस्तुत्वप्रसक्तेः। अत एकत्र कारणान्तरापेक्षानपेक्षाभ्यां जनकत्वाजनकत्वे अविरुद्धे यतः न क्षणिकैर्वाभ्युपगतक्षणस्यापि समनन्तरसन्निधानासन्निधानकृतः स्वभावभेदः अन्यथा २० अनेकसामग्रीसन्निपातिन एकक्षणस्यैकदा विलक्षणानेककार्योत्पादनेऽनेकत्वप्रसक्तिर्भवेत् इष्यते च प्रदीपक्षणस्य समानजातीयक्षणान्तरकज्जलचक्षुर्विज्ञानाद्यनेककार्यनिर्वर्त्तकत्वमेकस्य नानासामग्र्यु-पनिपातिन इति क्रमेणाप्यक्षणिकस्य तदविरुद्धम्। यथा चैकक्षणस्य स्वपरकार्यापेक्षयैकदा जनक-त्वाजनकत्वे अविरुद्धे तथा अक्षणिकस्यापि सहकारिकारणसन्निधानाऽसन्निधानाभ्यां क्रमेण कार्य-जनकत्वाजनकत्वे न विरोत्स्येते। २५

विज्ञप्तिपरमाणुपक्षेऽपि यद्येको ज्ञानपरमाणुः समनन्तरजनितस्वभावभेदेऽप्यभिन्नः अन्यथा दिक्षुद्भयोगात् सावयवत्वकल्पनया अवस्तुत्वप्रसक्तेः सेना-वनादिवत् सर्वविदि निर्विकल्पकाया-

[illegible]

१-अक्षणाय-मु०। "उत्पन्नस्य स्वयमेव निश्चयेन पश्चात् भवतः तत्कार्यत्वं विरुद्धम्" इति "कारणत्वेनाभिमते पूर्वक्षणे" अभवतः "उत्तरक्षणलक्षणकार्यस्य" स्वयमेव "पूर्वक्षणकारणमन्तरेण" तत्कार्यत्वम् "पूर्वक्षणकार्यत्वम्" भवता० तथा टि०भ० १-१-४-५ अष्टस० पृ० ५० पं० १। २ न तत्का-भां० मां० भा०। ३-आ सन्ना-बा० बा० आ०। ४ व्याप्य स-मां० मां०। ५-यतो वा-बा० बा० मां० मां० भा०। ६ "अनुपलम्भ" इ० रू० टि०। ७-कल्पना-आ०। ८-इत्युतो दप-बा० बा० मां० मां० विना।

९ "यथोक्तम्—

"न किञ्चिदेकमेकस्मात् सामग्र्या सर्वसंभव"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० १५५ पं० १४।

१० कारणवादा-बा० बा०।-कारणवादा-अ०। ११-कार्यात्म-भा० भां० मां०।-कार्यप्र-प्र० मां० वृद्धि। १२-नादने-भां० मां०।-नादने प्र० मां० वृद्धि। १३ विरोत्स्यते अ०। विरोत्स्यते बा० बा०। १४-सन्-भ्यायत अ०। १५-स्वभेदेऽप्यभिन्न-भा०। स्वभेदेऽपि वा अभ्युपगन्तव्य भिन्न-भां० मां०। १६ "अभ्युपगन्तव्य" इति शेष-रू० टि०।

घृत्तिसिद्धिः तस्याश्च अक्षणिके अर्थक्रियाविरोधसिद्धिरिति । न च अक्षणिकवादमतेऽप्ययं स
दोषः, कालान्तरस्थायिनि भावेऽध्यक्षप्रवृत्तिनिश्चयादेव क्षणिकत्वेऽर्थक्रियाविरोधस्य सिद्धेः।
क्षणिके अध्यक्षप्रवृत्तिरुपजातैव केवलं भ्रान्तिकारणसद्भावान्न निश्चितेति वक्तव्यम् विहितोत्तरत्व
तदेकान्तक्षणिकस्य अर्थक्रियाकरणलक्षणं सत्त्वम् अन्यस्य च सत्तासम्बन्धादेः सत्त्वस्य परेणान
५ गमात् असन्त एकान्तक्षणिकाः। क्षणिकवद् एकान्ताक्षणिकेष्वप्यर्थक्रियालक्षणं सत्त्वं पूर्वोक्त
न्यायेन व्यावृत्तम् सत्तासम्बन्धलक्षणस्य च सत्त्वस्यातिव्याप्तित्वाऽसम्भवादिदोषदुष्टत्वात् अस
मित्येकान्ताऽक्षणिका अप्यसन्तो भावा इत्युत्पाद-व्यय-ध्रौव्यलक्षणमेव भावानां सत्त्वमभ्युपगन्त
मिति नैकान्ततः कारणेषु कार्यमसदिति न तत् इति पक्षो मिथ्यात्वमिति स्थितम्।

[(५) अपराभिमतत्वेनोपन्यस्ते अद्वैतवादे निरसनीये सर्वेषां तत्त्व-द्रव्य-
१० प्रधान-शब्द-ब्रह्माद्वैतवादानां निरसनम्]

अपरस्तु कार्यकारणभावस्य कल्पनाशिल्पिविरचितत्वात् तदुभयव्यतिरिक्तमद्वैतमात्रं तत्त्व
मभ्युपपन्नः तन्मतमपि मिथ्या कार्यकारणोभयशून्यत्वात् खरविषाणवत् अद्वैतमात्रस्य व्योम
लतुल्यत्वात्। तथाहि—अद्वैतप्रतिपादकप्रमाणस्य सद्भावे द्वैतापत्तितो नाद्वैतम्, प्रमाणा
अद्वैतासिद्धिः प्रमेयसिद्धेः प्रमाणनिबन्धनत्वात्। किञ्च, 'अद्वैतम्' इत्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधः, पर्युद
१५ वा? प्रसज्यपक्षे प्रतिषेधमात्रपर्यवसानत्वात् तस्य नाद्वैतसिद्धिः, प्रधानोपसर्जनभावेनाद्व
भावकल्पनायां द्वैतप्रसक्तिः। द्वितीयपक्षेऽपि द्वैतप्रसक्तिरेव प्रमाणान्तरप्रतिपन्ने द्वैतलक्षणे वस्
तत्प्रतिषेधेनाद्वैतसिद्धिः। द्वैतादद्वैतस्य व्यतिरेके च द्वैतप्रसक्तिरेव पररूपव्यावृत्तस्वरूपाऽव्यावृ
त्तकत्वेन तस्य द्विरूपताप्रसक्तेः अव्यतिरेके पुनर्द्वैतप्रसक्तिः। न चाद्वैतस्य अविद्यमानाद् द्वै
व्यावृत्ततासम्भवः अविद्यमानस्यापि विद्यमानाद् व्यावृत्तिप्रसक्तेः अन्यथा सद्रूपताविशेषप्रस
२० भवेत्। प्रमाणादिचतुष्टयसद्भावे च न द्वैतवादान्मुक्तिः तदभावे शून्यतावादादिति नाद्वैतकल्
ज्यायसी। न च नित्यत्वाद्वैतकल्पना भावानामनेकत्वेऽपि युक्तिसङ्गता, सर्वदा सर्वभावानां नित्
ग्राह्यग्राहकरूपताऽभावप्रसक्तेः तद्भावाभ्युपगमे वा अनेकान्तवादाश्रयणम् ग्राह्यग्राहकरूपता
विकारिताव्यतिरेकेणायोगात् सा च कथञ्चिदेकस्यानेकरूपानुपपन्नादिति कथं नानेकान्तसिद्धिः?

द्रव्याद्वैतवादे रूपादिभेदाभावप्रसङ्गश्च। न च चक्षुरादिसम्बन्धात् तदेव द्रव्यं रूपादिमिति
२५ भिन्नक्रम् सर्वात्मना तत्सम्बन्धस्य तथैव प्रतीतिप्रसक्तेः रूपान्तरस्य तद्व्यतिरिक्तस्य तत्राभावा
तत्र द्रव्याद्वैतमपि।

प्रधानाद्वैतं त्वयुक्तमेव सत्त्वादिव्यतिरेकेण तस्याभावात्। न च सत्त्वादेरव्यतिरेकाद
प्रधानस्य, सत्त्वाद्यव्यतिरेकात् द्वैतप्रसक्तेः महदादिविकारस्य वाभ्युपगमे कथमद्वैतम्? विकारेण
विकारिणोऽत्यन्तमभेदे 'न विकारी' इति प्रतिपादितम्। भेदाभेदे अनेकान्तसिद्धिः व्यतिरेके द्वैत
३० प्रसिद्धिरिति। प्रतिक्षिप्तश्च प्रधानाद्वैतवाद इति न पुनः प्रतिक्षिप्यते।

शब्दाद्वैतं तु नामनिक्षेपावसरे प्रतिक्षिप्तमिति न तदभ्युपगमोऽपि श्रेयान्।

ब्रह्माद्वैतवादस्यापि प्रागेव प्रतिषेधः कृत इति तदेव वा 'इति अयमपि पक्षो मिथ्यात्वम्
ततः कारणे परिणामिनि वा कार्यम् परिणामो वा तदेव तदेव तावदेव वा तत् तत्रेति न कारणे

१-या विरोधस्य सिद्धेर्न भा० म०। २-तत्तु-भां० मां० विना। ३ पृ० ४२७ पं० १०। ४ पृ० ४२[illegible]
टि० २०।

५ "हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद् द्वैतं स्याद् हेतु-साध्ययोः। हेतुना चेद् विना सिद्धिर्द्वैतं वाङ्मात्रतो न किम्" ॥२६॥
-आप्तमी० पृ० १६, अष्ट० पृ० ११०।

६-तन्निति ब्र-आ०।

"अद्वैतं न विना द्वैताद् अहेतुरिव हेतुना। संज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्याद् ऋते क्वचित्" ॥ २७ ॥
-आप्तमी० पृ० १६, अष्ट० पृ० १११।

७-कल्पिता-भां० मां० आ०।-कल्पना ब्र० मां०, भ० डे०। ८ तस्यापि विद्यमानत्वात् द्वै-भां० मां० आ०।
९ "अनेक-[illegible]" [illegible] डि०। १० पृ० ४११ पं० १०। ११ तदेवा-आ०।

कार्यम् परिणामी वा परिणामः । न कार्यम् नापि कारणम् अपि तु द्रव्यमात्रं तत्त्वमिति तदेव चेति नियमेन एकान्ताभ्युपगमे सर्वे एते मिथ्यावादाः उक्तन्यायेन नियमेन मिथ्यात्वम् स्वाभिधानात् कथञ्चिदभ्युपगमे सम्यग्वादा एते इत्युक्तं भवति यत उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकत्वे वस्तुनः स्थिते तद् वस्तु तत्तदपेक्षया कार्यम् अकार्यं च, कारणम् अकारणं च, कारणे कार्यं सच्च असच्च, कारणं कार्यकाले विनाशवत् अविनाशवच्च तथैव प्रतीतेरन्यथा चाऽप्रतीतेः ॥ २७ ॥ ५

[स्वे स्वेऽंशे सत्यानामपि नयानां परांशविचालने मिथ्यात्वात् समयज्ञः सापेक्षावधारणं करोतीति वर्णनम्]

अत एकान्तरूपस्य वस्तुनोऽभावात् सर्वेऽपि नयाः स्वविषयपरिच्छेदसमर्था अपि इतरनयविषयव्यवच्छेदेन स्वविषये वर्तमाना मिथ्यात्वं प्रतिपद्यन्त इत्युपसंहरन्नाह—

णिययवयणिज्जसच्चा सव्वनया परवियालणे मोहा । १०
ते उण ण दिट्ठसमओ विभयइ सच्चे व अलिए वा ॥ २८ ॥

निजकवचनीये स्वांशे परिच्छेद्ये सत्याः सम्यग्ज्ञानरूपाः सर्व एव नयाः संग्रहादयः परविचालने परविषयोन्मूलने मोहाः मुह्यन्तीति मोहा मिथ्याप्रत्ययाः परविषयस्यापि सत्यत्वेनोन्मूलयितुमशक्यत्वात् तदभावे स्वविषयस्याप्यव्यवस्थितेः ततश्च परविषयस्याभावे स्वविषयस्याप्यसत्त्वात् तत्प्रत्ययस्य मिथ्यात्वमेव तद्व्यतिरिक्तग्राहकप्रमाणस्य चाभावात् तस्मात् तानेव नयान् १५ पुनः शब्दस्यावधारणार्थत्वात् न इति प्रतिषेधो विभजनक्रियायाः दृष्टः समयः सिद्धान्तवाच्यमनेकान्तात्मकं वस्तुतत्त्वं येन पुंसा स तथा स न विभजते सत्येतरतया-स्वेतरविषयमवधारयमाणोऽपि तथा तान् न विभजते अपि त्वितरनयविषयसव्यपेक्षमेवं स्वनयाभिप्रेतं विषयं सत्यमेवावधारयतीति यावत् । 'ग्राह्यस्यासत्यत्वात् ग्राहकस्यासत्त्वं' इत्येवमभिधानम् तच्च दृष्टाऽनेकान्ततत्त्वस्य विभजनम् 'स्यादस्त्येव द्रव्यार्थतः' इत्येवंरूपम् ॥ २८ ॥ २०

[सर्वस्यापि वस्तुनोऽभेदरूपेण द्रव्यार्थिकपरिच्छेद्यस्यैव भेदरूपेण पुनः पर्यायार्थिकपरिच्छेद्यत्वाभिधानम्]

अतो नय-प्रमाणात्मकैकरूपताव्यवस्थितमात्मस्वरूपम् अनुगतव्यावृत्तात्मकम् उत्सर्गापवादरूपग्राह्यग्राहकात्मकत्वाद् व्यवतिष्ठत इत्यर्थप्रदर्शनायाह—

दव्वट्ठियवत्तव्वं सव्वं सव्वेण णिच्चमवियप्पं । २५
आरद्धो य विभागो पज्जववत्तव्वमग्गो य ॥ २९ ॥

यत् किञ्चिद् द्रव्यार्थिकस्य संग्रहादेः सदादिरूपेण व्यवस्थितं वस्तु वक्तव्यं परिच्छेद्यं तत् सर्वं सर्वेण प्रकारेण नित्यं सर्वकालम् अविकल्पं निर्भेदम् सर्वस्य सदसद्विशेषात्मकत्वात् तच्च भेदेन सम्भूतमिति दर्शयितुमाह—आरब्धश्च विभागः स पर्यायविभागः सत्तारूपो यो द्रव्यादिनाऽऽकारेण, वस्तुतश्च भेदः वक्तव्यस्य प्रकान्ताऽविभागानुकर्षणार्थत्वात् पर्यायवक्तव्यमार्गश्च पर्यायास्तिकस्य यद् वक्तव्यं विशेषः तस्य मार्गः पन्था जातः—पर्यायार्थिकपरिच्छेद्यस्वभावो विशेषः सम्पन्न इति यावत् ॥ २९ ॥ ३०

---

१ सत् वि-[illegible] मा० मा० । [illegible] दि० । ३-च त्वनया-बृ० वा० मा० । -च त्वन्यनया-बृ० वं० । प्र० मा० बहिः । ४ सत्ये असत्ये वा अवधारयतीति प्र० मा० बहिः ।
[illegible]

[शब्दार्थगतत्वेन पर्यायस्य द्वैविध्यं प्रदर्श्य तस्य द्विविधस्यापि पुनर्भेदाभेदरूपेण विवेचनम्]

एवं भेदाभेदरूपं वस्तूपदर्श्य भेदस्य पर्यायार्थिकविषयस्य द्वैविध्यमाह—

सो उण समासओ चिय वंजणणिअओ य अत्थणिअओ य ।
अत्थगओ य अभिण्णो भइयव्वो वंजणवियप्पो ॥ ३० ॥

५　स पुनर्विभागः समासतः संक्षेपतो व्यञ्जननियतः शब्दनयनिबन्धनः अर्थनियतश्च अर्थनयनिबन्धनश्च । तत्र अर्थगतस्तु विभागः अभिन्नः संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रार्थप्रधाननयविषयोऽर्थपर्यायोऽभिन्नः असद्द्रव्यातीतानागतव्यवच्छिन्नाभिन्नार्थपर्यायरूपत्वात् तद्विषया नया अपि 'अर्थगतो विभागोऽभिन्नः' इत्युच्यते । भाज्यो व्यञ्जनविकल्प इति । विकल्पितः शब्दपर्यायो भिन्नः अभिन्नश्च अभिन्नप्रधानैकाभिधान एकः एकाभिधानश्चैकः इति कृत्वा, समानलिङ्ग-संख्या-काला-
१० दिरनेकशब्दो 'घटः' 'कुटः' 'कुम्भः' इत्यादिक एकार्थ इति शब्दनयः । समभिरूढस्तु भिन्नाभिधेयौ घट-कुटशब्दौ, भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वात्, रूप-रसादिशब्दवत् इत्येकार्थं एकशब्द इति मन्यते । एवंभूतस्तु चेष्टासमय एव घटो 'घट'शब्दवाच्यः अन्यथाऽतिप्रसङ्गात् । तदेवम् अभिन्नोऽर्थो वाच्योऽस्येत्यभिन्नार्थो घटशब्द इति मन्यते ॥ ३० ॥

[एकस्यैव वस्तुनस्त्रैकालिकानन्तशब्दार्थपर्यायशालितयाऽनन्तप्रमाणत्वेन सर्वात्मकत्वाख्यानम्]

१५　यत् तदन्यतो विभजनेन स्वरूपेणैकमनेकं च वस्तूक्तम् तद् अनन्तप्रमाणमित्याख्यातुमाह—

एगदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया वावि ।
तीयाणागयभूया तावइयं तं हवइ दव्वं ॥ ३१ ॥

एकस्मिन् जीवादिद्रव्ये अर्थपर्याया अर्थनयाः संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्राख्याः तद्ग्राह्या वा अर्थभेदाः वचनपर्यायाः शब्दनयाः शब्द-समभिरूढ-एवंभूताः तत्परिच्छेद्या वस्त्वंशा वा
२० ये च अतीतानागतवर्तमानकालतया सर्वदा निवर्तन्ते निवृत्ताः निवर्तिष्यन्त इति तेषामनन्तत्वात् तावत्प्रमाणं भवति । तथाहि-अनन्तकालेन सर्वेण वस्तुना सर्वात्मना [illegible] कुण्डलादाकारादित्वात् [illegible] कथञ्चिदनन्यत्वात् घटादिवस्तु घट-कुटादिशब्दैः [illegible] विभूषितमिति सर्वं सर्वात्मकं कथञ्चिदिति स्थितम् । [illegible] अतीतानागतवर्तमानद्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेषपरिणामात्मकं [illegible] तत् तथा
२५ भूतमेव । [illegible] उत्पादयोगात् [illegible] इति प्रतिपादितत्वात् ॥ ३१ ॥

[[illegible] भेदाभेदात्मकत्वसमर्थनेन वस्तुमात्रस्याऽनेकान्तात्मकत्वकथनम्]

एवं [illegible] द्विविधमपि वस्तुनोऽनेकान्तात्मकत्वं प्रतिपाद्य [illegible] प्रतिपादयन्नाह—

३०　पुरिसम्मि पुरिससद्दो जम्माई मरणकालपज्जन्तो ।
तस्स उ बालाईया पज्जवजोया बहुवियप्पा ॥ ३२ ॥

[illegible]

अथवा अर्थ-व्यञ्जनपर्यायैः शक्ति-व्यक्तिरूपैरनन्तैरनुगतोऽर्थः सविकल्पः निर्विकल्पश्च प्रत्यक्षतोऽवगतः, इदानीं पुरुषदृष्टान्तद्वारेण व्यञ्जनपर्यायं तन्निर्विकल्पकत्वनिबन्धनम् अर्थपर्यायं च तत्सविकल्पकत्वनिमित्तमाह—पुरिसम्मि इत्यादिना सूत्रेण—

अतीतानागतवर्तमानानन्तार्थ-व्यञ्जनपर्यायात्मके पुरुषवस्तुनि 'पुरुष' इति शब्दो यस्तस्मिन् पुरुषशब्दः तद्वाच्योऽर्थो जन्मादिर्मरणपर्यन्तोऽभिन्न इत्यर्थः 'पुरुषः' इत्यभिन्नाभिधान-५ प्रत्ययव्यवहारप्रवृत्तेः तस्यैव बालादयः पर्याययोगाः परिणतिविशेषा बहुविकल्पा अनेकभेदाः प्रतिक्षणस्वसमपरिणामान्तर्भूता भवन्ति तत्रैव तथाव्यतिरेकज्ञानोत्पत्तेः एवं च 'स्यादेकः' इत्यविकल्पः 'स्यादनेकः' इति सविकल्पः सिद्धः, अन्यथाऽभ्युपगमे तदभाव एवेति [illegible] 'अत्थि'त्ति णिव्वियप्पं' इत्यनन्तरगाथया वाच्यं दर्शयिष्यति।

द्वितीयव्याख्याने व्याख्यातगाथार्थस्तु—पुरुषवस्तुनि पुरुषध्वनिर्व्यञ्जनपर्यायः शेषो बालादि-१० धर्मकलापोऽर्थपर्याय इति गाथासमुदायार्थः।

[व्यञ्जनपर्यायप्रसङ्गेन वाचकशब्द-वाच्यतत्सम्बन्धयोस्स्वरूपमीमांसा]

ननु कोऽयं 'पुरुष'शब्दः कथं वा शब्दोऽर्थस्य पर्यायस्तस्याऽत्यन्तभिन्नत्वात् घटस्येव पटः?

[वर्णेषु वाचकत्वं व्युदस्य स्फोटे तत् प्रतिपादयतो वैयाकरणमतस्य वर्णनम्]

अत्र वैयाकरणाः प्राहुः—{"यस्मात् उच्चरितात् ककुदादिमदर्थप्रतिपत्तिः स शब्दः" [ ] १५ ननु अत्र किं गकार-औकार-विसर्जनीयाः ककुदादिमदर्थप्रतिपादकत्वेन शब्दव्यपदेशं लभन्ते, आहोस्वित् तद्व्यतिरिक्तः पद-स्फोटादिः? तत्र न तावद् वर्णा अर्थप्रत्यायकाः यतस्ते किं समुदिता अर्थप्रतिपादकाः, उत व्यस्ताः? यदि व्यस्तास्तदैकेनैव वर्णेन गवाद्यर्थप्रतिपत्तिरुत्पादितेति द्वितीयादिवर्णोच्चारणमनर्थकं भवेत्। अथ समुदिता अर्थप्रत्यायकाः, तदपि न सङ्गतम्। क्रमोत्पन्नाना-मनन्तरविनष्टत्वेन समुदायासम्भवात्। न च युगपदुत्पन्नानां समुदायकल्पना, एकपुरुषापेक्षया २०

१-[illegible] भा० मां०। "[illegible]"—बृ० टि०। "[illegible]"—भ० मां० टि०। २ "[illegible] पुरुष[illegible]"—भां० टि०। ३ [illegible]—"शब्द"[illegible]—मां० टि०। ४—[illegible]—भां०। ५ [illegible] ३३।

६ "[illegible] गकार-[illegible]-[illegible]-[illegible] [illegible] भवति स शब्दः"—[illegible] पृ० ११ पं० १५। अनेकान्तज० पृ० ४४ प्र० पं० १० भाग०।

७ "अथ 'गौः' इत्यत्र कः शब्दः? गकार-औकार-विसर्जनीया इति भगवान् उपवर्षः"—शाबर० पृ० १० पं० ११। प्रमेयक० पृ० ११६ प्र० पं० ५। स्याद्वादर० पृ० ६१७ प्र० पं० ६। [illegible] पृ० ५११ पं० १०।

८ "[illegible] पदादिस्फोट एव, न पुनर्वर्णाः। ते हि किं [illegible] [illegible] वा [illegible]? यदि [illegible] वर्णेन गवाद्यर्थप्रतिपत्तिरुत्पादितेति द्वितीयादिवर्णोच्चारणमनर्थकं भवेत्" [illegible] न्यायमार्तण्डे—पृ० ११३ द्वि० पं० ११।

"यथाहि—न वर्णाः प्रत्येकमर्थविषयां [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पूर्ववर्णाभावात्" इत्यादि—[illegible] पृ० २६९ पं० २।

"न [illegible] [illegible] वर्णेषु [illegible]। न च [illegible] [illegible]" [illegible]
—[illegible] पृ० १।

९ "[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]" [illegible]
"[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]" [illegible]

युगपदुत्पत्त्यसम्भवात् प्रतिनियतस्थान-करण-प्रयत्नप्रभवत्वात् तेषाम्। न च भिन्नपुरुषप्रयुक्त
गकार-औकार-विसर्जनीयानां समुदायेऽप्यर्थप्रतिपादकत्वं दृष्टम् प्रतिनियतक्रमवर्णप्रतिपत्तुरेवा-
स्मादित्येवं शाब्द्याः प्रतिपत्तेः संवेदनात्। न चान्त्यो वर्णः पूर्ववर्णानुगृहीतो वर्णानां क्रमोत्पादे
सत्यर्थप्रत्यायकः, पूर्ववर्णानामन्त्यवर्णं प्रत्यनुग्राहकत्वायोगात् यतो नान्त्यवर्णं प्रति जनकत्वं
५ पूर्ववर्णानां तदुपकारित्वम् वर्णाद् वर्णोत्पत्तेरभावात्—प्रतिनियतस्थान-करणादिसम्भवाद् वर्णा-
नाम् वर्णाभावेऽपि च वर्णोत्पत्तिदर्शनाच्च वर्णजन्यत्वम्। अथार्थज्ञानोत्पत्तौ सहकारित्वं पूर्वव-
र्णानामन्त्यवर्णं प्रत्युपकारकत्वम्, एतदप्ययुक्तम्; अविद्यमानानां सहकारित्वानुपपत्तेः। अत एव
प्राक्तनवर्णविध्वंसिनामपि सहकारित्वमयुक्तम्। न च पूर्ववर्णसंवेदनप्रभवसंस्कारास्ते [illegible]
प्रतिपद्यन्ते, यतः संस्काराः स्वोत्पादकविज्ञानविषयस्मृतिहेतवो नार्थान्तरज्ञानमुत्पादयितुं समर्थाः-
१० नहि घटज्ञानप्रभवः संस्कारः पटे स्मृतिं विदधद् दृष्टः। न च तत्संस्कारप्रभवाः स्मृतयः सहायतां
प्रतिपद्यन्ते, युगपदयुगपद्विकल्पानुपपत्तेः। न हि स्मृतीनां युगपदुत्पत्तिः अयुगपदुत्पन्नानां चाऽव-
स्थितिरस्ति। न च समस्तसंस्कारप्रभवैका स्मृतिस्तत्सहकारिणी, परस्परविरुद्धानेकवर्णानु-
भवप्रभूतसंस्काराणामन्येकस्मृतिजनकत्वप्रसक्तेर्नानेकवर्णसंस्कारजत्वं स्मृतेः [illegible]
युक्तोऽस्या अन्त्यवर्णसहकारित्वम्। न चान्यविषया स्मृतिरन्यत्र प्रतिपत्तिं जनयति [illegible]
१५ [illegible] खदिरच्छेदक्रियाजनकत्वप्रसक्तेः। न चान्यवर्णनिरपेक्ष एव 'गौः' इत्यत्रान्त्यो वर्णः ककुदा-
दिमदर्थप्रत्यायकः पूर्ववर्णोच्चारणवैयर्थ्यप्रसक्तेः गकाराद्यन्तव्यवस्थितस्यापि तत्प्रत्यायकत्वप्रसक्तेश्च
तस्मान्न वर्णाः समस्त-व्यस्ता अर्थप्रत्यायकाः सम्भवन्ति।

अस्ति च गवादिशब्देभ्यः ककुदादिमदर्थप्रतिपत्तिरिति तदन्यथानुपपत्त्या वर्णव्यतिरिक्तोऽर्थ-
प्रतिपत्तिहेतुः स्फोटात्मा शब्दो ज्ञायते। श्रोत्रविज्ञाने च वर्णव्यतिरिक्तः स्फोटात्मा निरवयवोऽक्रमः
२० [illegible] प्रत्यक्षतोऽपि सिद्धिः। तथाहि—श्रवणव्यापारानन्तरमाविर्भवदविभाग[illegible]
[illegible], न चासौ वर्णविषया, वर्णानां परस्परव्यावृत्तरूपत्वात् एकाकारावभासजनकत्वविरोधात्
[illegible]विषयत्वानुपपत्तेः। न चेयं सामान्यविषया, वर्णव्यक्तिभेदेनापि [illegible]
[illegible] औकार विसर्जनीयेष्वनवभासनात् वर्णत्वस्य च प्रतिनियतार्थप्रत्यायकत्वायोगात्। न
चेयं भ्रान्ता, [illegible]। न [illegible] स्फोटात्मनः [illegible]
२५ [illegible]। [illegible] स्फोटाभ्युपगमोऽभ्युपगन्तव्यः [illegible]
[illegible]। न च वर्णेभ्यो व्यतिरिक्तः नित्यः [illegible] तदैव [illegible]
[illegible] ककुदादिमदर्थप्रतिपत्तिर्न स्यात् [illegible]
[illegible]। [illegible] गोशब्दात् [illegible]
[illegible] स्फोटात्मकः शब्दो [illegible] प्रतिपत्तव्यः। [illegible]
३० [illegible]।

[illegible]

[वर्णेषु वाचकत्वमभ्युपगम्य स्फोटे दत्तविरमतो वैशेषिकमतस्य वर्णनम्]

ते त्वाहुः—एकदा प्रादुर्भूता वर्णाः स्वार्थप्रतिपादका न भवन्तीत्यत्राविप्रतिपत्तिरेव । क्रमप्रादुर्भूतानां न समुदाय इत्यत्राप्यविप्रतिपत्तिरेव । अर्थप्रतिपत्तिस्तु उपलभ्यमानात् पूर्ववर्णध्वंसविशिष्टादन्त्यवर्णात्[1] । न चाभावस्य सहकारित्वं विरुद्धम् वृन्त-फलसंयोगाभावस्येवाऽप्रतिबद्धगुरुत्वप्रपतनक्रियाजनने, एवं चोत्तरसंयोगं निर्वर्त्तत् प्राक्तनसंयोगाभावविशिष्टं कर्म परमाण्वग्निसंयोगश्च[2] ५ परमाणौ तत्तत्पूर्वरूपप्रध्वंसविशिष्टो रक्ततामुत्पादयन् ।

यद्वा उपलभ्यमानोऽन्त्यो वर्णः पूर्ववर्णविज्ञानाभावविशिष्टः पदरूपतामासादयन् पदार्थे प्रतिपत्तिं जनयति प्राक्तनवर्णसंवित्प्रभवसंस्कारसव्यपेक्षो वा ? न च संस्कारस्य विषयान्तरे कथं विज्ञानजनकत्वमिति प्रेर्यम् तद्भावभावितयोऽर्थप्रतिपत्तेरुपलब्धेः पूर्ववर्णविज्ञानप्रभवसंस्कारश्चान्त्यवर्णसहायतां पूर्वपूर्वसंस्कारप्रभवतया प्रणालिकया विशिष्टः समुत्पन्नः सन् प्रतिपद्यते । तथाहि—१० प्रथमवर्णे तावद् विज्ञानम् तेन च संस्कारो जन्यते ततो द्वितीयवर्णविज्ञानम् तेन पूर्ववर्णविज्ञानाऽऽहितसंस्कारसहितेन विशिष्टः संस्कारो जन्यते ततस्तृतीयवर्णे ज्ञानम् तेन पूर्वसंस्कारविशिष्टेनापरो विशिष्टतरः संस्कारो निर्वर्त्यत इति यावदन्त्यः संस्कारोऽर्थप्रतिपत्तिजनकान्त्यवर्णसहायः तथाभूतसंस्कारप्रभवस्मृतिसव्यपेक्षो वाऽन्त्यो वर्णः पदरूपः पदार्थप्रतिपत्तिहेतुः ।

अथवा शब्दार्थोपलब्धिनिमित्ताऽदृष्टनियमादविनष्टा एव पूर्ववर्णसंवित्प्रभवाः संस्कारा अन्त्य- १५ संस्कारं विदधति तस्मात् पूर्ववर्णेषु स्मृतिरुपजाता अन्त्यवर्णेनोपलभ्यमानेन सहार्थप्रतिपत्तिमुत्पादयति, वाक्यार्थप्रतिपत्तौ वाक्यस्याप्ययमेव न्यायोऽङ्गीकर्त्तव्यः । वर्णाद् वर्णोत्पत्त्यमानप्रतिपादनं च सिद्धसाधनमेव । तदेवं यथोक्तसहकारिकारणसव्यपेक्षाद् अन्त्याद् वर्णाद् अर्थप्रतिपत्तिरन्वय-व्यतिरेकाभ्यामुपजायमानत्वेन निश्चीयमाना स्फोटपरिकल्पनां निरस्यति तदभावेऽप्यर्थप्रतिपत्तेरुक्तप्रकारेण सम्भवेऽन्यथानुपपत्तेः प्रक्षयात् । न हि दृष्टादेव कारणात् कार्योत्पत्तावदृष्टतदन्तरपरि- २० कल्पना युक्तिसङ्गता अतिप्रसङ्गात् ।

[illegible] २५

---

१ "प्रतीयमानात् पूर्ववर्णध्वंसविशिष्टात् अन्त्यवर्णाद् अर्थप्रतीतेरभ्युपगमात् उक्तदोषाभावः । न चाभावस्य सहकारित्वं विरुद्धम्-वृन्तफलसंयोगाभावस्य अप्रतिबद्धगुरुत्वफलप्रपतनक्रियाजनने तद्दर्शनात्" इत्यादिकोऽयं वैशेषिकपक्षः सखोऽक्षरशः प्रमेयकमलमार्त्तण्डेऽपि निर्दिष्टः–पृ० १३१ प्र० पं० १८–पृ० १३१ द्वि० पं० ८ ।

"शब्दाच्च शब्दनिष्पत्तिं कथयति—शब्दात् संयोगविभागनिष्पन्नात् वीचीसन्तानवत् शब्दसन्तानः यथा जलवीच्या तदव्यवहिते देशे वीच्यन्तरमुपजायते ततोऽपि अन्यत् ततोऽपि अन्यत् इत्यनेन क्रमेण वीचीसन्तानो भवति तथा शब्दात् उत्पन्नात् तदव्यवहिते देशे शब्दान्तरम्—ततोऽपि अनयोर्गमनागमनाभावात् प्राप्तस्यैव उपलब्धिरिति—ततोऽपि अन्यत् ततोऽपि अन्यत् इत्यनेन क्रमेण शब्दसन्तानो भवति । एवं सन्तानेन श्रोत्रदेशे समागतस्य अन्त्यशब्दस्य ग्रहणम्"–प्रशस्त० कं० पृ० २८९ पं० १०–१५ । २ "परमाणुगत"–बृ० मां० डि० । ३–ति प्रेर्यं स्फोटवादिना चिन्तयार्थे–भा० मा० । अत्र 'स्फोटकादिना' इति टिप्पणमपि पाठे प्रविष्टम् । ४ "स्फोटवादिना" इति शेषः–बृ० मां० डि० । ५–यार्थाप्र–आ० हा० । ६ "अथ प्रथमशब्दवर्णज्ञानम् तदनु संस्कारः तदनु द्वि(द्वि)तीयवर्णज्ञानम् तेन प्राक्तनेन संस्कारेण अन्यो विशिष्टः संस्कारो जन्यते इत्यनेन क्रमेण अन्ते निखिलवर्णविषयः संस्कारो जातः" इत्यादि प्रशस्त० कं० पृ० २६९ पं० ९–११ । ७–दन्त्य सं–आ० ।

"क्रमानुग्रहसामर्थ्यो वर्णोऽन्त्यः प्रतिपादकः" ॥ ९७ ॥

"एष एव तु संस्कार इति केचित् प्रचक्षते" ॥ ९८ ॥–श्लो० वा० स्फोट० पृ० ५३५ ।

८ तदभावे "स्फोटाद"भावे–बृ० मां० डि० । ९ "वर्णा."–बृ० मां० डि० । १०–प्रणत्वात् । आ० ।

त्वात् स्फोटस्य तच्चैतन्याभ्युपगमे वा स्वशास्त्रविरोधः। नापि स्थितस्थापकः तस्यापि मूर्त्तद्रव्यवृत्ति-
त्वात् स्फोटस्य चामूर्त्तत्वाभ्युपगमात्। किञ्च, असौ संस्कारः स्फोटस्वरूपः, तद्धर्मो वा? न तावदाद्यः
कल्पः स्फोटस्य वर्णोत्पाद्यत्वप्रसक्तेः। नापि द्वितीयः व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पानुपपत्तेः।
तथाहि–असौ धर्मः स्फोटाद् व्यतिरिक्तः, अव्यतिरिक्तो वा? यद्यव्यतिरिक्तस्तदा तत्करणे स्फोट
५एव कृतो भवेदिति तस्यानित्यत्वप्रसक्तेः स्वाभ्युपगमविरोधः। अथ व्यतिरिक्तस्तदा तत्सम्बन्धा-
नुपपत्तिस्तदनुपकारकत्वात्, तस्योपकाराभ्युपगमे व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तविकल्पः तत्रापि पूर्वोक्त एव
दोषोऽनवस्थाकारी। न च व्यतिरिक्तधर्मसद्भावेऽपि स्फोटस्यानभिव्यक्तिस्वरूपव्यवस्थितस्य पूर्ववदर्थ-
प्रतिपत्तिहेतुत्वम्, तत्स्वरूपत्यागे वाऽनित्यत्वप्रसक्तिः। अथ न व्यतिरिक्तसंस्कारकृतमुपकारमपेक्ष्य
पूर्वरूपपरित्यागादसावर्थप्रतिपत्तिं जनयति किन्तु संस्कारसहायोऽविचलितरूप एव एककार्यका-
१०रित्वस्यैव सहकारित्वाभ्युपगमात्; नन्वेवं वर्णानामप्यन्यकृतोपकारनिरपेक्षाणामेककार्यनिर्वर्त्तन-
लक्षणसहकारित्ववत् सहकारिसहितानामर्थप्रतिपत्तिजनने किमपरस्फोटकल्पनयाऽप्रामाणिकया का-
र्यम्? किञ्च, पूर्ववर्णैः संस्कारः स्फोटस्य क्रियमाणः किमेकदेशेः क्रियते, सर्वात्मना वा? यद्येक-
देशैस्तदा ते ततोऽर्थान्तरभूताः, अनर्थान्तरभूता वा? यद्यर्थान्तरभूतास्तदा तेषां तदनुपकारे
सम्बन्धासिद्धिः उपकारे व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पोक्तदोषानुषङ्गः। न च समवायाद् अनुपका-
१५रेऽपि तेषां तत्सम्बन्धिता तस्यानभ्युपगमात्, परैरभ्युपगमे च स्वकृतान्तविरोधः अर्थान्तरभूतत्वे
चैकदेशानाम् तेभ्य एवार्थप्रतिपत्तेः न स्फोटस्यार्थप्रत्यायकता। अपि चैकदेशानामर्थप्रतिपत्तिहे-
तुत्वाभ्युपगमे च वरं वर्णानामेव तदभ्युपगतम् एवं लोकप्रतीतिरनुसृता भवेत्। अथाव्यतिरिक्ता-
स्तदेकदेशास्तदा स्फोटस्यैकेनैव संस्कृतत्वात् अपरवर्णोच्चारणवैयर्थ्यम्। न च पूर्ववर्णसंवित्प्रभव-
संस्कारसहितः तत्स्मृतिसहितो वाऽन्त्यवर्णः स्फोटसंस्कारकः एवंभूतेभ्यास्तार्थप्रतिपत्तिजननेऽपि
२०तत्किमतियानामायात् स्फोटपरिकल्पना निरवसरैव।

अपि च, स्फोटसंस्कारः स्फोटविषयसंवेदनोत्पादनम्, उतावरणापनयनम्? यद्यावरणा-
पनयनम् तदेकदेशस्याऽऽवरणापगमे सर्वदेशावस्थितेः सर्वदा व्यापिनित्यरूपतयोपलभ्येत तत्र
[illegible] सर्वत्र सर्वदोपलभ्यस्वभावात् अनुपलभ्यस्वभावत्वे वा
न केनचित् कदाचित् कुत्रचिदुपलभ्येत। अथैकदेशावरणापगमः क्रियते, नन्वेवमावृतोऽनावृतश्चेत
१५[illegible]। अथ निर्भागस्यैकत्रानावृतः सर्वत्रानावृतोऽभ्युपगम्यते तदा तद्व-
[illegible] यथा च निरवयवस्यैकत्रावृतः सर्वत्रावृतः तथा सर्व-
[illegible] सर्वत्रावृतः इति मनागपि नोपलभ्येत। किञ्च, एकदेशाः स्फोटस्वरूपान्तरम्,
[illegible] वा? अर्थान्तरत्वेऽपि [illegible] वा? [illegible]
[illegible]। अथ [illegible] यदि गोशब्द[illegible] गोशब्दे[illegible]। अथ
२०[illegible] भवेयुः। अथाव्यतिरिक्तास्तदा स्फोट एव [illegible] इति
[illegible] पूर्वोक्त एव दूषणम्। किञ्च, एकदेश[illegible]
[illegible]। अथ स्फोट[illegible] गोऽपि न पुनः
[illegible]
[illegible] अनुपलभ्यस्वभावत्वे [illegible]
२५[illegible]।

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

ति न तत्परिकल्पना ज्यायसी । यदपि 'प्रत्यभिज्ञानं स्फोटस्य नित्यत्वप्रसाधकं वर्णोच्चारणाद् ...ागव्यस्तित्वमवबोधयति' इत्यभ्युपगतम्, तदपि—प्रत्यभिज्ञानस्य सादृश्यनिबन्धनत्वेनात्र विषये प्रतिपादितत्वात्—असङ्गतम् । एवं गोव्यक्तौ संकेतितात् गोशब्दात् गोव्यक्त्यन्तरे अन्यथाऽन्यदा च नित्यत्वमन्तरेणापि प्रतिपत्तिर्यथा सम्भवति तथा प्रतिपादितम् प्रतिपादयिष्यते च । नातो- ५ ऽपि स्फोटस्य प्राग् व्यञ्जकात् सत्त्वसिद्धिरिति ।

"नादेनाऽऽहितबीजायामन्त्येन ध्वनिना सह ।
आवृत्तपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवभासते ॥" [वाक्यप० प्र० का० श्लो० ८५]

इति भर्तृहरिवचो निरस्तं द्रष्टव्यम् ।

यदपि 'विभिन्नतनुषु वर्णेष्वभिन्नाकारं श्रोत्रान्वयव्यतिरेकानुविधाय्यपरं स्फोटस्वभावमव- १० बोधयति' इत्युक्तम् तदप्यसारम् । घटादिशब्देषु परस्परव्यावृत्तानेकवर्णव्यतिरिक्तस्य स्फोटात्मनो- ऽर्थप्रत्यायकस्यैकस्यावयवप्रतिपत्तिविषयत्वेनाप्रतिभासनात् । न चाभिप्रायमात्रमात्राद् अभिन्नार्थ- व्यवस्था, अन्यथा दूराद् अविरलानेकतरुष्वेकतरुबुद्धेरेकत्वव्यवस्थाप्रसक्तेः न चाविरलानेकतरुष्वे- कत्वबुद्धेर्बाध्यमानत्वात् नैकत्वव्यवस्थापकत्वम् स्फोटप्रतिभासबुद्धेरपि बाध्यत्वस्य दर्शितत्वात् । न चैकत्वावभासः स्फोटस्वभावमन्तरेणानुपपन्नः, वर्णान्त्यवर्णविषयत्वेनाप्यैकत्वावभासस्योपपद्य- मानत्वात् निरवयवस्यावभासस्य नित्यत्वादिधर्मोपेतस्य स्फोटस्यैकावभागज्ञानेनाननुभवात् अन्यथावभा- सस्य चान्यथाभूतार्थव्यवस्थापकत्वात् व्यवस्थापनेऽतिप्रसङ्गात् अतएव इदं स्वतन्त्रत्वेन सदाश्रितत्वेन वाच्यप्रत्यये प्रतिभासत इति न सद्भावः स्फोटे उत्पादयितुं शक्यः । तत्र स्फोटात्मा शब्दो वर्णेभ्यो व्यतिरिक्तः । अथ तद्व्यतिरिक्तोऽसावभ्युपगम्यते तदा वर्णमात्रत्वे तद्वानाभ्यनुमतिः तदेकत्वे वा वर्णानामप्येकत्वप्रसक्तिः ।

[सानुपूर्विकनित्यवर्णवाचकत्ववादं मीमांसकमतमुपन्यस्य तन्निरसनम्]

अथ गकाराद्यानुपूर्वीविशिष्टोऽन्त्यो वर्णः विशिष्टानुपूर्वीका वा गकारौकारविसर्जनीयाः शब्दः तथा च मीमांसकाः प्राहुः—

"यावन्तो यादृशा ये च यदर्थप्रतिपादकाः ।
वर्णाः प्रज्ञातसामर्थ्यास्ते तथैवावबोधकाः ॥"
[श्लो० वा० स्फोटवा० श्लो० ६९] इति ।

एतदपि न सम्यक् । यतः आनुपूर्वी यद्यनर्थान्तरभूता तदा वर्णा एव आनुपूर्वी, ते च ... समस्ता वा अर्थप्रत्यायका न भवन्तीत्यावेदितम् । अथार्थान्तरभूता तदा वक्तव्यम् किं ... अनित्या वा ? न तावदनित्या व्यक्तिकालविरोधात्—वैदिकानुपूर्व्या नित्यत्वेनाभ्युपगमात् ।

"यत्ना नहि नाम केचित्त स्थानकरणेन प्रयत्नतः ।"
[श्लो० वा० शब्दनित्य० श्लो० २८८]

त्वात् स्फोटस्य तच्चैतन्याभ्युपगमे वा स्वशास्त्रविरोधः। नापि स्थितस्थापकः तस्यापि मूर्तद्रव्यवृत्तित्वात् स्फोटस्य चामूर्तत्वाभ्युपगमात्। किञ्च, असौ संस्कारः स्फोटस्वरूपः, तद्धर्मो वा? न तावदाद्यः कल्पः स्फोटस्य वर्णोत्पाद्यत्वप्रसक्तेः। नापि द्वितीयः व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पानुपपत्तेः। तथाहि–असौ धर्मः स्फोटाद् व्यतिरिक्तः, अव्यतिरिक्तो वा? यद्यव्यतिरिक्तस्तदा तत्करणे स्फोट
५एव कृतो भवेदिति तस्यानित्यत्वप्रसक्तेः स्वाभ्युपगमविरोधः। अथ व्यतिरिक्तस्तदा तत्सम्बन्धानुपपत्तिस्तदनुपकारकत्वात्, तस्योपकाराभ्युपगमे व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तविकल्पः तत्रापि पूर्वोक्त एव दोषोऽनवस्थाकारी। न च व्यतिरिक्तधर्मसद्भावेऽपि स्फोटस्यानभिव्यक्तिस्वरूपस्यावस्थितस्य पूर्ववदर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वम्, तत्स्वरूपत्यागे वाऽनित्यत्वप्रसक्तिः। अथ न व्यतिरिक्तसंस्कारकृतमुपकारमपेक्ष्य पूर्वरूपपरित्यागादसावर्थप्रतिपत्तिं जनयति किन्तु संस्कारसहायोऽविचलितरूप एव एककार्यका-
१०रित्वस्यैव सहकारित्वाभ्युपगमात्; नन्वेवं वर्णानामप्यन्यकृतोपकारनिरपेक्षाणामेककार्यनिर्वर्तनलक्षणसहकारित्ववत् सहकारिसहितानामर्थप्रतिपत्तिजनने किमपरस्फोटकल्पनयाऽप्रमाणिकया कार्यम्? किञ्च, पूर्ववर्णैः संस्कारः स्फोटस्य क्रियमाणः किमेकदेशैः क्रियते, सर्वात्मना वा? यद्येकदेशैस्तदा ते ततोऽर्थान्तरभूताः, अनर्थान्तरभूता वा? यद्यर्थान्तरभूतास्तदा तेषां तदनुपकारे सम्बन्धासिद्धिः उपकारे व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पोक्तदोषानुषङ्गः। न च समवायात् अनुपका-
१५रेऽपि तेषां तत्सम्बन्धिता तस्यानभ्युपगमात्, परैरभ्युपगमे च स्वकृतान्तविरोधः अर्थान्तरभूतत्वे चैकदेशानाम् तेभ्य एवार्थप्रतिपत्तेः न स्फोटस्यार्थप्रत्यायकता। अपि चैकदेशानामर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वाभ्युपगमे च वरं वर्णानामेव तदभ्युपगतम् एवं लोकप्रतीतिरनुसृता भवेत्। अथाव्यतिरिक्तास्तदेकदेशास्तदा स्फोटस्यैकेनैव संस्कृतत्वाद् अपरवर्णोच्चारणवैयर्थ्यम्। न च पूर्ववर्णसंवित्प्रभवसंस्कारसहितः तत्स्मृतिसहितो वाऽन्त्यवर्णः स्फोटसंस्कारकः एवंभूतैस्यार्थप्रतिपत्तिजननेऽपि
२०शक्तिप्रतिघाताभावात् स्फोटपरिकल्पना निरवसरैव।

अपि च, स्फोटसंस्कारः स्फोटविषयसंवेदनोत्पादनम्, उतावरणापनयनम्? यद्यावरणापनयनम् तदैकत्रैकदाऽऽवरणापगमे सर्वदेशावस्थितैः सर्वदा व्यापिनित्यरूपतयोपलभ्येत तत्र [illegible] वा [illegible] त्येन [illegible] न्यय- [illegible]
स्याऽशेषदेशावस्थितैरुपलब्धिप्रसक्तिः यथा च निरवयवत्वादेकत्रानावृतः सर्वत्रानावृतस्तथा तर्हि एकत्राप्यावृतः सर्वत्रैवावृतः इति मनागपि नोपलभ्येत। किञ्च, एकदेशाः स्फोटादर्थान्तरम्, अनर्थान्तरं वा? अर्थान्तरत्वेऽपि शब्दस्वभावाः अशब्दात्मका वा? यद्यशब्दात्मका नार्थप्रतिपत्तिहेतवः। अथ शब्दस्वभावास्तत्रापि यदि गोशब्दस्वभावास्तदा गोशब्दानेकत्वप्रसक्तिः। अथ
२०अगोशब्दस्वरूपा न तर्हि गवार्थप्रत्यायका भवेयुः। अथाव्यतिरिक्तास्तदा स्फोट एव संस्कृत इति सर्वदेशावस्थितैर्व्यापिनस्तस्य प्रतिपत्तिप्रसक्तिरिति पूर्वोक्तमेव दूषणम्। किञ्च, एकदेशावरणापाये स्फोटस्य खण्डशः प्रतिपत्तिः प्रसज्येत। अथ स्फोटविषयसंवित्पादस्तत्संस्कारः सोऽपि न युक्तः वर्णानामर्थप्रतिपत्तिजनन इव स्फोटप्रतिपत्तिजननेऽपि सामर्थ्यासम्भवात् न्यायस्य समानत्वात्। यदि च स्फोट उपलम्भस्वभावः सर्वदोपलभ्येत, अनुपलभ्यस्वभावश्चेत् आवरणापगमेऽपि स्वभावा-
२५नतिक्रमाद् मनागपि नोपलभ्येत इत्यर्थप्रतिपत्तितः शब्दव्यवहारविलोपः।

अनेनैव न्यायेन वायूनामपि तैरुक्तं व्यञ्जकत्वमयुक्तम् वायूनां च व्यञ्जकत्वपरिकल्पने वर्णैरेव व्यवसितिः स्फोटाभिव्यक्त्यर्थप्रतिपादने वा तेषामनुपयोगात् भिन्ने च स्फोटस्य वर्णोच्चारणात् प्राक् सद्भावे वर्णानाम् वायूना वा व्यञ्जकत्वं परिकल्प्येत। न च तत्सद्भावः कुतश्चित् प्रमाणात्

१–वाऽन्त्यवा–[illegible]। [illegible]–धर्मो वा स्व–मु० स० मा० बा०। ३ तद् "[illegible]"–[illegible] टि०। ४–[illegible]–मु०। ५–[illegible] [illegible] मा०। ६ अत्र "[illegible]"–मु० स० टि०। ७–[illegible]। ८ "[illegible]"–मु० [illegible] टि०। ९ प्र० पृ० पं० २२। १०–[illegible]। ११ "[illegible]"–मु० स० मा० टि०। १२ "[illegible]"–मु० स० मा० टि०।

ति न तत्परिकल्पना ज्यायसी। यदपि 'प्रत्यभिज्ञायमानं स्फोटस्य नित्यत्वमवगमयत् वर्णोच्चारणात् भागव्यतिरेकमवबोधयति' इत्यभ्युपगतम्, तदपि—प्रत्यभिज्ञानस्य सादृश्यनिबन्धनत्वेनाप्युपपत्तेः प्रतिपादितत्वात्—असङ्गतम्। एकगोव्यक्तौ संकेतिताद् गोशब्दात् गोव्यक्त्यन्तरे अन्वयशब्दवत् व नित्यत्वमन्तरेणापि प्रतिपत्तिर्यथा सम्भवति तथा प्रतिपादितम् प्रतिपादयिष्यते च। नापि स्फोटस्य प्राग् व्यञ्जकात् सत्त्वसिद्धिरिति।   ५

"नादेनाऽऽहितबीजायामन्त्येन ध्वनिना सह।
आवृत्तपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवभासते॥"   [वाक्यप० प्र० का० श्लो० ८५]

इति भर्तृहरिवचो निरस्तं द्रष्टव्यम्।

यदपि 'विभिन्नतनुषु वर्णेष्वभिन्नाकारं श्रोत्रान्वयव्यतिरेकानुविधायिप्रत्ययं स्फोटसद्भावमवबोधयति' इत्युक्तम् तदप्यसारम्। घटादिशब्देषु परस्परव्यावृत्तानेकवर्णव्यतिरिक्तस्य स्फोटात्मनो १० ऽर्थप्रत्यायकस्यैकस्याध्यक्षप्रतिपत्तिविषयत्वेनाप्रतिभासनात्। न चाभिन्नाकारावभासमात्राद् अभिन्नार्थव्यवस्था, अन्यथा दूराद् अविरलानेकतरुष्वेकतरुबुद्धेरेकत्वव्यवस्थाप्रसक्तेः न चाविरलानेकतरुष्वेकतरुबुद्धेर्बाध्यमानत्वात् नैकत्वव्यवस्थापकत्वम् स्फोटप्रतिभासबुद्धेरपि बाध्यत्वस्य दर्शितत्वात्। न चैकत्वावभासः स्फोटसद्भावमन्तरेणानुपपन्नः, वर्णेष्वप्यन्त्यवर्णविषयत्वेनाप्येकत्वावभासस्योत्पद्यमानत्वात् निरवयवस्याक्रमस्य नित्यत्वादिधर्मोपेतस्य स्फोटस्यैकावभासज्ञानेनाननुभवात् अन्यथा एक- १५ त्वस्य चान्यथाभूतार्थव्यवस्थापकत्वात् व्यवस्थापनेऽतिप्रसङ्गात् अथवदि द्रव्यं स्वरूपत्वान्येन तदाश्रितत्वेन वाच्यसमत्वे प्रतिभासत इति न तत्त्वायः स्फोटे उरादयितुं शक्यः। तत्र स्फोटात्मा शब्दो वर्णेभ्यो व्यतिरिक्तः। अथ तद्व्यतिरिक्तोऽसावभ्युपगम्यते तदा वर्णनानात्वे तस्याप्यनेकत्वं तदेकत्वे वा वर्णानामप्येकत्वप्रसक्तिः।

[सानुपूर्विकनित्यवर्णवाचकत्ववादिनां मीमांसकमतस्योपन्यस्य तन्निरसनम्]   २०

अथ गकाराद्यानुपूर्वीविशिष्टोऽन्त्यो वर्णः विशिष्टानुपूर्वीका वा गकारौकारविसर्जनीयाः शब्दः। तथा च मीमांसकाः प्राहुः—

"यावन्तो यादृशा ये च यदर्थप्रतिपादकाः।
वर्णाः प्रज्ञातसामर्थ्यास्ते तथैवावबोधकाः॥"

[श्लो० वा० स्फोटवा० श्लो० ६९] इति।   २५

एतदपि न सम्यक्। यतः आनुपूर्वी यदि वर्णार्थान्तरभूता तदा वर्णा एव आनुपूर्वी, ते च व्यस्ताः समस्ता वा अर्थप्रत्यायका न भवन्तीत्यावेदितम्। अथार्थान्तरभूता तदा वक्तव्यम् सा नित्या, अनित्या वा? न तावन्नित्या स्वसिद्धान्तविरोधात्—वैदिकानुपूर्व्या नित्यत्वेनाभ्युपगमात्।

"वक्ता नहि क्रमं कश्चित् स्वातन्त्र्येण प्रपद्यते।"

[श्लो० वा० शब्दनित्य० श्लो० २८८]   ३०

---

१ "चित्र दन्तस्य सितत्वं ... । सितत्वं च सितं तस्य कोऽन्यथास्य निवर्तनम्"॥
"तस्मात् सर्वेषु ... चैतना। ... "॥

शाबर्श० का० २११०-२११८ पृ० ५९०-५९१।

२ तत्त्वसं० पृ० ७११ का० २७११। न्यायम० पृ० ११३ द्वि० पं० ३। "बुद्धौ शब्दोऽवधार्यते"—वाक्यप०। शास्त्रदी० पृ० ४३६ पं० ७। न्यायकुमुद० पृ० ७४९ प्र० पं० ५। सर्वदर्शनसं० द० १३ पं० १८६ पृ० ३०३१। ३ "पूर्वे ... इति ... "—इत्यादिकं स्फोटप्रतिविधानावसरे—न्यायकुमुद० पृ० ७४९ प्र० पं० ८।

"यथा हि ... । (पूर्वं पश्चात्) ... एव ... "॥ ...॥
"... ते। ... (?)॥ ...॥

४ यदर्थप्रतिपादने—मुद्रितग्रन्थे ... प्रका० ...
... —...
द्वि०। ...

त्वात् स्फोटस्य तथैतन्नाभ्युपगमे वा स्वाभ्युपगमविरोधः। नापि स्थिरस्वभावः [illegible]
त्वात् स्फोटस्य चामूर्तस्याभ्युपगमात्। किञ्च, धर्मो संस्कारः स्फोटस्वरूपः तद्धर्मो वा? न [illegible]
रूपः स्फोटस्य वर्णोत्पाद्यत्वप्रसक्तेः। नापि द्वितीयः व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पानुपपत्तेः।
तथाहि-असौ धर्मः स्फोटात् व्यतिरिक्तः, अव्यतिरिक्तो वा? यद्यव्यतिरिक्तस्तदा तत्करणे स्फोट
५एव कृतो भवेदिति तस्यानित्यत्वप्रसक्तेः स्वाभ्युपगमविरोधः। अथ व्यतिरिक्तस्तदा [illegible]
नुपपत्तिस्तदनुपकारकत्वात्, तस्योपकाराभ्युपगमे व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तविकल्पः तदपि पूर्वोक्त एव
दोषोऽनवस्थाकारी। न च व्यतिरिक्तधर्मसद्भावेऽपि स्फोटस्यानभिव्यक्तस्वरूपस्य [illegible] पूर्ववत्
प्रतिपत्तिहेतुत्वम्, तत्स्वरूपत्यागे वाऽनित्यत्वप्रसक्तिः। अथ न व्यतिरिक्तसंस्कारकरणमुपकारस्तेन
पूर्ववत्स्वरूपत्यागादर्थप्रतिपत्तिं जनयति किन्तु संस्कारसहायोऽभिव्यक्त एव [illegible]
१०[illegible]स्यैव सहकारित्वाभ्युपगमात्। नन्वेवं वर्णानामप्यनुपकृतोपकारविशेषाणामेका[illegible]
[illegible]सहकारित्ववत् सहकारिसन्निधानादर्थप्रतिपत्तिजनने किमपरस्फोटकल्पनयाऽप्रमाणिकया [illegible]
[illegible]? किञ्च, पूर्ववर्णैः संस्कारः स्फोटस्य क्रियमाणः किमेकदेशेन क्रियते, सर्वात्मना वा? एक
देशेन्यदा ते तस्योऽर्थान्तरभूताः, अनर्थान्तरभूता वा? यद्यर्थान्तरभूतास्तदा तेषां तदुपकारे
[illegible] उपकारे व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पोक्तदोषानुषङ्गः। न च समवायात् [illegible]
१५[illegible] परैरभ्युपगमे च स्वकृतान्तविरोधः [illegible]
[illegible] स्फोटस्यार्थप्रत्यायकता। अपि चैकदेशानाम[illegible]
[illegible]
[illegible]। न च पूर्ववर्ण[illegible]
[illegible]
२०[illegible]

[illegible]

[illegible]

नियतेन प्रतिनियतयोग्यताया अभावः, एतावताऽपि प्रतिनियतयोग्यतापत्तौ भावनागुपलब्धेः । तथापि—एव स्वोदयं इन्द्रियानन्तरमेव क्रियमाणा दृष्टा न अन्यत्र, यत्रैव तन्तुत्वमस्ति तत्रैव क्रियायते पटोत्पादकशक्तिः न तु वीरणादौ तत्र तन्तुत्वाभावात् एवं च यत् यथोपलभ्यते तत् संबन्धानुपपत्त्यम्, दृष्टाऽनुमितानां नियोग-प्रतिषेधानुपपत्तेः । तेन यत्रैव पर्वतादिकं निमित्तं तत्रैव वाचिका शक्तिः सङ्केतेनोद्भाव्यते यत्र तु तादृशं निमित्तं नास्ति तत्र न वाचिका शक्तिरिति[१] न निरन्वयप्रसङ्गरूपपरिकल्पनया प्रयोजनम् । एतान्तनिरूपं तु ज्ञानजनकत्वे सर्वेषां तथोत्पत्तिः । तदुत्पत्तिमात्रायां न कदाचिद् विज्ञानोत्पत्तिरिति प्राक् प्रतिपादितम् । समयबलेन तु शब्दाद् अर्थप्रतिपत्तौ यथासङ्केतं विशिष्टतासम्बन्धेः कार्योत्पत्तौ न कश्चिद् दोषः ।

[अनुमानात् शब्दस्य प्रमाणान्तरत्वप्रसाधनम्]

अत्र यथानुमानात् प्रमाणान्तरं शाब्दम्, अनुमानं हि पक्षधर्मत्वान्वयव्यतिरेकवशात् निश्चयलाभाद् [१०] प्रवर्तते । शाब्दं तु सङ्केतप्रसङ्गाद्... प्रत्यक्षाऽनुमानाऽगोचरेऽर्थे प्रवर्तते । प्रमाणादयति, शाब्दं तु सङ्केतसम्बन्धोपलम्भात् निश्चीयते शब्दस्य स्वाभिव्यक्त्यनिश्चये स्वतोऽन्यभिचारित्वमप्यनुमानस्य त्रिरूपलिङ्गमात्रेणैव पुरुषेण प्रयुज्यते तं तमर्थं प्रति शब्दस्याभिधानमिति । किञ्च, शब्दो यत्र यथार्थं प्रतिपादकत्वेन पुरुषेच्छावशेन जलादिकं प्रतिपादयतीत्यनुमानात् यथासङ्केतं प्रतिपादयति, न त्वेवं धूमादिकं लिङ्गं पुरुषेच्छावशेन [१५] शब्दस्य त्रैरूप्यमस्ति, यतो न तस्य पक्षधर्मता प्रमाणान्तरं सिद्धः शब्दः । न वै शब्दाद् अर्थप्रतिपत्तौ ...

१ नियतशब्दस्य-भां० मां० । २-स्यान्यस्य भां० मां० । ३ पृ० ४१६ पं० १२ । ४-स्वार्थप्र-मा० वा० । ५ "अन्यत् तुल्यं निश्चित्य वदन्नप्यागमेऽनुमानं निराह"-पू० ल० टि० । ... वचनमिदम्-"यदपि उच्यते 'शब्दो हि यत्रैव ... अनुमानप्रमाणान्तरभावि' इति यत् ... यथा धूमादय अतोऽनुमानाद् भेदः' तदपि अनैकान्तिकम्; ६ 'शब्दप्रमाणमनुमानप्रमाणान्तर ... प्रत्ययपरि न तथा धूमादय' इत्यादि— पुरुषेच्छया ... व्यभिचारोऽस्तीति" ॥ इत्यादि । इत्यादिना ... अर्थविनियोगेन प्रतीतिरपि शब्दतः । न धूमादेरीदृशापि व्यभिचारोऽस्तीति —श्लो० वा० शब्द० श्लो० १९ पार्थसा० पृ० ४११ । ... विनियोगेन प्रतीतिरपि शब्दतः ।

७ "तदेवं नियमभेदयुक्त्या इदानीं त्रैलक्षण्यं निराकुर्वन् पक्षधर्मत्वं निराकरोति—

शब्दार्थविशिष्टस्य न शब्दस्यानुमेयता । कथं च पक्षधर्मत्वं शब्दस्येह निरूप्यते ॥
न नियमपूर्वसंबन्धात् काले संबन्धन कश्चित् । राजा भर्ता मनुष्यस्य तेन राज्ञः स उच्यते ॥
पूर्वसिद्धानि शास्त्राणि वा तत्रैव तथा । देशेऽग्निमति धूमस्य संबन्धोऽस्तीति गम्यते ॥
कार्यकारणभावादौ क्रिया सर्वत्र विद्यते । न चानयकाकारं संबन्धोऽस्तीति गम्यते ॥
न चाञ्जनादि संबन्धे प्रतीत्यनुगतोऽपि वा । तस्मान्न पक्षधर्मोऽयमिति शक्यो निरूपणा ॥
निरूपेऽन्यत्र संबन्धे येऽपि तद्विषयात्मना । कदेशु पक्षधर्मत्वं शब्दस्याऽनुपलक्षितम् ॥
तेनैवात्मकृत्यं तु शब्दस्यैव वचनम् । न सङ्ख्यादिवत्नावो नाऽऽगिकुरुषादि तस्य वा ॥
तस्मादुत्पादयत्येव यतोऽर्थविषया(या) मतिम् । तेन तद्विषय शब्द इति धर्मत्वकल्पना ॥
तत्र वाचकतायां च गिराया पक्षधर्मता । न प्रतीयमाना गच्छेत नैवमनुमानता ॥
गमकत्वाच्च धर्मत्वं धर्मत्वाद् गमको यदि । स्यादन्योन्याश्रयत्वं हि तस्माद्भेदेऽपि कल्पना ॥

इत्थं न पक्षधर्मत्वं शब्दस्य इत्याह—

न चाऽगृहीतसंबन्धात् स्वरूपव्यतिरेकत । शब्दं जानन्ति देशाद्य पक्षधर्मत्वमिर्भवेत् ॥
न च स्वरूपमात्रेण धूमादेः पक्षधर्मता । न चापि पूर्वसंबन्धमपेक्षैषा प्रसज्यते ॥
धूमवानयमित्येवमपूर्वस्यापि जायते । पक्षधर्मत्वमस्मिन् निर्देनोपलक्षणात् ॥
न त्वत्र पूर्वसंबन्धादधिका पक्षधर्मता । न चार्थप्रत्ययात् पूर्वमित्यनुमितिर्भवेत् ॥
न च धर्मी गृहीतोऽस्य येन तद्धर्मता भवेत् । पर्वतादिर्यथा देशः प्राग्धर्मस्याऽवधारणात् ॥
यथात्र कथ्यते धर्मी प्रमेयोऽस्य स एव नः । न चाऽनवधृते तस्मिंस्तद्धर्मत्वावधारणात् ॥
प्राक् न चेत् पक्षधर्मत्वात् गृहीतः ... अतः परम् । पक्षधर्मादिनिर्मुक्तेन स्यादनुमानिता ॥

[सूक्ष्मभङ्गानां विशेषेण तत्समर्थकानां योजनानामपेक्षाभेदानां व्यावर्णनम्]

[सूक्ष्मभङ्गानं विशेष तत्समर्थकानां ... प्रथमो भङ्गः । तद्विपर्ययेण तत्प्रतिपादने द्वितीयः ।

तथाहि—सदसत्त्वोपसर्जनसत्त्वप्रतिपादने प्रथमो भङ्गः ... प्रतिपादने न किञ्चित् पदं समर्थम् यतो न तावत् समा-
सयोस्तु धर्मयोः प्राधान्येन गुणभावेन वा प्रतिपादने न किञ्चिद् पदः समर्थम् यतो न तावत् समा-
सपदं तत्प्रतिपादकम् नापि वाक्यं सम्भवति । द्वन्द्वसमासे तावत् षष्ठ्यादिरत्र समर्थः समान्य-
पदार्थप्रधानत्वात् अत्र गौणप्रधानत्वात् । अव्ययीभावोऽपि नात्र प्रवर्तते तत्प्रायार्थऽसम्भवात् ।५
द्वन्द्वसमासे तु यद्यप्युभयपदप्राधान्यम् तथापि द्रव्यवृत्तित्वाच्च प्रकृतार्थप्रतिपादका गुणवृत्तिरपि
द्रव्याश्रितगुणप्रतिपादकः द्रव्यमन्तरेण गुणानां तिष्ठत्यादिक्रियाधारत्वासम्भवात् तस्या द्रव्याश्रित-
त्वाच्च प्रधानभूतयोर्गुणयोः प्रतिपाद्यत्वम् । तत्पुरुषोऽपि नात्र विषये प्रवर्तते तस्याप्युत्तरपदार्थप्र-
धानत्वात् । नापि द्विगुः सङ्ख्यापूर्वपदत्वात् तस्य । कर्मधारयोऽपि न, गुणाधारद्रव्यविषयत्वात् ।
न च समासान्तरसद्भावः येन युगपद् गुणद्वयं प्रधानभावेन सामान्यपदवाच्यं स्यात् अत एव न १०
वाक्यमपि तथाभूतगुणद्वयप्रतिपादकं सम्भवति तस्य पूर्वपदवाच्यार्थत्वात् । न च केवलं पदम् वाक्यं
वा लोकप्रसिद्धम् तस्यापि परस्परापेक्षद्रव्यादिविषयतया तथाभूतार्थप्रतिपादकत्वायोगात् ।

न च "तौ सत्" [३।२।१२७। सिद्धान्तको० सं० ३१०६] इति शतृ-शानचोरिव सङ्केतितैक-
पदवाच्यत्वम् विकल्पप्रमपदार्थवाच्यत्वप्रसक्तेः । विकल्पानां च युगपदप्रवृत्तेर्नैकदा तयोस्तद्वाच्यता-
सम्भवः । न च निजार्थान्तरपान्ताभ्युपगमेऽप्यर्थस्य वाच्यता, तथाभूतस्य तस्यात्यन्तासत्त्वात्—१५
सर्वथा सतोऽन्यतोऽप्याप्रवृत्तात् महासामान्यपद घटार्थान्यानुपपत्तेः । अर्थान्तरत्वे परकृपादिव
स्वरूपादपि व्यावृत्तेः खरविषाणवद् असत्त्वादवाच्यतैव । न च घटत्वे घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्ते विधि-
रूपे सिद्धेऽसम्बद्ध एव तत्र पटाद्यर्थप्रतिषेध इति वाच्यम् पटादेस्तत्राभावाभावे घटशब्दप्रवृत्ति-
निमित्तस्य घटाद्यर्थस्याऽसिद्धेः । शब्दानां चार्थज्ञापकत्वं न कारकत्वमिति तथाभूतार्थप्रकाशने २०
तथाभूतेनैव शब्देन विधेयमिति नासम्बद्धस्तत्र पटाद्यर्थप्रतिषेधः । अथवा 'सर्वं सर्वात्मकम्' इति
सांख्यमतव्यवच्छेदार्थं तत्प्रतिषेधो विधीयते तत्र तस्य प्रतीत्यभावात् १।

घटो नाम-स्थापना-द्रव्य-भावभिन्नेषु विधित्सिताऽविधित्सितप्रकारेण प्रथम-द्वितीयौ भङ्गौ ।
सत्प्रकारत्वं युगपद् अवाच्यम् तथाभिधेयपरिणामरहितत्वात् तस्य यतो यदि अविधित्सितरूपे-
णापि घटः स्यात् प्रतिनियतनामादिभेदव्यवहाराभावप्रसक्तिः तथा च विधित्सितस्यापि नात्मलाभ
इति सर्वाभाव एव भवेत् । तथा यदि विधित्सितप्रकारेणाप्यघटः स्यात् तदा तन्निबन्धनव्यवहारो-२५
च्छेदप्रसक्तिरेव । एकतराभ्युपगमेऽपि तदितराभावे तस्याप्यभाव इति अवाच्यः २।

---

१ 'स्याद् घट'
२ 'स्याद् अघट'
३ 'स्याद् घटश्च अघटश्च'
४ 'स्याद् अवक्तव्यः'
—१–६ तत्त्वार्थराजवा० पृ० २४ वा० ५।

१ "स्यादस्त्येवाखिलं यद्वत् स्वरूपादिचतुष्टयात्" ॥ ४९ ॥
२ "स्यान्नास्त्येव विपर्यासादिति कश्चिन्निषेधने ।
३ स्याद् द्वैतमेव तदद्वैतादित्यभिन्न-निषेधयोः ॥ ५० ॥
४ क्रमेण यौगपद्याद्वा स्याद् अवक्तव्यमेव तत्" ॥ ५१ ॥
—१–६ तत्त्वार्थश्लो० वा० पृ० १२८।

१ "स्यादस्त्येव घटः ।
२ स्यान्नास्त्येव घटः ।
३ स्यादस्ति नास्ति च घटः ।
४ स्यादवक्तव्य एव" ।
—सप्तभङ्गीत० पृ० २ पं० २।

१ शास्त्रवा० स्याद्वादक० पृ० [illegible] ११। २ तस्यागृत्ताभि वा० वा०। ३ तथापूर्व [illegible]
वा०। ४—तयोरिव पृ० [illegible] वा० वा०। ५ न चानि पृ०। [illegible] —१, ६ वा० ५ पृ० [illegible]
६ [illegible] —पृ० [illegible] पं० २ —पृ० ८ पं० १ [illegible]
पं० ११—पृ० [illegible] द्वि० पं० १४—पृ० २५२ द्वि० पं० [illegible]
शास्त्रवार्तासमुच्चयटीका [illegible]

वयणविसेसाईयं दव्वमवत्तव्वयं पडइ ॥ ३६ ॥

अस्यास्तात्पर्यार्थः—अर्थान्तरभूतः पटादिः निजो घटः ताभ्यां निजार्थान्तरभूताभ्यां यद
घटवस्तुनः प्रथम-द्वितीयभङ्गनिमित्तं प्रधान-गुणभावेन भवतीति प्रथम-द्वितीयौ भङ्गौ १-२।
तु द्वाभ्यामपि युगपत् तद् वस्तु अभिधातुमभीष्टं भवति तदा अवक्तव्यभङ्गकनिमित्तम् तथाभू
५ वस्तुनोऽभावात् प्रतिपादकवचनातीतत्वात् तृतीयभङ्गसद्भावः वचनस्य वा तथाभूतस्याभा
अवक्तव्यं वस्तु ३।

आस्तिकः पर्यवास्तिकः इति मूलभेदा अस्य नयस्य सप्तम (!) विभेदाः भगवतीसिद्धा उत्पन्ने तत्र अन(न्य)स्य निबन्धनम् आकर्षम् (आर्षम्) अपीति। अभीरुच्यते, उपनिबन्धनमस्य तदुभयः स आदिष्टः इत्यादि।

"'इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी आता णोआता?' इति पृष्टे भगवद्वचनम्—'गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आ परस्स आदिट्ठे णोआया, तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं आता ति य णोआता ति य' " इति। एवम् अवक्तव्यत्वम् आत्मपर्यायाभ्यामादेशेऽत्र ज्ञापकनिबन्धनमुच्यते इति।

नियमभङ्गो नवमोऽरः श्रीमल्लवादिप्रणीतनयचक्रस्य टीकायां न्यायागमानुसारिण्यां सिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रम
कृतायां समाप्तः" ।–नयचक्रलि० को० पृ० ३२९ पं० २–१४। अनुयोग० पृ० ५५ द्वि० सूत्रांक ७६। १-सा
ल० विना। २ प्रमेयर० को० पृ० १२–पृ० २० सप्तभङ्गीस्थानम्।

३ १ 'स्याद् अस्ति' २ 'स्यान्नास्ति'
३ 'स्याद् अवक्तव्यः' ४ 'स्याद् अस्तिनास्ति'

इत्येवं भङ्गक्रमः अत्र मूले टीकायां चास्ति। एवमेव च सत्क्रमः तत्त्वार्थसूत्रभाष्ये, विशेषावश्यकभाष्ये, दिगम्बर
प्रवचनसारेऽपि दृश्यते। तथाहि—

"उत्पन्नास्तिकस्य उत्पन्नं वा, उत्पन्ने वा, उत्पन्नानि वा, सत्"।

"अनुत्पन्नं वा, अनुत्पन्ने वा, अनुत्पन्नानि वा असत्"।

"अर्पिते अनुपनीते न वाच्यम्—सदिति असदिति वा"–तत्त्वार्थसू० भा० अ० ५ सू० ३१ पृ० ४०९ पं०
तथा पृ० ४१० पं० २९।

"सब्भावाऽसब्भावोभयप्पिओ सपरपज्जओभयओ। कुंभाऽकुंभऽवत्तव्वोभयरूवाइभेओ सो" ॥
–विशेषाव० भा० गा०२२३२ पृ० ९१०।

"अत्थि त्ति य णत्थि त्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं। पज्जाएण दु केण वि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा" ॥२
–प्रवचनसा० पृ० १६१। प्रवचनसारटीकायामपि तथैवास्ति। "अयं च (स्याद् अवक्तव्यमेव) भङ्गः कैश्चि
('स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव' इति) तृतीयभङ्गस्थाने पठ्यते। तृतीयश्च एतस्य स्थाने"–रत्नाकराव० चतु० परि० सू०
पृ० ६२ पं० २६।

१ 'स्याद् अस्ति' २ 'स्यान्नास्ति'
३ 'स्याद् अस्तिनास्ति' ४ 'स्याद् अवक्तव्यः'

इत्येवं तृतीय-चतुर्थभङ्गयोः स्थानव्यत्ययः श्वेताम्बरीयप्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार-रत्नाकरावतारिका-स्याद्वादमञ्जरी-न
प्रदेशेषु दिगम्बरीयपञ्चास्तिकाय-आप्तमीमांसा-तत्त्वार्थराजवार्तिक-तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक-सप्तभङ्गीतरङ्गिणीषु च वर्तते
तथाहि—

१ "स्यादस्त्येव सर्वमिति विधिकल्पनया प्रथमो भङ्गः"।
२ "स्यान्नास्त्येव सर्वमिति निषेधकल्पनया द्वितीयः"।
३ "स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमतो विधि-निषेधकल्पनया तृतीयः"।
४ "स्यादवक्तव्यमेवेति युगपद् विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थः"।

–प्रमाणनयत० चतु० परि० सू० १७–१८। रत्नाकराव० चतु० परि० सू० १७–१८ पृ०६२। स्याद्वादमञ्ज० पृ
१८९ पं० ८ आ०। नयोप० पृ० १२ द्वि० पं० ९।

"सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं। दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि" ॥ १४
–पञ्चास्तिका" पृ० ३०।

प्रवचनसार-पञ्चास्तिकाययोः समानकर्तृकतायामपि प्रवचनसारे पूर्वोक्तः क्रमः पञ्चास्तिकाये तु ततो भिन्नः क्रमः।

"कथंचित् ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत्। तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा" ॥ १४ ॥
–आप्तमीमां० पृ० १२।

[मूलभङ्गत्रयं विविच्य तत्समर्थकानां षोडशानामपेक्षाभेदानां व्यावर्णनम्]

तथाहि—असत्त्वोपसर्जनसत्त्वप्रतिपादने प्रथमो भङ्गः। तद्विपर्ययेण तत्प्रतिपादने द्वितीयः। द्वयोस्तु धर्मयोः प्राधान्येन गुणभावेन वा प्रतिपादने न किञ्चिद् वचः समर्थम् यतो न तावत् समासवचनं तत्प्रतिपादकम् नापि वाक्यं सम्भवति। समासपक्षे तावन्न बहुव्रीहिरत्र समर्थः तस्यान्यपदार्थप्रधानत्वात् अत्र चोभयप्रधानत्वात्। अव्ययीभावोऽपि नात्र प्रवर्तते तस्यात्रार्थेऽसम्भवात्। द्वन्द्वसमासे तु यद्यप्युभयपदप्राधान्यम् तथापि द्रव्यवृत्तिस्तावन्न प्रकृतार्थप्रतिपादकः गुणवृत्तिरपि द्रव्याश्रितगुणप्रतिपादकः द्रव्यमन्तरेण गुणानां तिष्ठत्यादिक्रियाधारत्वासम्भवात् तस्या द्रव्याश्रितत्वान्न प्रधानभूतयोर्गुणयोः प्रतिपाद्यत्वम्। तत्पुरुषोऽपि नात्र विषये प्रवर्तते तस्याप्युत्तरपदार्थप्रधानत्वात्। नापि द्विगुः सङ्ख्यावाचिपूर्वपदत्वात् तस्य। कर्मधारयोऽपि न, गुणाधारद्रव्यविषयत्वात्। न च समासान्तरसद्भावः येन युगपद् गुणद्वयं प्रधानभावेन समासपदवाच्यं स्यात् अत एव न वाक्यमपि तथाभूतगुणद्वयप्रतिपादकं सम्भवति तस्य वृत्त्यभिन्नार्थत्वात्। न च केवलं पदम् वाक्यं वा लोकप्रसिद्धम् तस्यापि परस्परापेक्षद्रव्यादिविषयतया तथाभूतार्थप्रतिपादकत्वायोगात्।

न च "तौ सत्" [३।२।१२७। सिद्धान्तकौ० अं० ३१०६] इति शतृ-शानचोरिव सङ्केतितैकपदवाच्यत्वम् विकल्पप्रसङ्गादवाच्यत्वप्रसक्तेः। विकल्पानां च युगपदप्रवृत्तेर्नैकदा तयोस्तद्वाच्यतासम्भवः। न च निजार्थान्तरैकान्ताभ्युपगमेऽप्यर्थस्य वाच्यता, तथाभूतस्य तस्यासत्त्वात्—सर्वथा सत्त्वेऽन्यतोऽव्यावृत्तत्वात् महासामान्यवद् घटार्थस्यानुपपत्तेः। अर्थान्तरत्वे पररूपादिव स्वरूपादपि व्यावृत्तेः खरविषाणवद् असत्त्वादवाच्यत्वमेव। न च घटत्वे घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्ते विधिरूपे सिद्धेऽसम्बद्ध एव तत्र पटाद्यर्थप्रतिषेध इति वाच्यम् पटादेस्तत्राभावाभावे घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तस्य घटत्वस्यैवाऽसिद्धेः। शब्दानां चार्थज्ञापकत्वं न कारकत्वमिति तथाभूतार्थप्रकाशने तथाभूतेनैव शब्देन विधेयमिति नासम्बद्धस्तत्र पटाद्यर्थप्रतिषेधः। अथवा 'सर्वं सर्वात्मकम्' इति सांख्यमतव्यवच्छेदार्थं तत्प्रतिषेधो विधीयते तत्र तस्य प्रतीत्यभावात् १।

यद्वा नाम-स्थापना-द्रव्य-भावभेदेषु विधित्सिताऽविधित्सितप्रकारेण प्रथम-द्वितीयौ भङ्गौ। तत्प्रकाराभ्यां युगपद् अवाच्यम् तथाभिधेयपरिणामरहितत्वात् तस्य यतो यदि अविधित्सितरूपेणापि घटः स्यात् प्रतिनियतनामादिभेदव्यवहाराभावप्रसक्तिः तथा च विधित्सितस्यापि नात्मलाभ इति सर्वाभाव एव भवेत्। तथा यदि विधित्सितप्रकारेणाप्यघटः स्यात् तदा तन्निबन्धनव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिरेव। एकपक्षाभ्युपगमेऽपि तदितराभावे तस्याप्यभाव इति अवाच्यः २।

---

१ 'स्याद् घट.' २ 'स्याद् अघट.'
३ 'स्याद् घटश्च अघटश्च' ४ 'स्याद् अवक्तव्य.'
—१-४ तत्त्वार्थराजवा० पृ० २४ वा० ५।

१ "स्यादस्त्येवाखिलं यद्वत् स्वरूपादिचतुष्टयात्" ॥ ४९ ॥
२ "स्यान्नास्त्येव विपर्यासादिति कश्चिन्निषेधने।
३ स्याद् द्वैतमेव तद्द्वैतादित्यस्तित्व-निषेधयो. ॥ ५० ॥
४ क्रमेण यौगपद्याद्वा स्याद्वक्तव्यमेव तत्" ॥ ५१ ॥
—१-४ तत्त्वार्थश्लो० वा० पृ० १२८।

१ "स्यादस्त्येव घटः। २ स्यान्नास्त्येव घटः।
३ स्यादस्ति नास्ति च घट.। ४ स्यादवक्तव्य एव"।
—प्रमेयकमल० पृ० २०४० २।

१ तत्त्वार्थरा० स्याद्वाद० पृ० २५० प्र० पं० ७-११। २ तस्याप्युत्तराभि-व० ब०। ३ तथापूर्वैर्भू-र्तां०। ४-शयोरिव पु० त० बा० वा०। ५ न वाति-पु०।

६ अत्रत्या नामाद्यपेक्षसप्तभङ्गीसमर्थनपरा दर्शनप्रकरणा तत्त्वार्थराजवार्तिके दृश्यन्ते—१, ६ वा० ५ पृ० २४ पं० २१-पृ० २५ पं० १८। त एव च इमे प्रकारा प्रमेयकमलेऽपि समुद्धृता:-पृ० ५ पं० २१-पृ० ८ पं० ३०।
स्याद्वादमञ्जरीप्रभृतिषु तत्प्रकाराः सर्वेऽपि इमेऽत्र समुद्दिष्टा:- पृ० २५० द्वि० पं० १४-पृ० २५१ द्वि० पं० ६।

वयणविसेसाईयं दव्वमवत्तव्वयं पडइ ॥ ३६ ॥

अस्यास्तात्पर्यार्थः—अर्थान्तरभूतः पटादिः निजो घटः ताभ्यां निजार्थान्तरभूताभ्यां सदसत्त्वं घटवस्तुनः प्रथम-द्वितीयभङ्गनिमित्तं प्रधान-गुणभावेन भवतीति प्रथम-द्वितीयौ भङ्गौ १-२। यदा तु द्वाभ्यामपि युगपत् तद् वस्तु अभिधातुमभीष्टं भवति तदा अवक्तव्यभङ्गकनिमित्तम् तथाभूतस्य ५वस्तुनोऽभावात् प्रतिपादकवचनातीतत्वात् तृतीयभङ्गसद्भावः वचनस्य वा तथाभूतस्याभावाद् अवक्तव्यं वस्तु ३।

आस्तिकः पर्यवास्तिकः इति मूलसंज्ञा अस्य नयस्य शब्दस्य (!) किमेताः समनीषिका उच्यन्ते उत अस्त(स्त्य)स्य उप-निबन्धनम् आकर्षम् (आर्षम्) अपीति। अस्तीत्युच्यते, उपनिबन्धनमस्य तदुभयः स आदिष्टः इत्यादि।

"'इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी आता णोआता?' इति पृष्टे भगवद्वचनम्—'गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आता, परस्स आदिट्ठे णोआया, तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं आता ति य णोआता ति य'" इति। एवम् अवक्तव्यत्वम् आत्मा-ऽनात्मपर्यायाभ्यामादेशेऽत्र ज्ञापकनिबन्धनमुच्यते इति।

नियमभङ्गो नवमोऽरः श्रीमल्लवादिप्रणीतनयचक्रस्य टीकायां न्यायागमानुसारिण्यां सिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमण-ब्धायां समाप्तः।" ।–नयचक्रलि० को० पृ० ६२९ पं० ३–१४। अनुयोग० पृ० ५५ द्वि० सूत्राङ्क ७९। १–सादय स० विना। २ प्रमेयर० को० पृ० १२–पृ० २० सप्तभङ्गीस्थापनम्।

३ १ 'स्याद् अस्ति' २ 'स्यान्नास्ति'
३ 'स्याद् अवक्तव्यः' ४ 'स्याद् अस्तिनास्ति'

इत्येवं भङ्गक्रमः अत्र मूले टीकायां चास्ति। एवमेव च तत्क्रमः तत्त्वार्थसूत्रभाष्ये, विशेषावश्यकभाष्ये, दिगम्बरीय-प्रवचनसारेऽपि दृश्यते। तथाहि—

"उत्पन्नास्तिकस्य उत्पन्नं वा, उत्पन्ने वा, उत्पन्नानि वा, सत्"।

"अनुत्पन्नं वा, अनुत्पन्ने वा, अनुत्पन्नानि वा असत्"।

"अर्पिते अनुपनीते न वाच्यम्—सदिति असदिति वा"–तत्त्वार्थसू० भा० अ० ५ सू० ३१ पृ० ४०९ पं० २० टया पृ० ४१० पं० २९।

"सब्भावाऽसब्भावोभयप्पिओ सपरपज्जओभयओ। कुंभाऽकुंभाऽवत्तव्वोभयरूवाइभेओ सो" ॥

–विशेषाव० भा० गा०२२३२ पृ० ९१०।

"अत्थि त्ति य णत्थि त्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं। पज्जाएण दु केण वि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा" ॥११॥

–प्रवचनसा० पृ० १६१। प्रवचनसारटीकायामपि तथैवास्ति। "अयं च (स्याद् अवक्तव्यमेव) भङ्गः कैश्चित् ('स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव' इति) तृतीयभङ्गस्थाने पठ्यते। तृतीयश्च एतस्य स्थाने"–रत्नाकराव० चतु० परि० सू० १८ पृ० ६२ पं० २६।

१ 'स्याद् अस्ति' २ 'स्यान्नास्ति'
३ 'स्याद् अस्तिनास्ति' ४ 'स्याद् अवक्तव्य'

इत्येवं तृतीय-चतुर्थभङ्गयोः स्थानव्यत्ययः श्वेताम्बरीयप्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार-रत्नाकरावतारिका-स्याद्वादमञ्जरी-जैन-तर्केषु दिगम्बरीयपञ्चास्तिकाय-आप्तमीमांसा-तत्त्वार्थराजवार्तिक-तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक-सप्तभङ्गीतरङ्गिणीषु च वर्तते। तथाहि—

१ "स्यादस्त्येव सर्वमिति विधिकल्पनया प्रथमो भङ्गः"।

२ "स्यान्नास्त्येव सर्वमिति निषेधकल्पनया द्वितीयः"।

३ "स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमतो विधि-निषेधकल्पनया तृतीयः"।

४ "स्यादवक्तव्यमेवेति युगपद् विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थः"।

–प्रमाणनय० चतु० परि० सू० १४–१८। रत्नाकराव० चतु० परि० सू० १४–१८ पृ०६२। स्याद्वादम० पृ० १८६ पं० ८ अ०। जैनतर्क० पृ० १२ द्वि० पं० ९।

"सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं। दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि" ॥ १४ ॥

–पञ्चास्तिका०" पृ० ३०।

[illegible] प्रवचनसारे पूर्वोक्त क्रम एव किन्तु [illegible] भिन्न क्रम।

"कथंचित् ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत्। तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा" ॥ १४ ॥

–आप्तमीमां० पृ० ११।

[भङ्गत्रयं विवेच्य तत्समर्थकानां [illegible]नामपेक्षाभेदानां व्यावर्णनम्]

तथाहि—अस्तित्वोपलक्षितमस्तित्वप्रतिपादने प्रथमो भङ्गः । तद्विपर्ययेण तत्प्रतिपादने द्वितीयः । द्वयोस्तु धर्मयोः प्राधान्येन गुणभावेन वा प्रतिपादने न किञ्चिद् वचः समर्थम् यतो न तावत् समासवचनं तत्प्रतिपादकम् नापि वाक्यं सम्भवति । समासपक्षे तावन्न बहुव्रीहिरत्र समर्थः तस्यान्यपदार्थप्रधानत्वात् अत्र चोभयप्रधानत्वात् । अव्ययीभावोऽपि नात्र प्रवर्तते तस्यात्रार्थेऽसम्भवात् । ५ द्वन्द्वसमासे तु यद्यप्युभयपदप्राधान्यम् तथापि द्रव्यवृत्तित्वात्तस्य न प्रकृतार्थप्रतिपादकः गुणवृत्तिरपि द्रव्याश्रितगुणप्रतिपादकः द्रव्यमन्तरेण गुणानां सिद्धत्वादिक्रियाधारत्वासम्भवात् तस्य द्रव्याश्रितत्वाच्च प्रधानभूतयोर्गुणयोः प्रतिपाद्यत्वम् । तत्पुरुषोऽपि नात्र विषये प्रवर्तते तस्योत्तरपदार्थप्रधानत्वात् । नापि द्विगुः सङ्ख्यावाचिपूर्वपदत्वात् तस्य । कर्मधारयोऽपि न, गुणाधारद्रव्यविषयत्वात् । न च समासान्तरसद्भावः येन युगपद् गुणद्वयं प्रधानभावेन समासपदवाच्यं स्यात् अत एव न १० वाक्यमपि तथाभूतगुणद्वयप्रतिपादकं सम्भवति तस्य वृत्त्यभिन्नार्थत्वात् । न च केवलं पदम् वाक्यं वा सङ्केतसिद्धम् तन्नापि परस्परापेक्षद्रव्यादिविषयतया तथाभूतार्थप्रतिपादकत्वायोगात् ।

न च "तौ सत्" [३।२।१२७ सिद्धान्तकौ० सं० ३१०६] इति शतृ-शानचोरिव सङ्केतितैकपदवाच्यत्वम् विकल्पानामनन्तप्रवाच्यत्वप्रसक्तेः । विकल्पानां च युगपदप्रवृत्तेर्नैकदा तयोस्तद्वाच्यतासम्भवः । न च विशिष्टार्थान्तरवाच्यतायुगपत्वेऽप्यर्थस्य वाच्यता, तथाभूतस्य [illegible] १५ [illegible]

[illegible] घटाद्यस्तित्वाभावे घटशब्दप्रवृत्तिः [illegible] । शब्दानां वार्थज्ञापकत्वं न कारकत्वमिति तथाभूतार्थप्रकाशनं तथाभूतेनैव शब्देन विधेयमिति नाभ्यस्तन्याय पदार्थप्रतिषेधः । अथवा 'सर्वं सर्वात्मकम्' इति २० सांख्यमतव्यवच्छेदार्थं तत्प्रतिषेधो विधीयते तत्र सत्त्वप्रसक्त्यभावात् १ ।

वर्ण-नाम-स्थापना-द्रव्य-भावभिन्नेषु विवक्षिताऽविवक्षितप्रकारेण प्रथम-द्वितीयौ भङ्गौ । तावुभावपि युगपद् अवाच्यः तथाभिधेयपरिणामरहितत्वात् यतो यदि अविवक्षितरूपेणापि घटः स्यात् प्रतिनियतनामादिभेदव्यवहाराभावप्रसक्तिः तथा च विवक्षितस्यापि नामादेः [illegible] २५ इति सर्वाभाव एव भवेत् । तथा यदि विवक्षितप्रकारेणाप्यघटः स्यात् तदा [illegible] । [illegible] इति अवक्तव्यः २ ।

[illegible]

वयणविसेसाईयं दव्वमवत्तव्वयं पडइ ॥ ३६ ॥

अस्यास्तात्पर्यार्थः—अर्थान्तरभूतः पटादिः निजो घटः ताभ्यां निजार्थान्तरभूताभ्यां सदसत्त्वं घटवस्तुनः प्रथम-द्वितीयभङ्गनिमित्तं प्रधान-गुणभावेन भवतीति प्रथम-द्वितीयौ भङ्गौ १-२। यदा तु द्वाभ्यामपि युगपत् तद् वस्तु अभिधातुमभीष्टं भवति तदा अवक्तव्यभङ्गकनिमित्तम् तथाभूतस्य ५वस्तुनोऽभावात् प्रतिपादकवचनातीतत्वात् तृतीयभङ्गसद्भावः वचनस्य वा तथाभूतस्याभावाद् अवक्तव्यं वस्तु ३।

आस्तिकः पर्यवास्तिकः इति मूलसंज्ञा अस्य नयस्य शब्दस्य (?) किमेताः समनीतिका उच्यन्ते उत अन्य(स्य)स उप-निबन्धनम् आकर्षम् (आर्षम्) अपीति। अस्तीत्युच्यते, उपनिबन्धनमस्य तदुभयः स आदिष्टः इत्यादि।

" 'इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी आता नोआता?' इति पृष्टे भगवद्वचनम्—'गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आया, परस्स आदिट्ठे नोआया, तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं आता ति य णोआता ति य' " इति। एवम् अवक्तव्यत्वम् आत्माऽनात्मपर्यायाभ्यामादेशोऽत्र ज्ञापकनिबन्धनमुच्यते इति।

नियमभङ्गो नवमोऽरः श्रीमल्लवादिप्रणीतनयचक्रस्य टीकायां न्यायागमानुसारिण्यां सिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमणकृतायां समाप्तः।"—नयचक्रलि० को० पृ० ९२९ पं० ३–१४। अनुयोग० पृ० ५५ द्वि० सूत्रांक ७१। १-साइय ल० विना। २ प्रमेयर० को० पृ० १२–पृ० २० सप्तभङ्गीस्थापनम्।

३ १ 'स्याद् अस्ति'	२ 'स्यान्नास्ति'
३ 'स्याद् अवक्तव्यः'	४ 'स्याद् अस्तिनास्ति'

इत्येवं भङ्गक्रमः अत्र मूले टीकायां चास्ति। एवमेव च तत्क्रमः तत्त्वार्थसूत्रभाष्ये, विशेषावश्यकभाष्ये, दिगम्बरीयप्रवचनसारेऽपि दृश्यते। तथाहि—

"उत्पन्नास्तिकस्य उत्पन्नं वा, उत्पद्यते वा, उत्पत्स्यति वा, सत्"।

"अनुत्पन्नं वा, अनुत्पद्यते वा, अनुत्पत्स्यति वा असत्"।

"अर्पिते अनुपनीते न वाच्यम्—सदिति असदिति वा"—तत्त्वार्थसू० भा० अ० ५ सू० ३१ पृ० ४०६ पं० १० तथा पृ० ४१० पं० २९।

"सब्भावाऽसब्भावोभयप्पिओ सपरपज्जओभयओ। कुंभाऽकुंभाऽवत्तव्वोभयरूवाइभेओ सो" ॥

—विशेषाव० भा० गा०२२३२ पृ० ९१०।

"अत्थि त्ति य णत्थि त्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं। पज्जाएण दु केण वि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा" ॥२३॥

—प्रवचनसा० पृ० १६१। प्रवचनसारटीकायामपि तथैवास्ति। "अयं च (स्याद् अवक्तव्यमेव) भङ्गः कैश्चित् ('स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव' इति) तृतीयभङ्गस्थाने पठ्यते। तृतीयश्च एतस्य स्थाने"—रत्नाकराव० चतु० परि० सू० १८ पृ० ६२ पं० २६।

१ 'स्याद् अस्ति'	२ 'स्यान्नास्ति'
३ 'स्याद् अस्तिनास्ति'	४ 'स्याद् अवक्तव्य'

इत्येवं तृतीय-चतुर्थभङ्गयोः स्थानव्यत्ययः श्वेताम्बरीयप्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार-रत्नाकरावतारिका-स्याद्वादमञ्जरी-नयोपदेशेषु दिगम्बरीयपञ्चास्तिकाय-आप्तमीमांसा-तत्त्वार्थराजवार्तिक-तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक-सप्तभङ्गीतरङ्गिणीषु च वर्तते। तथाहि—

१ "स्यादस्त्येव सर्वमिति विधिकल्पनया प्रथमो भङ्गः"।

२ "स्यान्नास्त्येव सर्वमिति निषेधकल्पनया द्वितीयः"।

३ *"स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमतो विधि-निषेधकल्पनया तृतीयः"*।

४ "स्यादवक्तव्यमेवेति युगपद् विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थः"।

—प्रमाणनय० चतु० परि० सू० १७–१८। रत्नाकराव० चतु० परि० सू० १७–१८ पृ०१२। स्याद्वादम० पृ० १८९ पं० ८ आ०। नयोप० पृ० १२ द्वि० पं० ५।

"सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं। दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि" ॥ १४ ॥

—पञ्चास्तिका० पृ० ३०।

प्रवचनसार-पञ्चास्तिकाययोः समानकर्तृकत्वेऽपि प्रवचनसारे पूर्वोक्तः क्रमः पञ्चास्तिकाये तु नवो [illegible]।

"कथंचित् ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत्। तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा" ॥ १४ ॥

—आप्तमीमां० पृ० १३।

अथवा सोऽहल्प्रतिनियत[illegible] [illegible]
घट इति प्रथम-द्वितीयौ. ताभ्यां युग[illegible] । [illegible]
णापि घटः स्यात् एकस्य सर्व[illegible] [illegible]
प्यप्रवृत्तिप्रसक्तिः । एकान्ताभ्युपगमेऽपि [illegible] ।

५ यदि वा सोऽहल्प्रतिनियत[illegible] [illegible]
रावस्थे अर्थान्तरत्वम् ताभ्यां सदसत्वं प्रथम-द्वि[illegible] । [illegible]
[illegible]लक्षणस्तृतीयो भङ्गः । तथाहि—[illegible]
नन्तत्वप्रसक्तिः अथ [illegible] । [illegible]
प्रसङ्ग इत्यसत्त्वादेव सप्तमः ४।

१० अथवा तस्मिन्नेव [illegible] [illegible]
भङ्गौ । ताभ्यां युगपदभिधातुमशक्तेरवक्तव्य[illegible] । [illegible]
[illegible] घटः स्यात् [illegible] [illegible]
[illegible] पूर्वोत्तरयोरप्य तदभावे अभावात् । [illegible]
[illegible] सर्वदा [illegible] [illegible]

१५ [illegible] [illegible]
[illegible] प्रथम-द्वितीयौ भङ्गौ । ताभ्यां युगपद[illegible] । [illegible]
[illegible] घटः स्यात् [illegible]
[illegible]
[illegible]

२० [illegible]
[illegible]

२५ [illegible]

३० [illegible]

यद्वा स्वव्यञ्जनपर्यायौ देशोऽर्थान्तरभूतः तद्गतविशेषत्वात् तस्य, घटार्थपर्यायस्त्वन्यव्यावृत्तेर्निजः ताभ्यां प्रथम-द्वितीयौ, अभेदेन ताभ्यां निर्दिष्टोऽवक्तव्यः। यतोऽत्रापि यदि व्यञ्जनमनूद्य घटार्थपर्यायविधिः तदा तस्यादोषत्वादात्मकत्वाप्रसक्तिरिति भेदनियन्त्रणतद्द्वयद्वारा निर्दोषः। अर्थपर्यायमनूद्य व्यञ्जनपर्यायविधिः तत्रापि कार्यकारणव्यतिरेकाभावप्रसक्तिः निजविशेषानुपादेन घटत्वसामान्यस्य विधाने तस्याऽकार्यत्वात्। एवं च घटस्याभावादवाच्यः। अनेकान्तपक्षे तु युगपदभिधानुपपत्तेः कथञ्चिदवाच्यः सिद्धः ११।

यद्वा सत्त्वमर्थान्तरभूतम् तस्य विशेषपर्यायत्वादनन्यविरूपता अत एव न तद्वाच्यमन्त्यविशेषवत्; अन्त्यविशेषस्तु निजः सोऽप्यवाच्योऽनन्वयात् प्रत्येकावक्तव्याभ्यां ताभ्यामादिष्टो घटोऽवक्तव्यः। अनेकान्तपक्षे तु कथञ्चिदवक्तव्यः १२।

अथवा 'संहृतरूपाः सत्त्वादयो घटः' इत्यत्र दर्शने अर्थान्तरभूताः सत्त्वादयः, निजं संहृतरूपम् ताभ्यामादिष्टो घटोऽवक्तव्यः यतः संहृतरूपस्य सत्त्वरजस्तमस्तु सत्त्वे सत्त्वरजस्तमसामभावप्रसक्तिः तेषां परस्परवैलक्षण्येनैव सत्त्वादित्वात् सन्हृतरूपत्वे च वैलक्षण्याभावादभाव इति विशेष्याभावादवाच्यः। असत्त्वे त्वसत्कार्योत्पादप्रसङ्गः। न चैतदभ्युपगम्यते अभ्युपगमेऽपि विशेषणाभावादवाच्यः १३।

अथवा रूपादयोऽर्थान्तरभूताः असंहृतरूपत्वं निजम् ताभ्यामादिष्टोऽवक्तव्यः। चैवाहि–अरूपादिव्यापृता रूपादयस्ते। एवं च रूपादीनां घटताऽवाच्यैव अरूपादित्वाद् घटस्य। नहि परस्परविलक्षणबुद्धिग्राह्या रूपादय एकानेकात्मकप्रत्ययग्राह्याऽरूपादिरूपघटतां प्रतिपद्यन्त इति विशेष्यलोपादवाच्यः। अथाप्यरूपादिरूपा रूपादयः, नन्वेवमपि रूपादय एव न भवन्तीति तेषामभावे केऽसंहृतरूपतया विशेष्या येनासंहृतरूपा रूपादयो घटो भवेत् इत्येवमप्यवाच्यः अनेकान्तवादे च कथञ्चिदवाच्यः १४।

यदि वा रूपादयोऽर्थान्तरभूताः मतुबर्थो निजः ताभ्यामादिष्टो घटोऽवक्तव्यः रूपाद्यात्मैकैकाकाराबभासप्रत्ययविषयव्यतिरेकेणापरसम्बन्धानवगतेर्विशेष्याभावात् 'रूपादिमान् घटः' इत्यवाच्यः। न चैकाकारप्रतिभासग्राह्यव्यतिरेकेणापररूपादिप्रतिभास इति विशेषणाभावादप्यवाच्यः। अनेकान्ते तु कथञ्चिदवाच्यः १५।

अथवा वाह्योऽर्थान्तरभूतः उपयोगस्तु निजः ताभ्यामादिष्टोऽवक्तव्यः। तथाहि–य उपयोगः स घट इति यद्युच्येत तदुपयोगमात्रकमेव घट इति सर्वोपयोगस्य घटत्वप्रसक्तिरिति प्रतिनियतस्वरूपाभावादवाच्यः। अथ यो घटः स उपयोग इत्युच्येत तथाप्युपयोगस्यार्थत्वप्रसक्तिरित्युपयोगाभावे घटस्याप्यभावः ततश्च कथं नावाच्यः? १६।

"एते च त्रयो भङ्गा गुण-प्रधानभावेन सकलधर्मात्मकैकवस्तुप्रतिपादकाः स्वयं तथाभूताः सन्तो निरवयवप्रतिपत्तिद्वारेण सकलादेशाः वक्ष्यमाणास्तु चत्वारः सावयवप्रतिपत्तिद्वारेणाशेषधर्मात्मकं वस्तु प्रतिपादयन्तोऽपि विकलादेशाः" इति केचित् प्रतिपन्नाः। वाक्यं च सर्वमेकानेकात्मकं सत् स्वाभिधेयमपि तथाभूतमवबोधयति यतो न तावन्निरवयवेन वाक्येन वस्तुस्वरूपाभिधानं सम्भवति अनन्तधर्माक्रान्तैकात्मकत्वाद् वस्तुनः निरवयववाक्यस्य त्वेकस्वभाववस्तुविषयत्वात् तथाभूतस्य च वस्तुनोऽसम्भवात् न निरवयवस्य तस्य वाचकमभिधायकम्। नापि सावयवं वाक्यं वस्त्वभिधायकं सम्भवति वस्तुन एकात्मकत्वात्। न च वस्तुनो व्यतिरिक्तास्तदंशाः, तद्व्यतिरेकेण तेषामप्रतीतेः—एकस्वरूपव्यापानेकांशप्रतिभासात्। न च तद् एकात्मकमेव अनेकांशानुरक्तस्यैव एकात्मनः प्रतिभासात् अतो वस्तुन एकानेकस्वभावत्वात् तथाभूतवस्त्वभिधायकाः

---

१ "घटोऽर्थपर्यायैः"–शास्त्रवा० स्याद्वाद० पृ० २५२ प्र० पं० ६। २ "सत्त्वऽन्त्यविशेषाभ्याम्"– मु० स० टि०। ३ संभूतरू–बा० बा०। ४ "यतो रूपादि–" शास्त्रवा० स्याद्वाद० पृ० २५२ द्वि० पं० २। ५–व्या रूपादि–बा० बा०। ६–रूपत्यादि–मु० विना। ७–माहारू–बा० बा०। ८ मनुपजर्थो वा० बा०। ९–रमकैकारा–मु० मां०।–रमवेकारा–भां०।–रमवोकारा–भा०। १०–पररूपसम्ब–आ० हा० वि०। "अपरसम्बन्धानवगतेर्विशेष्याभावात् न रूपादिमान्"–शास्त्रवा० स्याद्वाद० पृ० २५२ द्वि० पं० ६। ११–भावे स–आ०। १२–द्वारेण दो–मु०।

शब्दा अपि तथाभूता एव नैकान्ततः सावयवा उभयैकान्तरूपा वा। तत्र विवक्षाकृतप्रधानभाव-सदाद्येकधर्मात्मकस्यापेक्षितापराशेषधर्मक्रोडीकृतस्य वाक्यार्थस्य स्यात्कारपदलाञ्छितवाक्यात् प्रतीतेः स्यादस्ति घटः १ स्यान्नास्ति घटः २ स्यादवक्तव्यो घटः ३ इत्येते त्रयो भङ्गाः सकलादेशाः। विवक्षाविरचितद्विविधधर्मानुरक्तस्य स्यात्कारपदसंसूचितसकलधर्मस्वभावस्य धर्मिणो वाक्यार्थस्य ५प्रतिपत्तेश्चत्वारो वक्ष्यमाणका विकलादेशाः—स्यादस्ति च नास्ति घट इति प्रथमो विकलादेशः १। स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घट इति द्वितीयः २। स्यात् नास्ति चाऽवक्तव्यश्च घट इति तृतीयः ३। स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च घट इति चतुर्थः ४। एत एव सप्त भङ्गाः स्यात्पदलाञ्छनविरहिणोऽवधारणैकस्वभावा विषयाभावतो दुर्नया भवन्ति। धर्मान्तरोपादानप्रतिषेधाकरणात् स्वार्थमात्रप्रतिपादनप्रवणा एते एव सुनयरूपतामासादयन्ति। स्यात्पदलाञ्छननियमितैकधर्मावधारणपराश्च १०सुनयाः सद्वादेरेकदेशस्य व्यवहारनिबन्धनत्वेन विवक्षितत्वात् धर्मान्तरस्य चानिराकरणात्। अतः 'स्यादस्ति' इत्यादि प्रमाणम् 'अस्त्येव' इत्यादि दुर्नयः 'अस्ति' इत्यादिकः सुनयो नेनु (ननु) लोकव्यवहारम् 'स्यादस्त्येव' इत्यादिस्तु नय एव व्यवहारकारणं स्वपराभ्युपगतवस्तुविषयप्रमाणस्याप्य व्यवहारकारणत्वात् अन्यथा तदयोगात्॥ ३६॥

[चतुर्थभङ्गनिरूपणम्]

१५ एवं निरवयवावयवरूपं भङ्गकत्रयं प्रतिपाद्य सावयवावयवरूपचतुर्थभङ्गकं प्रतिपादयितुमाह—

अह देसो सब्भावे देसोऽसब्भावपज्जवे णियओ।
तं दवियमत्थि णत्थि य आएसविसेसियं जम्हा॥ ३७॥

अथ इति यदा देशो वस्तुनोऽवयवः सद्भावेऽस्तित्वे नियतः 'सदेवायम्' इत्येवं निश्चितः अन्यश्च देशोऽसद्भावपर्याये-नास्तित्व एव—नियतः—'असदेवायम्' इत्यनया अवयवयो- २०[illegible] अवयवधर्मैरप्यवयविनस्तथाव्यपदेशः यथा 'कुण्ठो देवदत्तः' इति। तदो-[illegible] अस्ति नास्ति [illegible]। ततः तद् द्रव्यमस्ति च नास्ति चेति [illegible] विशेषितं यस्मात्। तथाहि-यत् [illegible] [illegible] अस्ति च नास्ति च भवति। तथा, [illegible] [illegible] न तत्र नास्ति। तथा च [illegible] २५[illegible]॥ ३७॥

[पञ्चमभङ्गप्रदर्शनम्]

[illegible]—

सब्भावे आइट्ठो देसो देसो य उभयहा जस्स।
तं अत्थि अवत्तव्वं च होइ दवियं वियप्पवसा॥ ३८॥

३० [illegible]

[illegible]

यथोर्भङ्गकयोः परस्पराविनाभावभूतयोः प्रतिपाद्येनाधिगन्तुमिष्टत्वात् प्रतिपादकेनापि तथैव विवक्षितत्वात् अत्र तु तद्विपर्ययात् अनन्तधर्मात्मकस्य धर्मिणः प्रतिपाद्यानुरोधेन तथाभूतधर्मान्तरत्वेन वक्तुमिष्टत्वात् तद् द्रव्यमस्ति च अवक्तव्यं च भवति तद्धर्मविकल्पनवशात् धर्मयोस्तथापरिणतयोस्तथाव्यपदेशे धर्म्यपि तद्द्वारेण तथैव व्यपदिश्यते ॥ ३८ ॥

[षष्ठभङ्गप्रदर्शनम्] ५

षष्ठभङ्गकं दर्शयितुमाह—

आइट्ठोऽसब्भावे देसो देसो य उभयहा जस्स ।
तं णत्थि अवत्तव्वं च होइ दवियं वियप्पवसा ॥ ३९ ॥

यस्य वस्तुनो देशोऽसत्त्वे निश्चितः 'असन्नेवायम्' इत्यवक्तव्यानुविद्धः अपरश्चासदनुविद्ध उभयथा 'सदसंश्च' इत्येवं युगपन्निश्चितस्तदा तद् द्रव्यं नास्ति च अवक्तव्यं च भवति १० विकल्पवशात् तद्व्यपदेशावयववशात् द्रव्यमपि तद्व्यपदेशमासादयति । केवलद्वितीयतृतीयभङ्गकव्युदासेन षष्ठभङ्गः प्रदर्शितः ॥ ३९ ॥

[सप्तमभङ्गप्रकाशनम्]

सप्तमंप्रदर्शनायाह—

सब्भावाऽसब्भावे देसो देसो य उभयहा जस्स । १५
तं अत्थि णत्थि अवत्तव्वयं च दवियं वियप्पवसा ॥ ४० ॥

यस्य देशिनो देशोऽवयवः देशो धर्मो वा सद्भाव नियतो निश्चितः अपरस्तु असद्भावे असत्त्वे तृतीयस्तु उभयथा इत्येवं देशानां सदसदवक्तव्यव्यपदेशात् तद् अपि द्रव्यमस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च भवति विकल्पवशात् तथाभूतविशेषणाध्यासितस्य द्रव्यस्यानेन प्रतिपादनादपरभङ्गव्युदासः । एते च परस्पररूपापेक्षया सप्तभङ्गात्मकाः प्रत्येकं स्वार्थं प्रतिपादयन्ति २० मान्यथेति प्रत्येकं तत्समुदायो वा सप्तभङ्गात्मकः प्रतिपाद्यमपि तथाभूतं दर्शयतीति व्यवस्थितम् ।

अत्र चाद्यभङ्गकस्त्रिधा, द्वितीयोऽपि त्रिधैव, तृतीयो दशधा, चतुर्थोऽपि दशधैव, पञ्चमादयस्तु त्रिंशदधिकशतपरिमाणाः प्रत्येकं श्रीमन्मल्लवादिप्रभृतिभिर्दर्शिताः । पुनश्च षड्विंशत्यधिकचतुर्दशशतपरिमाणास्त एव च स्यादिसंयोगकल्पनया कोटिशो भवन्तीत्यभिहितं तैरेव । अत्र तु ग्रन्थविस्तरभयात् तथा न प्रदर्शितास्तत एवावधार्याः । २५

अथानन्तधर्मात्मके वस्तु [illegible] प्रवचनविकल्पपरिकल्पनमपि किं न क्रियत इति न [illegible] हि—न तावत् सावयवात्मकमन्योन्यनिमित्तकं तत् [illegible] तस्यान्तर्भावप्रसक्तेः । नापि निरवयवात्मकमन्योन्यनिमित्तकं तत् परिकल्पनामर्हति प्रथमादिष्वन्तर्भावप्रसक्तेः । न च गत्यन्तरमस्तीति नाष्टमभङ्गपरिकल्पना युक्ता । किञ्च, असौ क्रमेण वा तद्धर्मद्वयं प्रतिपादयेत्, ३० यौगपद्येन वा ? प्रथमपक्षे गुणप्रधानभावेन तत्प्रतिपादने प्रथमद्वितीययोरन्तर्भावः प्रधानभावेन तत्प्रतिपादने चतुर्थे । यौगपद्येन तत्प्रतिपादने तृतीये, भङ्गकसंयोगकल्पनया भङ्गान्तरकल्पनायां प्रथमद्वितीयभङ्गकसंयोगे चतुर्थभङ्गक एव प्रसज्यते, प्रथमतृतीयसंयोगात् पञ्चमप्रसक्तिः, द्वितीयतृतीयसंयोगात् षष्ठप्रसक्तिः, प्रथमद्वितीयतृतीयसंयोगात् सप्तमः, प्रथमचतुर्थादिसंयोगकल्पनायां पुनरुक्तदोषः । तस्मात् कथञ्चिदष्टमभङ्गसम्भव इत्युक्तन्यायात् वस्तुप्रतिपादने सप्तविध एव ३५ वचनमार्गः ॥ ४० ॥

---

१ "धर्म" द्वारेण–बृ० ल० टि० । २ "न हि अपरधर्म–इत्यादिभावना अत्रापि कार्या–" बृ० ल० टि० । दृश्यताम् पृ० ४४६ पं० ११ । ३–मभङ्गप्र–आ० । ४ "प्रथम–द्वितीय–तृतीय"भङ्गव्युदास –बृ० ल० टि० । ५ सप्तभङ्गा–वा० बा० । ६–कमपरं निमित्तं तत् परि–बृ० ल० वा० बा० ।

शब्दा अपि तथाभूता एव नैकान्ततः सावयवा उभयैकान्तरूपा वा। तत्र विवक्षाकृतप्रधानभाव-
सदाद्येकधर्मात्मकस्यापेक्षितापराशेषधर्मकोडीकृतस्य वाक्यार्थस्य स्यात्कारपदलाञ्छितवाक्यात्
प्रतीतेः स्यादस्ति घटः १ स्यान्नास्ति घटः २ स्यादवक्तव्यो घटः ३ इत्येते त्रयो भङ्गाः सकलादेशाः।
विवक्षाविरचितद्विविधर्मानुरक्तस्य स्यात्कारपदसंसूचितसकलधर्मसद्भावस्य धर्मिणो वाक्यार्थरूपस्य
५ प्रतिपत्तेश्चत्वारो वक्ष्यमाणका विकलादेशाः—स्यादस्ति च नास्ति घट इति प्रथमो विकलादेशः १।
स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घट इति द्वितीयः २। स्यात् नास्ति चाऽवक्तव्यश्च घट इति तृतीयः ३। स्या-
दस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च घट इति चतुर्थः ४। एत एव सप्त भङ्गाः स्यात्पदलाञ्छनविरहिणोऽवधा-
रणैकस्वभावा विषयाभावतो दुर्नया भवन्ति। धर्मान्तरोपादानप्रतिषेधाकरणात् स्वार्थमात्रप्रतिपा-
दनप्रवणा एते एव सुनयरूपतामासादयन्ति। स्यात्पदलाञ्छनविवक्षितैकधर्मावधारणवशाद् वा
१० सुनयाः सद्व्यादेरेकदेशस्य व्यवहारनिबन्धनत्वेन विवक्षितत्वात् धर्मान्तरस्य चानिषिद्धत्वात्। अतः
'स्यादस्ति' इत्यादि प्रमाणम् 'अस्त्येव' इत्यादि दुर्नयः 'अस्ति' इत्यादिकः सुनयो ननु (न तु) संव्यवहा-
राङ्गम् 'स्यादस्त्येव' इत्यादिस्तु नय एव व्यवहारकारणं स्वपराव्यावृत्तवस्तुविषयप्रवर्तकवाक्यस्य
व्यवहारकारणत्वात् अन्यथा तदयोगात्॥ ३६॥

[चतुर्थभङ्गनिरूपणम्]

१५ एवं निरवयववाक्यस्वरूपं भङ्गकत्रयं प्रतिपाद्य सावयववाक्यरूपचतुर्थभङ्गकं प्रतिपादयितुमाह—

अह देसो सब्भावे देसोऽसब्भावपज्जवे णियओ।
तं दवियमत्थि णत्थि य आएसविसेसियं जम्हा॥ ३७॥

अथ इति यदा देशो वस्तुनोऽवयवः सद्भावेऽस्तित्वे नियतः 'सन्नेवायम्' इत्येवं निश्चितः
अपरश्च देशोऽसद्भावपर्याये—नास्तित्व एव—नियतः—'असन्नेवायम्' इत्यवगतः अवयवेभ्यो-
२० ऽवयविनः कथञ्चिदभेदाद् अवयवधर्मैस्तस्यापि तथाव्यपदेशः यथा 'कुण्ठो देवदत्तः' इति। ततो-
ऽवयवसत्त्वासत्त्वाभ्यामवयवी अपि सदसन् सम्भवति। ततः तद् द्रव्यमस्ति च नास्ति
चेति भवत्युभयप्रधानावयवभागेन विशेषितं यस्मात्। तथाहि-यद् अवयवेन विशिष्टधर्मेण
व्यादिश्यते तद् अस्ति च नास्ति च भवति। तथा, स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैर्विभक्तो घटः स्वद्रव्यादि-
रूपेणास्ति परद्रव्यादिरूपेण च स एव नास्ति। तथा च पुरुषादि वस्तु विवक्षितपर्यायेण बालादिना
२५ परिणतम् कुमारादिना चापरिणतमित्यादिष्टमिति योज्यम्॥ ३७॥

[पञ्चमभङ्गप्रदर्शनम्]

पूर्वभङ्गकप्रदर्शितन्यायेन पञ्चमभङ्गकप्रदर्शनायाह—

सब्भावे आइट्ठो देसो देसो य उभयहा जस्स।
तं अत्थि अवत्तव्वं च होइ दवियं वियप्पवसा॥ ३८॥

३० सद्भावेऽस्तित्वे यस्य घटादेर्धर्मिणो देशो धर्म आदिष्टोऽपरस्त्वनुविद्धभावे
अन्यथा तदसत्त्वात्। न ह्यन्यधर्माननुविद्धतामन्तरेण विवक्षितधर्मास्तित्वमस्य सम्भवति खरविषा-
णादेरिव। तथाऽपरो देशः उभयथा अस्तित्वनास्तित्वप्रकाराभ्यामेकदैव विवक्षितोऽस्तित्वा-
नुविद्ध एवावक्तव्यस्वभावः अन्यथा तदसत्त्वप्रसक्तेः न ह्यस्तित्वमात्रे उभयाविनाभावित्वा [illegible]
[illegible] सम्भविनी, प्रथम-तृतीयभङ्गकसमुदायात्मकत्वाद् [illegible] द्रष्टव्यः तत्र प्रथम [illegible]

१-क्षणार्थस्वरूप-आ०। २-मायान् तु-आ०। ३ न तु बृ० ब०। ४-त्यादिगुण-भ० मा० वि०।५-
इत्यादिगुण-आ०। ६-त्रय स्त-भ० ब० वि०। ७-त्मायो बृ० ब०। [illegible] ८० बा०
वा०। ८ चतुर्थभङ्ग-भ० ब० बा० बा० वि०। ९-दृष्टं भा०। १० आदत्त-भ० ब०। अनुविद्धे म
बृ० ब०।

[illegible]
स्याद्यपरिणतयोस्तथाव्यपदेशो धर्म्यपि तद्द्वारेण तथैव व्यपदिश्यते ॥ ३८ ॥

[षष्ठभङ्गप्रदर्शनम्] ५

षष्ठभङ्गकं दर्शयितुमाह—

आइट्ठोऽसब्भावे देसो देसो य उभयहा जस्स ।
तं णत्थि अवत्तव्वं च होइ दवियं वियप्पवसा ॥ ३९ ॥

यस्य वस्तुनो देशोऽसत्त्वे निश्चितः 'असन्नेवायम्' इत्यवक्तव्यानुविद्धः अपरश्चासदनुविद्ध उभयथा 'सदसत्त्व' इत्येवं युगपन्निश्चितस्तदा तद् द्रव्यं नास्ति च अवक्तव्यं च भवति १० विकल्पवशात् तत्प्रदेशापायवशात् द्रव्यमपि तद्व्यपदेशमासादयति । केवलद्वितीयतृतीयभङ्गकव्युदासेन षष्ठभङ्गः प्रदर्शितः ॥ ३९ ॥

[सप्तमभङ्गप्रकाशनम्]

सप्तमभङ्गदर्शनायाह—

सब्भावाऽसब्भावे देसो देसो य उभयहा जस्स । १५
तं अत्थि णत्थि अवत्तव्वयं च दवियं वियप्पवसा ॥ ४० ॥

यस्य देशिनो देशोऽवयवः देशो धर्मो वा सद्भावे नियतो निश्चितः अपरस्तु असद्भावे असत्त्वे तृतीयस्तु उभयथा इत्येवं देशानां सदसदवक्तव्यव्यपदेशात् तद् अपि द्रव्यमस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च भवति विकल्पवशात् तथाभूतविशेषणाध्यासितस्य द्रव्यस्यानेन प्रतिपादनादपरभङ्गव्युदासः । एते च परस्परकृतापेक्षया सप्तभङ्गात्मकाः प्रत्येकं स्वार्थं प्रतिपादयन्ति २० नान्यथेति प्रत्येकं तत्समुदायो वा सप्तभङ्गात्मकः प्रतिपाद्यमपि तथाभूतं दर्शयतीति व्यवस्थितम् ।
[illegible]
भयात् तथा न प्रदर्शितास्तत्र एवावधार्याः । २५

अथानन्तधर्मात्मके वस्तुनि तत्प्रतिपादकवचनस्य सप्तधा कल्पने अष्टमवचनविकल्पपरिकल्पनमपि किं न क्रियत इति न वक्तव्यम् [illegible] धर्मानन्योन्यनिमित्तकं तत् परिकल्प्य [illegible] । नापि निरवयवात्मकमन्योन्यनिमित्तकं [illegible] न च वस्त्वन्तरमस्तीति नाष्टमभङ्गपरिकल्पना युक्ता । किञ्च, असौ क्रमेण वा तद्भेदद्वयं प्रतिपादयेत्, ३० यौगपद्येन वा ? प्रथमपक्षे गुणप्रधानभावेन तत्प्रतिपादने प्रथमद्वितीययोरन्यतरस्य प्रधानभावेन तत्प्रतिपादने चतुर्थे । यौगपद्येन तत्प्रतिपादने तृतीये, भङ्गकसंयोगकल्पनया भङ्गान्तरकल्पनायां प्रथमद्वितीयभङ्गकसंयोगे चतुर्थभङ्गक एव प्रसज्यते, प्रथमतृतीयसंयोगात् पञ्चमप्रसक्तिः, द्वितीयतृतीयसंयोगात् षष्ठप्रसक्तिः, प्रथमद्वितीयतृतीयसंयोगात् सप्तमः, प्रथमचतुर्थादिसंयोगकल्पनायां पुनरुक्तदोषः । तस्मात् कथञ्चिदष्टमभङ्गकाभाव इत्युक्तन्यायात् वस्तुप्रतिपादने सप्तविध एव ३५ वचनमार्गः ॥ ४० ॥

---

१ "धर्मे" द्वारेण–वृ० ल० टि० । २ "न हि अपरधर्म–इत्यादिभणना अत्रापि कार्या–" वृ० ल० टि० । सा च पृ० ४४६ पं० ११ । ३–सप्तभङ्ग–भा० । ४ "प्रथम–द्वितीय–तृतीय"भङ्गव्युदास –वृ० ल० टि० । ५ सप्तभङ्गा–वा० बा० । ६–कमपरं निमित्तं तत् परि–वृ० ल० बा० बा० ।

[सप्तानां भङ्गानामर्थनये शब्दनये च यथासंभवं विभजनम्]

अन्योन्यापरित्यागव्यवस्थितस्वरूपवाक्यनयानां शुद्ध्यशुद्धिविभागेन संग्रहादिव्यपदेशमा
दधतां द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयावेव मूलाधार इति प्रदर्शनार्थमाह—

एवं सत्तवियप्पो वयणपहो होइ अत्थपज्जाए।
५ **वंजणपज्जाए उण सवियप्पो णिव्वियप्पो य ॥ ४१ ॥**

एवं इत्यनन्तरोक्तप्रकारेण **सप्तविकल्पः** सप्तभेदः वचनमार्गो **वचनपथः भवत्य**
पर्याये अर्थनये संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रलक्षणे सप्ताप्यनन्तरोक्ता भङ्गका भवन्ति। तत्र प्रथमः सं
सामान्यग्राहिणि, 'नास्ति' इत्ययं तु व्यवहारे विशेषग्राहिणि, ऋजुसूत्रे तृतीयः, चतुर्थः संग्रह-व्य
हारयोः, पञ्चमः संग्रह-ऋजुसूत्रयोः, षष्ठो व्यवहार-ऋजुसूत्रयोः, सप्तमः संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रे
१० **व्यञ्जनपर्याये** शब्दनये **सविकल्पः** प्रथमे पर्यायशब्दवाच्यताविकल्पसद्भावेऽप्यर्थस्यैकत्वा
द्वितीय-तृतीययो**र्निर्विकल्पः** द्रव्यार्थान् सामान्यलक्षणान्निर्गतपर्यायाभिधायकत्वात् समभिरूढ
पर्यायभेदभिन्नार्थत्वात् एवंभूतस्यापि विवक्षितक्रियाकालार्थत्वात् लिङ्ग-संज्ञा-क्रियाभेदेन भि
स्यैकशब्दावाच्यत्वात्। शब्दादिषु तृतीयः, प्रथम-द्वितीयसंयोगे चतुर्थः तेष्वेव चानभिधेयसंयो
पञ्चम-षष्ठ-सप्तमा वचनमार्गा भवन्ति।

१५ अथवा प्रदर्शितस्वरूपा सप्तभङ्गी संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रेष्वेवार्थनयेषु भवतीत्याह-ए
सत्तवियप्पो इत्यादिगाथाम्। अस्यास्तात्पर्यार्थः—

अर्थनय एव सप्त भङ्गाः शब्दादिषु तु त्रिषु नयेषु प्रथम-द्वितीयावेव भङ्गौ। यो ह्यर्थमाभि
धक्तृस्थः संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्राख्यः प्रत्ययः प्रादुर्भवति सोऽर्थनयः अर्थवशेन तदुत्पत्तेः अ
प्रधानतयासौ व्यवस्थापयतीति कृत्वा, शब्दं तु स्वप्रभवमुपसर्जनतया व्यवस्थापयति तत्प्रयोगस्
२० परार्थत्वात्। यस्तु श्रोतरि तच्छब्दश्रवणादुद्गच्छति शब्द-समभिरूढ-एवंभूताख्यः प्रत्ययस्तस्
शब्दः प्रधानम् तद्वशेन तदुत्पत्तेः अर्थस्तूपसर्जनम् तदुत्पत्तावनिमित्तत्वात् स शब्दनय उच्यते
तत्र च वचनमार्गः सविकल्प-निर्विकल्पतया द्विविधः—सविकल्पं सामान्यम् निर्विकल्पः पर्याय
तदभिधानाद् वचनमपि तथा व्यपदिश्यते। तत्र शब्द-समभिरूढौ संज्ञा-क्रियाभेदेऽप्यभिन्नमर्थं
प्रतिपादयत इति तदभिप्रायेण सविकल्पो वचनमार्गः प्रथमभङ्गकरूपः। एवंभूतस्तु क्रियाभेदाद्
२५ भिन्नमेवार्थं तत्क्षणे *प्रतिपादयतीति निर्विकल्पो द्वितीयभङ्गकरूपस्तद्वचनमार्गः। अवक्तव्यभङ्गस्तु*
व्यञ्जननये न सम्भवत्येव यतः श्रोत्रभिप्रायो व्यञ्जननयः स च शब्दश्रवणादर्थं प्रतिपद्यते न शब्दा-
श्रवणात् अवक्तव्यं तु शब्दाभावविषय इति नावक्तव्यभङ्गकः व्यञ्जनपर्याये सम्भवतीत्यभिप्रायवता
व्यञ्जनपर्याये तु सविकल्प-निर्विकल्पौ प्रथमद्वितीयावेव भङ्गावभिहितावाचार्येण 'तु'शब्दस्य
गाथायामेवकारार्थत्वात् ॥ ४१ ॥

३०
[केवलपर्यायार्थिकनयस्य मतमुपदर्श्य तस्यापूर्णत्वाभिधानम्]

इदानीं परस्परस्वरूपापरित्यागप्रवृत्तसंग्रहादिनयप्रादुर्भूततथाविधा एव वाक्यनयास्तथाविधार्थ-
प्रतिपादका इत्येतत् प्रतिपाद्य अन्यथाभ्युपगमे तेषामप्यप्रशस्तविरोधतोऽभाव एवेत्येतदुपदर्शनाय
केवलानां तेषां तावन्मतमुपन्यस्यति—

---

१ "अस्तित्वनिषेधेन द्वितीयभङ्गस्य 'नास्ति'इत्यस्य प्रवृत्ते"–बृ० ल० टि०। २ स दा सू०। ३ तदुप-
पत्ते–बृ० वा० बा० विना। तदुप तदुपपत्ते–भां०।

जह दवियमप्पियं तं तहेव अत्थि त्ति पज्जवणयस्स।
ण य स समयपण्णवणा पज्जवणयमेत्तपडिपुण्णा॥ ४२॥

यथा वर्तमानकालसम्बन्धितया यद् द्रव्यमर्पितं प्रतिपादयितुमभीष्टं तत् तथैवास्ति नान्यथा अनुत्पन्न-विनष्टतया भावि-भूतयोर्विद्यमानत्वेनाप्रतिपत्तेः अप्रतीयमानयोश्च प्रतिपादयितुमशक्तेरतिप्रसङ्गाद् वर्तमानसम्बन्धित एव तस्य प्रतीतेः इति पर्यायार्थिकनयवाक्यस्याभिप्रायः। एतद् अनेकान्तवादी दूषयितुमाह-न इति प्रतिषेधे, स इति तथाविधो वाक्यनयः प्रगम्यते समय इति सम्यग् ईयते परिच्छिद्यत इति समयोऽर्थस्तस्य प्रज्ञापना प्ररूपणा पर्यायनयमात्रे द्रव्यनयनिरपेक्षे पर्यायनये प्रतिपूर्णा पुष्कला सम्पद्यते। न च वाक्यनयः सम्यगर्थप्रज्ञापनां पूरयतीति यावत् पर्यायनयस्य तैरवधारणैकान्तप्रतिपादनरूपस्याप्यदृष्टापनात् तद्बाधां वाचकः प्रतिपादयिष्यति॥ ४२॥   १०

[केवलद्रव्यार्थिकनयमतस्य प्रदर्शनम्]

द्रव्यार्थिकवाक्यनयेऽप्ययमेव न्याय इति तदभिप्रायं तावदाह—

पडिपुण्णजोव्वणगुणो जह लज्जइ बालभावचरिएण।
कुणइ य गुणपणिहाणं अणागयसुहोवहाणत्थं॥ ४३॥

प्राप्तयौवनगुणः पुरुषो लज्जते बालभावसंवृत्तात्मीयानुष्ठानस्मरणात् 'पूर्वमहमप्यस्पृ-   १५
श्यसंस्पर्शादिव्यवहारमनुष्ठितवान्' यथा तदुदाहरणार्थो गाथायामुपन्यस्तः यथैव ततोऽतीत-वर्तमानयोरैकत्वमवसीयते। करोति च गुणेषु उत्साहादिषु प्रणिधानमैकाग्र्यम् अनागते यत् सुखं तस्योपधानं प्राप्तिस्तस्मै तदर्थम् 'भवेत्तस्मात् सुखसाधनात् सुखमागम्यम्' इति। यतश्चैव-मतोऽनागत-वर्तमानयोरैक्यम्॥ ४३॥

[केवलद्रव्यार्थिकनयमतस्याप्यपूर्णत्वमिति प्रदर्शनेन वस्तुनो भेदाभेदरूपत्वसूचनम्]   २०

अत्रापि मते यथावस्थितवस्तुस्वरूपप्ररूपणा न प्रतिपूर्णेत इति सूत्रान्तरेण दर्शयति—

१-वमेसिय-बृ० वा० बा०।-वमिसिय-ल० मां० भा०। २ वर्तमानेवा-मां०। ३-कालसम्ब-बृ० मां० मां० भा० हा० वि०। ४ साधारणै-बृ० ल०।

५ "तदिदं लोकानुभवतोऽपि साधयन्नाह—

लज्जते बाल्यचरितैर्बाल एव न चापि यः। युवा न लज्जते बाल्यचरितैरपरैरेव चेष्टते" ॥ १९॥

"लज्जते बाल्यचरितैः धौर्त्याऽस्पृश्यस्पर्शनादिभि अतो बाल एव युवा 'अहमेव पूर्वं धौर्त्यादि अनुष्ठितवान्' इति लज्जानिबन्धनाऽभेदप्रत्यभिज्ञानाद् बाल-युनोरभेदसिद्धेः। न चापि एकान्तेन बाल एव सन् सम्प्रत्यपि युवा, एवं हि 'अधुनेदानीं युवा न बाल' इति भेदप्रतिभासो नानुभूत स्यात्। न च बालस्वभावपरित्यागे युवस्वभावपरिग्रहेऽपि स्याद् अनन्तरभावे पूर्वस्वभावपरित्यागस्य हेतुत्वात्। न च तस्मादेव युनि बालकस्यभेदं एव 'इदानीं युवा न बाल' इतिप्रतीतेरिति वाच्यम्, यतो न चान्यः निजसन्तानान्तरयुवा वै बाल्यचरितैः लज्जते अतश्चात्र न तत्संतानोपलब्धिः एव। तदेवमतीत-वर्तमानयोर्भेदाभेदो व्यवस्थितः। एवमनागत-वर्तमानयोरपि, यत भावत्वेन वार्धके सुखहेतुधनार्जनेन चेष्टते। अतो युव-वृद्धयोरभेदः। नहि अन्योऽन्यार्थं चेष्टत इति" ॥ २१॥ शास्त्रवा० स्तब० ७, स्या० क० पृ० २५० द्वि०। ६ गुणेष्वत्सा-वा० बा०। गुणेष्ठ उत्सा-ल०। गुणेषु तु उत्सा-भां० मां०।

ण य होइ जोव्वणत्थो बालो अण्णो वि लज्जइ ण तेण ।
ण वि य अणागयवयगुणपसाहणं जुज्जइ विभत्ते ॥ ४४ ॥

न च भवति यौवनस्थः पुरुषो बालः अपि त्वन्य एव **अन्योऽपि न लज्जते** बालचरितेन पुरुषान्तरवत् [2]तेनानन्यः । **नाप्यनागतवृद्धावस्थायां सुखप्रसाधनार्थमुत्साहस्तस्य** ५ **युज्यते** [3]अत्यन्तभेदे । एतदेवाह—**विभक्त** इति विभक्तिर्भेदः । अकारप्रश्लेषाद् अविभक्ते भेदाभावेऽविचलितस्वरूपतया तत्प्रसाधकगुणयत्नासम्भवात् । तस्माद्धाऽभेदमात्रं तत्त्वम् कथञ्चिद्भेदव्यवहृतिप्रतिभासबाधितत्वात् । नापि भेदमात्रम् एकत्वव्यवहारप्रतिपत्तिनिराकृतत्वादिति भेदाभेदात्मकं तत्त्वमभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा सकलव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिः ॥ ४४ ॥

[पुरुषदृष्टान्ते भेदाभेदात्मकत्वपरिणतिर्बाह्यप्रत्यक्षेण सिद्धेति प्रदर्शनम्]

१० एवमभेदभेदात्मकस्य पुरुषतत्त्वस्य यथा अतीतानागतदोषगुणनिन्दाभ्युपगमाभ्यां सम्बन्धः तथैव भेदाभेदात्मकस्य तस्य सम्बन्धादिभिर्योग इति दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकोपसंहारार्थमाह—

जाइ-कुल-रूव-लक्खण-सण्णा-संबंधओ अहिगयस्स ।
बालाइभावदिट्ठविगयस्स जह तस्स संबंधो ॥ ४५ ॥

जातिः पुरुषत्वादिका, **कुलं** प्रतिनियतपुरुषजन्यत्वम्, **रूपं** चक्षुर्ग्राह्यत्वलक्षणम्, **लक्षणं** १५ तिलकादि सुखादिसूचकम्, **संज्ञा** प्रतिनियतशब्दाभिधेयत्वम्, एभिर्यः सम्बन्धस्तदात्मपरिणामः ततस्तमाश्रित्य **अधिगतस्य** ज्ञानस्य(ज्ञातस्य) तदात्मकत्वेनाभिन्नावभासविषयस्य यद्वा **सम्बन्धो** जन्यजनकभावः एभिर्[4]**रधिगतस्य** तत्स्वभावस्यैकात्मकस्येति यावत् **बालादिभावैर्दृष्टैर्विगतस्य** तैरुत्पादविगमात्मकस्य तथाभेदप्रतीतेस्तस्य **यथा तस्य सम्बन्धो** भेदाभेदपरिणतिरूपो भेदाभेदात्मकत्वप्रतिपत्तेर्बाह्याध्यक्षतः ॥ ४५ ॥

---

२० [आध्यात्मिकप्रत्यक्षतोऽपि तत्र दृष्टान्ते यथा भेदाभेदात्मकत्वसिद्धिस्तथा दार्ष्टान्तिके जीवेऽपि तद्योजनम्]

आध्यात्मिकाध्यक्षतोऽपि तथाप्रतीतेस्तथारूपं तद् वस्त्विति प्रतिपादयन्नाह दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकोपसंहारद्वारेण—

तेहिं अतीताणागयदोसगुणदुगुंछणऽब्भुवगमेहिं ।
२५ **तह बंध-मोक्ख-सुह-दुक्खपत्थणा होइ जीवस्स ॥ ४६ ॥**

ताभ्यामतीतानागतदोष-गुणजुगुप्सा-ऽभ्युपगमाभ्यां यथा भेदाभेदात्मकस्य पुरुषत्वस्य सिद्धिः तथा दार्ष्टान्तिकेऽपि **तह बंध-मोक्ख-सुह-दुक्खपत्थणा होइ जीवस्स**

---

१ "न चाप्यभेद एव इत्याह—
युवैव न च वृद्धोऽपि नान्यार्थं चेष्टनं च तत् । अन्वयादिमयं वस्तु तदभावोऽन्यथा भवेत्" ॥१०॥
"न च युवैव वृद्धोऽपि सर्वथा वृद्धपर्यायापन्न एव 'इदानीमयं युवा न वृद्धः' इतिप्रतीतेः । न च तत्काले तत्र यूनि तार्यनानीयवृद्धभेद एव यतः अन्यार्थं संतानान्तरवृद्धवत् न च चेष्टनं कायव्यापारलक्षणम् । तत् तस्मात् वस्तु अन्वयादिमयम् आदिना व्यतिरेकग्रहात् अन्वय-व्यतिरेकरूपम् अन्यथा तदभावः अधिकृतवस्त्वभावो भवेत् सर्वथा अवस्थान्तरविरोधात्" ॥१०॥ शास्त्रवा० समु० स्तब० ७, स्याद्वादक० पृ० २५८ प्र० । २ तेनान्यः बृ० ल० भां० मां० विना । ३ अत्यन्तभे-भा० हा० वि० विना । ४ दियगस्स बृ० । ५-रूपलक्षणं तिल-भा० भा० ।-ह्यत्वं लक्षणं तिल-स० भा० । ६-रभिगतस्य लक्षणे तत्स्व-बृ० ।-रपि तस्य लक्षणे तात्स्व-भा० हा० ।

इति तथा बन्ध [illegible] जीवद्र-
व्यस्य भवति [illegible] बन्ध-मोक्ष-
भावाभावः उ [illegible]।

[उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकतया जीवतत्त्वस्य साधनम्]

तथाहि-मरणचित्तं प्राक्तनानन्तरचित्तात्मकम् मरणचित्तत्वात् जीवद्दशाभिनाशचित्तवत् ५
तथा जन्मादौ चित्तप्रादुर्भावोऽतीतचित्तस्थितिविनाशात्मकः चित्तप्रादुर्भावत्वात्, मध्या-
वस्थाचित्तप्रादुर्भाववत्, अन्यथा तस्याप्यभावप्रसक्तिः, न चासिद्धता हर्षविषादाद्यनेकवि-
वर्तात्मकस्यात्मनोऽवच्छिन्नान्तर्मुखाकारतया स्वसंवेदनाध्यक्षतः शरीराद्वैलक्षण्येनानुभूतेः । न च
तथाप्रतीयमानस्याप्यभावः शरीरादेरपि बहिर्मुखाकारतया प्रतीयमानस्याभावप्रसक्तेः । न च
निरन्वयात्मकत्वे आत्मनि जन्म-मरणे अपि संभवतः कुतो बन्धमोक्षप्रसक्तिः? न च नित्यव्याप्यात्मनोऽ-१०
भिनवबुद्धिशरीरेन्द्रियैर्योगो जन्म तद्वियोगो मरणमिति कल्पना सङ्गता अस्याः पूर्वं निषिद्धत्वात्।
न चैकान्तोत्पाद-विनाशात्मके चित्ते इहलोक-परलोकव्यवस्था बन्धादिव्यवस्था वा युक्ता यतः पैहिक-
भवपर्यायेणाऽऽमुष्मिकतदुपादानभेदस्य परलोकः पूर्वग्रामपरित्यागापादितदन्तरैकपुरुषवत् । न च
दृष्टान्तेऽप्येकत्वमसिद्धम् उभयावस्थयोरन्वयैकत्वेन प्रतिपत्तेः । न चेयं मिथ्या बाधकाभावात् विरु-
द्धधर्मसंसर्गादेर्बाधकस्याध्यक्षबाधादिना निरस्तत्वात्। न च पूर्वावस्थात्याग एकस्योत्तरावस्थोपादा-१५
नमन्तरेण दृष्टः पृथुबुध्नोदराद्याकारविनाशवत् मृद्द्रव्यस्य कपालोपादानमन्तरेण तस्यादर्शनात् । न च
कपालोत्पादमन्तरेण घटविनाश एव न सिद्धः घट-कपालव्यतिरेकेणापरस्य नाशस्याप्रतीतेरिति
वक्तव्यम् कपालोत्पादस्यैव कथञ्चिद् घटविनाशात्मकतया प्रतिपत्तेः अत एव सहेतुकत्वं विना-
शस्य कपालोत्पादस्य सहेतुकत्वात् । न च कपालानां भावरूपतैव केवला घटनिवृत्तौ तद्विविक्त-
तायास्तेष्वभावप्रसक्तेः । न चैकस्योभयत्र व्यापारविरोधः दृष्टत्वात् । न च घटनिवृत्ति-कपालयोरेका-२०
न्तेन भेदः कथञ्चिदेकत्वप्रतीतेः । न च मुद्गरादेर्नाशं प्रत्यव्यापारे कर्चिदप्युपयोगः कपालेषु न तदु-
पयोग. अन्त्यावस्थायामपि घटक्षणान्तरोत्पत्तिप्रसक्तेः । तस्य तदुत्पादनसामर्थ्यविनाशात् तस्य
स्वरसतो विनाशात् तदव्यतिरिक्तसामर्थ्यस्यापि विनाशः, न, पूर्वं तद्विनाशेऽपि तस्याविनाशात् विरो-
धिमुद्गरसन्निधानात् समानजातीयक्षणान्तरं न जनयतीति चेत्, न, 'घटविरोधी न च तं विनाशय-
ति' इति व्याहतत्वात् । न च तद्धेत्वभावात् सामर्थ्याभावः तथाविधकार्यजननसमर्थहेतोर्भावात् २५
अन्यथा प्रागपि तथाविधकपालोत्पत्तिर्न भवेत्। न च स्वहेतुनिर्वर्तित एव दण्डादिसन्निधौ सामर्थ्याभावः
दण्डादिसन्निधिमपेक्षमाणस्य तस्य तद्धेतुत्वोपपत्तेः अन्यथापि तद्भावस्य तन्मात्रनिबन्धनत्वात्।
न च तद्व्यापारानन्तरं तदुपलम्भात् तस्य तत्कार्यत्वे मृद्द्रव्यस्यापि तत्कार्यताप्रसक्तिः तस्य सर्वदो-
पलम्भात्, सर्वदा तस्यानभ्युपगमे उत्पाद-विनाशयोरभावप्रसक्तिश्चेति प्रतिपादितत्वाच्च । तस्यैव
तद्रूपतया परिणतौ कथञ्चिदुत्पादस्यापीष्टत्वात् । यदा च पूर्वोत्तराकारपरित्यागोपादानतयैकं मृदा-३०
दिवस्त्वध्यक्षतोऽनुभूयते तदा तत् तदपेक्षया कारणम् कार्यम् विनष्टम् अविनष्टं च उत्पन्नम् अनुत्पन्नं
च एककालम् अनेककालं च भिन्नम् अभिन्नं चेति कथं नाभ्युपगमविषयः?

न चात्र विरोधः मृद्व्यतिरिक्ततया घट-कपालयोरुत्पन्नविनष्टस्थितिस्वभावतया प्रतीतेः ।
न च प्रतीयमाने वस्तुस्वरूपे विरोधः अन्यथा ग्राह्यग्राहकाकाराभ्यामेकत्वेन स्वसंवेदनाध्यक्षतः
प्रतीयमानस्य संवेदनस्य विरोधप्रसक्तेः । न च संशयदोषप्रसक्तिरपि उत्पत्ति-स्थिति-निरोधानां ३५
निश्चितरूपतया वस्तुन्यवगमात् । न च 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' इति प्रतिपत्ताविव प्रकृतनिश्चये

१-स्मृत्यु-मां० । २ पृ० ७८ पं० २४ । ३ भावाभ्यु-ल० विना । ४-त्वभ्युप-बृ० ल० वा० बा० । -त्वप्यभ्यु-भां० । ५-नाशोऽपि बृ० ल० विना । ६-धानान्न स-बृ० ।-धानात्र स-वा० बा० ।

७ एकान्तवादिना अनेकान्तवादे समुद्भावितानां विरोधादीनामष्टानां दोषाणां परिहारोऽन्यत्र-प्रमेयक० पृ० १५६ प्र० । स्याद्वादमं० श्लो० २४ पृ० १९७ आ० । सप्तभङ्गीत० पृ० ८१ ।

८-सक्तिरिति उत्प-वा० बा० । ९-न्यधिग-बृ० ।-न्यधिग-वा० बा० ।

"सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाप्रत्यक्षात् विशेषस्मृतेश्च संशयः" [वैशेषिकद० २, २, १७] इति निमित्तमस्ति। न च व्यधिकरणतादोषासक्तिरपि घटकपालविनाशोत्पादयोर्मृद्द्रव्याधिकरणतया प्रतिपत्तेः। न चोभयदोषानुषङ्गः त्र्यात्मकस्य वस्तुनो जात्यन्तरत्वात्। सङ्करदोषप्रसक्तिरपि नास्ति अनुगतव्यावृत्त्योस्तदात्मके वस्तुनि स्वस्वरूपेणैव प्रतिभासनात्। अनवस्थादोषोऽपि न सम्भवी
५ मिथोत्पाद-व्यय-ध्रौव्यव्यतिरेकेण तदात्मकस्य वस्तुनोऽध्यक्षे प्रतिभासनात् स्वयमतदात्मकस्या-पर्ययोगेऽपि तदात्मकतानुपपत्तेरन्यथाऽतिप्रसङ्गात्। तथाप्रतिभासादेव अभावदोषोऽपि न सम्भवी अबाधितप्रतिभासस्य तदभावे अभावात् भावे वा न ततो वस्तुव्यवस्थितिरिति सर्वव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिः। न च त्र्यात्मकत्वमन्तरेण घटस्य कपालदर्शनाद् विनाशानुमानं सम्भवति तत्र तेषां प्रतिबन्धानवधारणात् नहि तद्विनाशनिमित्तानि तानि मुद्गरादिहेतुत्वात् अभावस्य कारण-
१० त्वाभावाच्च। यद्यपि घटहेतुकानि तानि तथापि घटसद्भावमेव गमयेयुर्न तदभावम् नहि धूमः पावकहेतुकस्तदभावगमक उपलब्धः। न चाभिन्ननिमित्तजन्यता तयोः प्रतिबन्धः अभावस्याऽकार्यताभ्युपगमात्। नापि तादात्म्यलक्षणः तयोस्तादात्म्यायोगात्। न च घटस्वरूपव्यावृत्तत्वात् तेषां तदभावप्रतिपत्तिजनकत्वम् सकलत्रैलोक्याभावप्रतिपत्तिजनकत्वप्रसक्तेः तेषां ततोऽपि व्यावृत्तस्वरूपत्वात्। न च घटविनाशरूपत्वात् तेषां नायं दोषः तेषां वस्तुरूपत्वात् विनाशस्य च निःस्व-
१५ भावत्वात् तथा च तादात्म्यविरोधः अन्यथा घटानुपलम्भवत् तेषामपि तदाऽनुपलब्धिर्भवेत् तस्मात् प्रागभावात्मकः सन् घटः प्रध्वंसाभावात्मकतां प्रतिपद्यत इत्यभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा पूर्वोक्तदोषानतिवृत्तिः। सत्त्वलक्षणस्यापि हेतोर्गमकत्वमनेनैव प्रकारेण सम्भवति अन्यथा उत्पत्त्यभावात् स्थित्यभावः तदभावे विनाशस्याप्यभावः असतो विनाशायोगादिति त्र्यात्मकमेकं वस्त्वभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा तदनुपपत्तेरिति प्राक् प्रदर्शितत्वान्न पुनरुच्यते। यथा चात्मनः परलोकगा-
२० मित्वम् शरीरमात्रव्यापकत्वं च तथा प्रतिपादितमेव। ननु शरीरमात्रव्यापित्वे तस्य गमनागमनाद् देशान्तरे तद्रूपोपलब्धिर्न भवेत्, न; तदधिष्ठितशरीरस्य गमनाविरोधात् पुरुषाधिष्ठितशकटगमनवत्। न च मूर्तामूर्तसंयोगो घटाकाशयोरिव प्रतिबन्धाभावात् मूर्तशरीरगमनेऽपि नामूर्तस्यात्मनो गमनमिति वक्तव्यम्, संसारिणस्तस्यैकान्तेनामूर्तत्वासिद्धेस्तत्प्रतिबन्धस्याभावासिद्धेः ॥ ४६ ॥

[जल-दुग्धदृष्टान्तेन जीव-कर्मणोरविभागकथनम्]

२५ एतदेवाह—

> अण्णोण्णाणुगयाणं 'इमं व तं व' त्ति विभयणमजुत्तं।
> जह दुद्ध-पाणियाणं जावंत विसेसपज्जाया ॥ ४७ ॥

अन्योन्यानुगतयोः परस्परानुप्रविष्टयोः आत्म-कर्मणोः 'इदं वा तद् वा' इति 'इदं कर्म अयमात्मा' इति यद् विभजनं पृथक्करणं तद् अयुक्तम् [illegible]
३० [illegible]। यथा दुग्ध-पानीययोः परस्परप्रदेशानुप्रविष्टयोः। [illegible] [illegible]! इत्याह—यावन्तो विशेषपर्याया[illegible]। अतः [illegible] [illegible] सर्वविशेषाणाम् 'अन्य' इति [illegible] ॥ ४७ ॥

---

१ [illegible] विशेषो [illegible], १, ११ [illegible]

२ [illegible]

[जीव-कर्मणोरन्योन्यानुप्रवेशेन तदाश्रितज्ञानादि-रूपादीनामपि परस्परानुप्रवेशवर्णनम्]

जीव-कर्मणोरन्योन्यानुप्रवेशे तदाश्रितानामन्योन्यानुप्रवेश इत्याह—

रूआइपज्जवा जे देहे जीवदवियम्मि सुद्धम्मि ।
ते अण्णोण्णाणुगया पण्णवणिज्जा भवत्थम्मि ॥ ४८ ॥

रूप-रस-गन्ध स्पर्शादयो ये पर्याया देहाश्रिता जीवद्रव्ये विशुद्धस्वरूपे च ये ज्ञाना- ५
द्यस्तेऽन्योन्यानुगता जीवे रूपादयो देहे ज्ञानादय इति प्ररूपणीया भवस्थे संसारिणि अकार-
प्रवेशाद् वा भवस्थेऽस्मिन् । न च संसारावस्थायां देहात्मनोरन्योन्यानुबन्धात् रूपादिभिस्तद्व्यपदेशः
पुद्गलपर्यायाणां तु तदभावात् नात्मा पुनः इति वक्तव्यम्, तदवस्थायामपि देहाद्याश्रितरूपादिग्रहण-
परिणतज्ञान-दर्शनपर्यायद्वारेणात्मनस्तथाविधत्वात् तथाव्यपदेशसम्भवात् आत्मपुद्गलयोश्च रूपादि-
-ज्ञानादीनामन्योन्यानुप्रवेशात् कथञ्चिद् एकत्वम् अनेकत्वं च, मूर्तत्वम् अमूर्तत्वं चाव्यतिरेकात् १०
सिद्धमिति ॥ ४८ ॥

[परस्परानुप्रवेशादात्म-पुद्गलयोः कथंचिदेकत्वस्यानेकत्वस्य चोपपादनम्]

एतदेवाह—

एवं "एगे आया एगे दंडे य होइ किरिया य" ।
करणविसेसेण य तिविहजोगसिद्धी वि अविरुद्धा ॥ ४९ ॥ १५

एवं इत्यनन्तरोदितप्रकारेण मनो-वाक्-कायद्रव्याणामात्मन्यनुप्रवेशात् आत्मैव न तद्व्यति-
रिक्तास्त इति तृतीयाङ्गस्थाने "एगे आया" [स्थाना० सू० २ पृ० १०] इति प्रथमसूत्रप्रतिपा-
दितः सिद्धः एक आत्मा एको दण्ड एका क्रियेति भवति मनो-वाक्-कायेषु दण्ड-क्रिया-
शब्दौ प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयौ करणविशेषेण च मनो-वाक्-कायस्वरूपेणात्मन्यनुप्रवेशाद्याप्तत्रि-
विधयोगस्वरूपत्वात् त्रिविधयोगसिद्धिरपि आत्मनः अविरुद्धैवेति एकस्य सतस्तस्य त्रिवि- २०
धयोगात्मकत्वात् अनेकान्तरूपता व्यवस्थितैव । न चान्योन्यानुप्रवेशात् एकात्मकत्वे बाह्याभ्यन्तर-
विभागाभाव इति अन्तर्हर्षविषादाद्यनेकविवर्तात्मकमेकं चैतन्यम् बहिर्बाल-कुमार-यौवनाद्यनेका-
वस्थैकात्मकमेकं शरीरमध्यक्षतः संवेद्यत इत्यस्य विरोधः बाह्याभ्यन्तरविभागाभावेऽपि निमित्ता-
न्तरतः तद्व्यपदेशसम्भवात् ॥ ४९ ॥

[आत्म-पुद्गलयोर्वस्तुतो बाह्याभ्यन्तरविभागाभावेऽप्यभ्यन्तरव्यपदेशस्य मनोनिमित्तकत्वेन समर्थनम्] २५

एतदेवाह—

ण य बाहिरओ भावो अब्भंतरओ य अत्थि समयम्मि ।
णोइंदियं पुण पडुच्च होइ अब्भंतरविसेसो ॥ ५० ॥

आत्म-पुद्गलयोरन्योन्यानुप्रवेशात् उक्तप्रकारेण अर्हत्प्रणीतशासने न बाह्यो भावः अ- ३०
भ्यन्तरो वा संभवति मूर्तामूर्तरूपादितयाऽनेकान्तात्मकत्वात् संसारोदरवर्तिनः सकल-
वस्तुनः । 'अभ्यन्तरः' इति व्यपदेशस्तु नोइन्द्रियं मनः प्रतीत्य तस्यात्मपरिणतिरूपस्य परा-
प्रत्यक्षत्वात् शरीर-वाचोरिव । न च शरीरात्मनोरवयवयोः परस्परानुप्रवेशात् शरीरादभेदे आत्म-

---

१-स्थायां तद्-मां० आ० । २ "एगे आया । एगे दंडे । एगा किरिया"-स्थाना० सू० ३-४ पृ० १० तथा ११ ।
५८ स० त०

"सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाप्रत्यक्षात् विशेषस्मृतेश्च संशयः" [वैशेषिकद० २, २, १७] इति निमित्तमस्ति। न च व्यधिकरणतादोषासक्तिरपि घटकपालविनाशोत्पादयोर्मृद्द्रव्याधिकरणतया प्रतिपत्तेः। न चोभयदोषानुषङ्गः त्र्यात्मकस्य वस्तुनो जात्यन्तरत्वात्। सङ्करदोषप्रसक्तिरपि नास्ति अनुगतव्यावृत्त्योस्तदात्मके वस्तुनि स्वस्वरूपेणैव प्रतिभासनात्। अनवस्थादोषोऽपि न सम्भवी ५ भिन्नोत्पाद-व्यय-ध्रौव्यव्यतिरेकेण तदात्मकस्य वस्तुनोऽध्यक्षे प्रतिभासनात् स्वयमतदात्मकस्या-परयोगेऽपि तदात्मकतानुपपत्तेरन्यथाऽतिप्रसङ्गात्। तथाप्रतिभासादेव अभावदोषोऽपि न सम्भवी अबाधितप्रतिभासस्य तदभावे अभावात् भावे वा न ततो वस्तुव्यवस्थितिरिति सर्वव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिः। न च त्र्यात्मकत्वमन्तरेण घटस्य कपालदर्शनाद् विनाशानुमानं सम्भवति तत्र तेषां प्रतिबन्धानवधारणात् नहि तद्विनाशनिमित्तानि तानि मुद्गरादिहेतुत्वात् अभावस्य कारण-१० त्वाभावाच्च। यद्यपि घटहेतुकानि तानि तथापि घटसद्भावमेव गमयेयुर्न तदभावम् नहि धूमः पावकहेतुकस्तदभावगमक उपलब्धः। न चाभिन्ननिमित्तजन्यता तयोः प्रतिबन्धः अभावस्याऽकार्यताभ्युपगमात्। नापि तादात्म्यलक्षणः तयोस्तादात्म्यायोगात्। न च घटस्वरूपव्यावृत्तत्वात् तेषां तदभावप्रतिपत्तिजनकत्वम् सकलत्रैलोक्याभावप्रतिपत्तिजनकत्वप्रसक्तेः तेषां ततोऽपि व्यावृत्तस्वरूपत्वात्। न च घटविनाशरूपत्वात् तेषां नायं दोषः तेषां वस्तुरूपत्वात् विनाशस्य च निःस्व-१५ भावत्वात् तथा च तादात्म्यविरोधः अन्यथा घटानुपलम्भवत् तेषामपि सदाऽनुपलब्धिर्भवेत् तस्मात् प्रागभावात्मकः सन् घटः प्रध्वंसाभावात्मकतां प्रतिपद्यत इत्यभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा पूर्वोक्तदोषानतिवृत्तिः। सत्त्वलक्षणस्यापि हेतोर्गमकत्वमनेनैव प्रकारेण सम्भवति अन्यथा उत्पत्त्यभावात् स्थित्यभावः तदभावे विनाशस्याप्यभावः असतो विनाशायोगादिति त्र्यात्मकमेकं वस्त्वभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा तदनुपपत्तेरिति प्राक् प्रदर्शितत्वान्न पुनरुच्यते। यथा चात्मनः परलोकगा-२० मित्वम् शरीरमात्रव्यापकत्वं च तथा प्रतिपादितमेव। ननु शरीरमात्रव्यापित्वे तस्य गमनाभावात् देशान्तरे तद्गुणोपलब्धिर्न भवेत्, न, तदधिष्ठितशरीरस्य गमनाविरोधात् पुरुषाधिष्ठितरथवत्। न च मूर्तामूर्तयोर्घटाकाशयोरिव प्रतिबन्धाभावात् मूर्तशरीरगमनेऽपि नामूर्तस्यात्मनो गमनमिति वक्तव्यम्, संसारिणस्तस्यैकान्तेनामूर्तत्वासिद्धेस्तत्प्रतिबन्धस्याभावासिद्धेः ॥ ४६ ॥

[जल-दुग्धदृष्टान्तेन जीव-कर्मणोरविभागकथनम्]

२५ एतदेवाह—

अण्णोण्णाणुगयाणं 'इमं व तं व' त्ति विभयणमजुत्तं ।
जह दुद्ध-पाणियाणं जावंत विसेसपज्जाया ॥ ४७ ॥

अन्योन्यानुगतयोः परस्परानुप्रविष्टयोः आत्म कर्मणोः 'इदं वा तद् वा' इति 'इदं कर्म अयमात्मा' इति यद् विभजनं पृथक्करणं तद् अयुक्तम् [illegible] प्रमाणाभावेन ३० [illegible]। यथा दुग्ध-पानीययोः परस्परप्रदेशानुप्रविष्टयोः। किं सर्वथाऽप्यविभागो जीवकर्मप्रदेशयोः? इत्याह—यावन्तो विशेषपर्यायास्तावत्सु [illegible]। अतः परस्परानुगमस्य [illegible] सर्वविशेषाणाम् 'अन्य' इति विशेषणाश्रयानुगमेन[illegible] ॥ ४७ ॥

---

१ [illegible] वैशेषिक [illegible] –१, ३, ११ [illegible] पृ० [illegible]।

२ [illegible]

[illegible]

[जीव-कर्मणोरन्योन्यानुप्रवेशेन तदाश्रितज्ञानादि-रूपादीनामपि परस्परानुप्रवेशवर्णनम्]

जीव-कर्मणोरन्योन्यानुप्रवेशे तदाश्रितानामन्योन्यानुप्रवेश इत्याह—

रूआइपज्जवा जे देहे जीवदवियम्मि सुद्धम्मि।
ते अण्णोण्णाणुगया पण्णवणिज्जा भवत्थम्मि ॥ ४८ ॥

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शादयो ये पर्याया देहाश्रिता जीवद्रव्ये विशुद्धस्वरूपे च ये ज्ञाना- ५
दयस्तेऽन्योन्यानुगता जीवे रूपादयो देहे ज्ञानादय इति प्ररूपणीया भवस्थे संसारिणि अकार-
प्रश्लेषाद् वा असंसारिणि। न च संसारावस्थायां देहात्मनोरन्योन्यानुबन्धात् रूपादिभिस्तद्व्यपदेशः
मुक्त्यवस्थायां तु तदभावात् नासौ मुक्त इति वक्तव्यम्, तदवस्थायामपि देहाद्याश्रितरूपादिग्रहण-
परिणतज्ञान-दर्शनपर्यायद्वारेणात्मनस्तथाविधत्वात् तथाव्यपदेशसम्भवात् आत्मपुद्गलयोश्च रूपादि-
-ज्ञानादीनामन्योन्यानुप्रवेशात् कथञ्चिद् एकत्वम् अनेकत्वं च, मूर्त्तत्वम् अमूर्त्तत्वं चाव्यतिरेकात् १०
सिद्धमिति ॥ ४८ ॥

[परस्परानुप्रवेशादात्म-पुद्गलयोः कथंचिदेकत्वस्यानेकत्वस्य चोपपादनम्]

एतदेवाह—

एवं "एगे आया एगे दंडे य होइ किरिया य"।
करणविसेसेण य तिविहजोगसिद्धी वि अविरुद्धा ॥ ४९ ॥ १५

एवं इत्यनन्तरोदितप्रकारेण मनो-वाक्-कायद्रव्याणामात्मन्यनुप्रवेशात् आत्मैव न तद्व्यति-
रिक्तास्त इति तृतीयाङ्गस्थाने "एगे आया" [स्थाना० सू० २ पृ० १०] इति प्रथमसूत्रप्रतिपा-
दितः सिद्धः एक आत्मा एको दण्ड एका क्रियेति भवति मनो-वाक्-कायेषु दण्ड-क्रिया-
शब्दौ प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयौ करणविशेषेण च मनो-वाक्-कायस्वरूपेणात्मन्यनुप्रवेशात्तथाभि-
विधयोगस्वरूपत्वात् त्रिविधयोगसिद्धिरपि आत्मनः अविरुद्धैवेति एकस्य सतस्त्रिवि- २०
धयोगात्मकत्वात् अनेकान्तरूपता व्यवस्थितैव। न चान्योन्यानुप्रवेशात् एकात्मकत्वे बाह्याभ्यन्तर-
विभागाभाव इति अन्तर्दर्शविपाकाद्यनेकविवर्त्तात्मकमेकं चैतन्यम् बहिर्बाल-कुमार-यौवनाद्यनेका-
वस्थात्मकमेकं शरीरमध्यक्षतः संवेद्यत इत्यस्य विरोधः बाह्याभ्यन्तरविभागाभावेऽपि निमित्ता-
न्तरतः तद्व्यपदेशसम्भवात् ॥ ४९ ॥

[आत्म-पुद्गलयोर्वस्तुतो बाह्याभ्यन्तरविभागाभावेऽप्यभ्यन्तरव्यपदेशस्य मनोनिमित्तत्वेन समर्थनम्] २५

एतदेवाह—

ण य बाहिरओ भावो अब्भंतरओ य अत्थि समयम्मि।
णोइंदियं पुण पडुच होइ अब्भंतरविसेसो ॥ ५० ॥

आत्म-पुद्गलयोरन्योन्यानुप्रवेशात् उक्तप्रकारेण अर्हत्प्रणीतशासने न बाह्यो भावः अ- १०
भ्यन्तरो वा संभवति मूर्त्तामूर्त्तरूपादित्वाऽनेकान्तात्मकत्वात् संसारेऽरूपिणः वस्तु-
चस्तुनः। 'अभ्यन्तर' इति व्यपदेशस्तु नोइन्द्रियं मनः प्रतीत्य तस्यात्मपरिणतिरूपस्य परा-
प्रत्यक्षत्वात् शरीरं बाह्यमिव। न च शरीरात्मावयवयोः परस्परानुप्रवेशात् शरीरस्यैव अ-

---

१-स्थानांगसूत्र-... [illegible]

"सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाप्रत्यक्षात् विशेषस्मृतेश्च संशयः" [वैशेषिकद० २, २, १७] इति निमित्तमस्ति। न च व्यधिकरणतादोषासक्तिरपि घटकपालविनाशोत्पादयोर्मृद्रव्याधिकरणतया प्रतिपत्तेः। न चोभयदोषानुषङ्गः द्व्यात्मकस्य वस्तुनो जात्यन्तरत्वात्। सङ्करदोषप्रसक्तिरपि नास्ति अनुगतव्यावृत्त्योस्तदात्मके वस्तुनि स्वस्वरूपेणैव प्रतिभासनात्। अनवस्थादोषोऽपि न सम्भवी ५ भिन्नोत्पाद-व्यय-ध्रौव्यव्यतिरेकेण तदात्मकस्य वस्तुनोऽध्यक्षे प्रतिभासनात् स्वयमतदात्मकस्यापरयोगेऽपि तदात्मकतानुपपत्तेरन्यथाऽतिप्रसङ्गात्। तथाप्रतिभासादेव अभावदोषोऽपि न सम्भवी अबाधितप्रतिभासस्य तदभावे अभावात् भावे वा न ततो वस्तुव्यवस्थितिरिति सर्वव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिः। न च द्व्यात्मकत्वमन्तरेण घटस्य कपालदर्शनाद् विनाशानुमानं सम्भवति तत्र तेषां प्रतिबन्धानवधारणात् नहि तद्विनाशनिमित्तानि तानि मुद्गरादिहेतुत्वात् अभावस्य कारण-१० त्वाभावाच्च। यद्यपि घटहेतुकानि तानि तथापि घटसद्भावमेव गमयेयुर्न तदभावम् नहि धूमः पावकहेतुकस्तदभावगमक उपलब्धः। न चाभिन्ननिमित्तजन्यता तयोः प्रतिबन्धः अभावस्याऽकार्यत्वाभ्युपगमात्। नापि तादात्म्यलक्षणः तयोस्तादात्म्यायोगात्। न च घटस्वरूपव्यावृत्तत्वात् तेषां तदभावप्रतिपत्तिजनकत्वम् सकलत्रैलोक्याभावप्रतिपत्तिजनकत्वप्रसक्तेः तेषां ततोऽपि व्यावृत्तस्वरूपत्वात्। न च घटविनाशरूपत्वात् तेषां नायं दोषः तेषां वस्तुरूपत्वात् विनाशस्य च निःस्व-१५ भावत्वात् तथा च तादात्म्यविरोधः अन्यथा घटानुपलम्भवत् तेषामपि तदाऽनुपलब्धिर्भवेत् तस्मात् प्रागभावात्मकः सन् घटः प्रध्वंसाभावात्मकतां प्रतिपद्यत इत्यभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा पूर्वोक्तदोषानतिवृत्तिः। सत्त्वलक्षणस्यापि हेतोर्गमकत्वमनेनैव प्रकारेण सम्भवति अन्यथा उत्पत्त्यभावात् स्थित्यभावः तदभावे विनाशस्याप्यभावः असतो विनाशायोगादिति द्व्यात्मकमेकं वस्त्वभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा तदनुपपत्तेरिति प्राक् प्रदर्शितत्वान्न पुनरुच्यते। यथा चात्मनः परलोकगा-२० मित्वम् शरीरमात्रव्यापकत्वं च तथा प्रतिपादितमेव। ननु शरीरमात्रव्यापित्वे तस्य गमनाभावात् देशान्तरे तद्गुणोपलब्धिर्न भवेत्, न, तदधिष्ठितशरीरस्य गमनाविरोधात् पुरुषाधिष्ठितदारुयन्त्रवत्। न च मूर्त्तामूर्त्तयोर्घटाकाशयोरिव प्रतिबन्धाभावात् मूर्त्तशरीरगमनेऽपि नामूर्त्तस्यात्मनो गमनमिति वक्तव्यम्, संसारिणस्तस्यैकान्तेनामूर्त्तत्वासिद्धेस्तत्प्रतिबन्धाभावासिद्धेः॥ ४६॥

[जल-दुग्धदृष्टान्तेन जीव-कर्मणोरविभागकथनम्]

२५ एतदेवाह—

अण्णोण्णाणुगयाणं 'इमं व तं व' त्ति विभयणमजुत्तं।
जह दुद्ध-पाणियाणं जावंत विसेसपज्जाया॥ ४७॥

अन्योन्यानुगतयोः परस्परानुप्रविष्टयोः आत्म-कर्मणोः 'इदं वा तद् वा' इति 'इदं कर्म अयमात्मा' इति यद् विभजनं पृथक्करणं तद् अयुक्तम् [illegible] प्रमाणाभावेन ३० कर्तुमशक्यत्वात्। यथा दुग्ध-पानीययोः परस्परप्रदेशानुप्रविष्टयोः। [illegible] जीवकर्मप्रदेशयोः? इत्याह—यावन्तो विशेषपर्यायास्तावत्। अतः परस्परानुप्रवेशात् अन्त्यविशेषपर्यन्तत्वात् सर्वविशेषाणाम् 'अन्त' इति विशेषणमप्यनुगामि॥ ४७॥

---

१ "सामान्य[illegible] विशेषस्मृतेश्च विमर्श संशय"—२, १, २३ [illegible]

२—[illegible]

[जीव-कर्मणोरन्योन्यानुप्रवेशेन तदाश्रितज्ञानादि-रूपादीनामपि परस्परानुप्रवेशवर्णनम्]

जीव-कर्मणोरन्योन्यानुप्रवेशे तदाश्रितानामन्योन्यानुप्रवेश इत्याह—

रूआइपज्जवा जे देहे जीवदवियम्मि सुद्धम्मि।
ते अण्णोण्णाणुगया पण्णवणिज्जा भवत्थम्मि ॥ ४८ ॥

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शादयो ये पर्याया देहाश्रिता जीवद्रव्ये विशुद्धस्वरूपे च ये ज्ञाना- ५ दयस्तेऽन्योन्यानुगता जीवे रूपादयो देहे ज्ञानादय इति प्ररूपणीया भवस्थे संसारिणि अकार-प्रक्षेपाद् वा असंसारिणि। न च संसारावस्थायां देहात्मनोरन्योन्यानुबन्धात् रूपादिभिस्तद्व्यपदेशः मुक्त्यवस्थायां तु तदभावात् नासौ युक्त इति वक्तव्यम्, तदवस्थायामपि देहाद्याश्रितरूपादिग्रहण-परिणतज्ञान-दर्शनपर्यायद्वारेणात्मनस्तथाविधत्वात् तथाव्यपदेशासम्भवात् आत्मपुद्गलयोश्च रूपादि--ज्ञानादीनामन्योन्यानुप्रवेशात् कथञ्चिद् एकत्वम् अनेकत्वं च, मूर्तत्वम् अमूर्तत्वं चाव्यतिरेकात् १० सिद्धमिति ॥ ४८ ॥

[परस्परानुप्रवेशादात्म-पुद्गलयोः कथंचिदेकत्वस्यानेकत्वस्य चोपपादनम्]

एतदेवाह—

एवं "एगे आया एगे दंडे य होइ किरिया य"।
करणविसेसेण य तिविहजोगसिद्धी वि अविरुद्धा ॥ ४९ ॥ १५

एवं इत्यनन्तरोदितप्रकारेण मनो-वाक्-कायद्रव्याणामात्मन्यनुप्रवेशात् आत्मैव न तद्व्यति-रिक्तास्त इति तृतीयार्हत्स्थाने "एगे आया" [स्थाना० सू० २ पृ० १०] इति प्रथमसूत्रप्रतिपा-दितः सिद्धः एक आत्मा एको दण्ड एका क्रियेति भवति मनो-वाक्-कायेषु दण्ड-क्रिया-शब्दौ प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयौ करणविशेषेण च मनो-वाक्-कायस्वरूपेणात्मन्यनुप्रवेशात्तदात्मक-त्रिविधयोगस्वरूपत्वात् त्रिविधयोगसिद्धिरपि आत्मनः अविरुद्धैवेति एकस्य सतस्तस्य त्रिवि- २० धयोगात्मकत्वात् अनेकान्तरूपता व्यवस्थितैव। न चान्योन्यानुप्रवेशात् एकात्मकत्वे बाह्याभ्यन्तर-विभागाभाव इति अन्तर्हर्षविषादाद्यनेकविवर्तात्मकमेकं चैतन्यम् बहिर्बाल-कुमार-यौवनाद्यनेका-वस्थात्मकमेकं शरीरमध्यक्षतः संवेद्यत इत्यस्य विरोधः बाह्याभ्यन्तरविभागाभावेऽपि निमित्ता-न्तरतः तद्व्यपदेशसम्भवात् ॥ ४९ ॥

[आत्म-पुद्गलयोर्वस्तुतो बाह्याभ्यन्तरविभागाभावेऽप्यभ्यन्तरव्यपदेशस्य मनोऽनिन्द्रियत्वेन समर्थनम्] २५

एतदेवाह—

ण य बाहिरओ भावो अब्भंतरओ य अत्थि समयम्मि।
णोइंदियं पुण पडुच्च होइ अब्भंतरविसेसो ॥ ५० ॥

आत्म-पुद्गलयोरन्योन्यानुप्रवेशात् उक्तप्रकारेण [illegible] न बाह्यो भावः अ- भ्यन्तरो वा संभवति मूर्तामूर्तरूपादिज्ञाना[illegible] [illegible] वस्तुन। 'अभ्यन्तरः' इति व्यपदेशस्तु नोइन्द्रियं [illegible] प्रत्यक्षाभावात् शरीर-वाचोरिव। न च [illegible]

१-स्थायां तद्-मा० ... [illegible]

नोऽपि तद्वत् परप्रत्यक्षताप्रसक्तिः इन्द्रियज्ञानस्याशेषपदार्थस्वरूपग्राहकत्वायोगादित्यस्य प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् अतः 'शरीरप्रतिबद्धत्वमात्मनो न भवति अमूर्तत्वात्' अत्र प्रयोगे हेतुरसिद्धः। यदि चात्मपरिणतिरूपमनसः शरीरादात्यन्तिको भेदः स्यात् तद्विकाराऽविकाराभ्यां शरीरस्य तत्त्वं न स्यात् तदुपकारापकाराभ्यां वा आत्मनः सुख-दुःखानुभवश्च न भवेत् शरीरविघातकृतश्च ५ हिंसकत्वमनुपपन्नं भवेत् शरीरपुष्ट्यादेः रागाद्युपचयहेतुत्वम् शरीरस्य 'कृशोऽहं स्थूलोऽहम्' इति प्रत्ययविषयत्वं च दूरोत्सारितं भवेत्। पुरुषान्तरशरीरस्येव घटाकाशयोरपि प्रदेशान्योन्यप्रवेशलक्षणो बन्धोऽस्त्येवेत्ययुक्तो दृष्टान्तः अन्यथा घटस्यावस्थितिरेव न भवेत्। न चान्योन्यानुप्रवेशसद्भावेऽप्याकाशवत् शरीरपरतन्त्रता आत्मनोऽनुपपन्ना, मिथ्यात्वादेः पारतन्त्र्यनिमित्तस्यात्र भावात् आकाशे च तदभावात्। न च शरीराद्यसत्त्वे सति तस्य मिथ्यात्वादिबन्धहेतुभिर्योगा-१० त्तस्माच्च तत्प्रतिबद्धत्वम् इतीतरेतराश्रयत्वम् अनादित्वाभ्युपगमेनास्य निरस्तत्वात्। न च शरीरसम्बन्धात् प्राग् आत्मनोऽमूर्तत्वम् सदा तैजस-कार्मणशरीरसम्बन्धित्वात् संसारावस्थायां तस्य अन्यथा भवान्तरस्थूलशरीरसम्बन्धित्वायोगात् पुद्गलोपष्टम्भमन्तरेणोर्ध्वगतिस्वभावस्यापरदिग्गमनासम्भवात् स्थूलशरीरेणातिसूक्ष्मस्य रज्ज्वादिनेवाकाशस्य सम्बन्धायोगात् संसारित्वमन्यथा जगत् स्यादिति संसार्यात्मनः सूक्ष्मशरीरसम्बन्धित्वं सर्वैरभ्युपगन्तव्यम्।

१५ अथ शरीरात्मनोस्तादात्म्ये शरीरावयवच्छेदे आत्मावयवस्यापि छेदप्रसक्तिः तच्छेदे तयोर्भेदप्रसङ्गः, न, कथञ्चित् तच्छेदस्याभ्युपगमात् अन्यथा शरीरात् पृथग्भूतावयवस्य कम्पोपलब्धिर्न भवेत्। न च छिन्नावयवानुप्रविष्टस्य पृथगात्मत्वप्रसक्तिः, तत्रैव पश्चादनुप्रवेशात् छिन्ने हस्तादौ कम्पादिलिङ्गादर्शनादियं कल्पना। न चान्यत्र गमनात् तत्र तल्लिङ्गानुपलब्धिः [illegible] देहस्यापि तेन सह गमनप्रसक्तेः। न चैकत्र सन्ततावनेक आत्मा अनेकज्ञानादिपर्यायाणामेकत्वानु-२० सन्धानेऽप्रतिभासप्रसक्तेः शरीरान्तरव्यवस्थितात्मान्तरवत्। न च पृथग्भूतहस्ताद्यवयवस्थितोऽसौ तत्रैव विनष्ट इति कल्पनापि युक्तिसङ्गता, शेषस्याप्येकदेशेन तद्वत् विनाशप्रसक्तेः। ततोऽन्यथाऽ[illegible] [illegible] तदनुप्रवेशोऽप्यमीपत्ते [illegible]। न चैकत्वे आत्मनो [illegible] [illegible], शरीरद्वारेण तथापि [illegible] [illegible] (?) [illegible]—[illegible]

२५ [illegible] तथैव कारणात् [illegible]। न [illegible] [illegible] [illegible]। न च शरीराऽ[illegible], तत्र [illegible] [illegible]। न [illegible] छेदः अतिप्रसङ्गात्। न च [illegible] न छिन्ना [illegible] [illegible]। कथं [illegible] [illegible]

३० [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[निरपेक्षयोर्द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोर्मतेन यथा यथा कर्मबन्धस्तत्फलप्ररूपणा भवति तथोपवर्णनम्]

अस्य च मिथ्यात्वादिपरिणतियद्योपात्तपुद्गलाद्यात्मिभावलक्षणो बन्धः तद्द्योपनतसुख-दुःखानुभवस्वरूपश्च भोगः अनेकान्तात्मकत्वे सत्युपपद्यते अन्यथा तयोरयोग इति प्रतिपादनार्थमाह—दव्वट्ठियस्स इत्यादि।   ५

अथवा परस्परसापेक्षद्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोः प्ररूपणा प्रदर्शितन्यायेन सम्भविनी निरपेक्षयोः कथं सा? इत्याह—

दव्वट्ठियस्स आया बंधइ कम्मं फलं च वेएइ ।
बीयस्स भावमेत्तं ण कुणइ ण य कोइ वेएइ ॥ ५१ ॥

द्रव्यास्तिकस्येयं प्ररूपणा-आत्मा एकः स्थायी कर्म ज्ञानादिविबन्धकं बध्नाति १०
स्वीकरोति तस्य कर्मणः फलं च कार्यरूपं वेदयते भुङ्क्ते आत्मैव। द्वितीयस्य तु पर्यायार्थिकस्येयं प्ररूपणा-नैवात्मा स्थाय्यस्ति किन्तु भावमात्रं विज्ञानमात्रमिति न करोति न च कश्चिद् वेदयते उत्पत्तिक्षणानन्तरध्वंसिनः कर्तृत्वाऽनुभवितृत्वायोगात् ॥ ५१ ॥

तथेयमपि तयोस्तथाभूतयोः प्ररूपणेत्याह—

दव्वट्ठियस्स जो चेव कुणइ सो चेव वेयए णियमा ।   १५
अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ पज्जवणयस्स ॥ ५२ ॥

य एव करोति स एव वेदयते नित्यत्वात् द्रव्यास्तिकस्यैतन्मतम् । अन्यः करोत्यन्यश्च भुङ्क्ते क्षणिकत्वात् पर्यायनयस्य । ननु पूर्वगाथोक्तमेव पुनरभिदधता पिष्टपेषणमाचार्येण कृतं भवेत्, न; उत्पत्तिसमनन्तरध्वंसेन करणम् भोगो वा सम्भवतीति प्राक् प्रतिपादितम् इह तु उत्पत्तिक्षण एव कर्ता तदनन्तरक्षणश्च भोक्तेति न पुनरुक्तता । उक्तं च परैः—२०
"भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते" [[1]   ] इति ॥ ५२ ॥

[सापेक्षनयद्वयाश्रितानामेव कथंचित्पदाङ्कितानां वचसां स्वसमयप्ररूपणात्वं नान्येषामित्यभिधानम्]

इयमसंयुक्तयोरनयोः स्वसमयप्ररूपणा न भवति या तु स्वसमयप्ररूपणा तामाह—   २५

जे वयणिज्जवियप्पा संजुज्जंतेसु होन्ति एएसु ।
सा ससमयपण्णवणा तित्थयराऽऽसायणा अण्णा ॥ ५३ ॥

ये वचनीयस्याभिधेयस्य विकल्पान्तरप्रतिपादका अभिधानभेदाः संयुज्यमानयोरन्योन्यसम्बद्धयोर्भवन्त्यनयोर्द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोर्नययोः। ते च—'कथंचिन्नित्य आत्मा कथञ्चिदमूर्त्तः' इत्येवमादयः। सा एषा स्वसमयस्येति तदर्थस्य प्रज्ञापना निर्दोषा अन्या तु १०
निरपेक्षयोरनयोरेव नययोर्या प्ररूपणा सा तीर्थकरस्याऽऽसादनाऽधिक्षेपः। "[2]एगमेगेणं जीवस्स

---

[1] "क्षणिकाः सर्वसंस्कारा अस्थिराणां कुतः क्रिया । भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते" ॥-बोधिचर्या० प्रज्ञापार० पञ्जि० परि० ९ पृ० ३७६ पं० २। २, ३, २० अष्ट० आप्तमी० पृ० ५११। तत्त्वसंग्र० परि० १-१५ पृ० २८ पं० १४। स्याद्वादमञ्ज० श्लो० १६ पृ० ११८ पं० ७ आ०। सप्तभङ्गी० पृ० ११६ टि० १। [2] प्र०—"एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढिए परिवेढिए सिया ? उ०—गोयमा ! सिय आवेढियपरिवेढिए सिय नो आवेढियपरिवेढिए । जइ आवेढियपरिवेढिए नियमा अणंतेहिं"—भगवती० शत० ८ उद्दे० १० सू० ३५१।

नोऽपि तद्वत् परप्रत्यक्षताप्रसक्तिः इन्द्रियज्ञानस्याशेषपदार्थस्वरूपग्राहकत्वायोगादित्यस्य प्रतिपा-
दयिष्यमाणत्वात् अतः 'शरीरप्रतिबद्धत्वमात्मनो न भवति, अमूर्त्तत्वात्' अत्र प्रयोगे हेतुरसिद्धः।
यदि चात्मपरिणतिरूपमनसः शरीरादात्यन्तिको भेदः स्यात् तद्विकाराऽविकाराभ्यां शरीरस्य तत्त्वं
न स्यात् तदुपकारापकाराभ्यां वा आत्मनः सुख-दुःखानुभवश्च न भवेत् शरीरविघातकृतश्च
५ हिंसकत्वमनुपपन्नं भवेत् शरीरपुष्ट्यादेः रागाद्युपचयहेतुत्वम् शरीरस्य 'कृशोऽहं स्थूलोऽहम्' इति
प्रत्ययविषयत्वं च दूरोत्सारितं भवेत्। पुरुषान्तरशरीरस्येव घटाकाशयोरपि प्रदेशान्योन्यप्रवेश-
लक्षणो बन्धोऽस्त्येवेत्ययुक्तो दृष्टान्तः अन्यथा घटस्यावस्थितिरेव न भवेत्। न चान्योन्यानुप्रवेश-
सद्भावेऽप्याकाशवत् शरीरपरतन्त्रता आत्मनोऽनुपपन्ना, मिथ्यात्वादेः पारतन्त्र्यनिमित्तस्यात्मनि
भावात् आकाशे च तदभावात्। न च शरीरायत्तत्वे सति तस्य मिथ्यात्वादिबन्धहेतुभिर्योगः
१० तस्माच्च तत्प्रतिबद्धत्वम् इतीतरेतराश्रयत्वम् अनादित्वाभ्युपगमेनास्य निरस्तत्वात्। न च
शरीरसम्बन्धात् प्राग् आत्मनोऽमूर्त्तत्वम् सदा तैजस-कार्मणशरीरसम्बन्धित्वात् संसारावस्थायां
तस्य अन्यथा भवान्तरस्थूलशरीरसम्बन्धित्वायोगात् पुद्गलोपष्टम्भव्यतिरेकेणोर्ध्वगतिस्वभावस्या-
परदिग्गमनासम्भवात् स्थूलशरीरेणातिसूक्ष्मस्य रज्ज्वादिनेवाकाशस्य सम्बन्धायोगात् संसारिशू-
न्यमन्यथा जगत् स्यादिति संसार्यात्मनः सूक्ष्मशरीरसम्बन्धित्वं सर्वदाऽभ्युपगन्तव्यम्।

१५ अथ शरीरात्मनोस्तादात्म्ये शरीरावयवच्छेदे आत्मावयवस्यापि छेदप्रसक्तिः तच्छेदे तयो-
र्भेदप्रसङ्गः, न; कथञ्चित् तच्छेदस्याभ्युपगमात् अन्यथा शरीरात् पृथग्भूतावयवस्य कम्पोपलब्धिर्न
भवेत्। न च छिन्नावयवानुप्रविष्टस्य पृथगात्मत्वप्रसक्तिः, तत्रैव पश्चादनुप्रवेशात् छिन्ने हस्तादौ
कम्पादितल्लिङ्गादर्शनादियं कल्पना। न चान्यत्र गमनात् तस्य तल्लिङ्गानुपलब्धिः एकत्वादात्मन-
देशस्यापि तेन सह गमनप्रसक्तेः। न चैकत्र सन्तानेऽनेक आत्मा अनेकज्ञानावयवानामेकत्रानुभ-
२० वाभावेऽप्रतिभासप्रसक्तेः शरीरान्तरव्यवस्थितात्मान्तरवत्। न च पृथग्भूतहस्ताद्यवयवस्थितोऽसौ
तत्रैव विनष्ट इति कल्पनापि युक्तिसंगता, शेषस्याप्येकत्वेन तद्वद् विनाशप्रसक्तेः ततोऽवयवाऽवये-
[illegible] अविनष्टस्य च तदनुप्रवेशोऽपसीयते गत्यन्तराभावात्। न चैवमपि आत्मनो विभाग-
भावाच्छेदाभाव इति वक्तव्यम्, शरीरद्वारेण तस्यापि सविभागत्वात् अन्यथा सावयवशरीरव्यापिना
तस्य कथं भवेत्? न चारब्धमूर्त्तद्रव्यावच्छिन्नावयवस्य(?) सर्वदैव तेन तथाभावः—उत्तरकालमपि
२५ [illegible] तथैव स्मरणात् [illegible]। न चारम्भकमूर्त्तद्रव्यवत्
[illegible] येन तद्वत् तस्य तथैव भावप्रसक्तिः। न चारम्भकत्वात्
तस्य निरवयवत्वम् शरीरव्यापित्वाभावप्रसक्तेः। न च शरीरव्याप्यसौ, तत्र सर्वत्र
[illegible]। न तद्व्यापकस्य तच्छेदे छेदः अतिप्रसङ्गात्। न च तदवयवच्छेदे न छिन्नः तत्र
[illegible] कथं छिन्नाच्छिन्नयोः संघटनं पश्चादिति
३० चेत्? न, एकत्वेन छेदाभावात् [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
३५ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

[निरपेक्षयोर्द्रव्यास्तिक–पर्यायास्तिकयोर्मतेन यथा यथा कर्मबन्धस्तत्फलप्ररूपणा भवति तथोपवर्णनम्]

अस्य च मिथ्यात्वादिपरिणतिवशोपात्तपुद्गलाङ्गाङ्गिभावलक्षणो बन्धः तद्वशोपनतसुख-दुःखाद्यनुभवस्वरूपश्च भोगः अनेकान्तात्मकत्वे सत्युपपद्यते अन्यथा तयोरयोग इति प्रतिपादनार्थमाह— दव्वट्ठियस्स इत्यादि।

अथवा परस्परसापेक्षद्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोः प्ररूपणा प्रदर्शितन्यायेन सम्भविनी निरपेक्षयोः कथं सा? इत्याह—

> दव्वट्ठियस्स आया बंधइ कम्मं फलं च वेएइ ।
> बीयस्स भावमेत्तं ण कुणइ ण य कोइ वेएइ ॥ ५१ ॥

द्रव्यास्तिकस्येयं प्ररूपणा-आत्मा एकः स्थायी कर्म ज्ञानादिनिबन्धकं बध्नाति स्वीकरोति तस्य कर्मणः फलं च कार्यरूपं वेदयते भुङ्क्ते आत्मैव। द्वितीयस्य तु पर्यायार्थिकस्येयं प्ररूपणा-नैवात्मा स्थाय्यस्ति किन्तु भावमात्रं विज्ञानमात्रमिति न करोति न च कश्चिद् वेदयते उत्पत्तिक्षणानन्तरध्वंसिनः कर्तृत्वाऽनुभवितृत्वायोगात् ॥ ५१ ॥

तथेयमपि तयोस्तथाभूतयोः प्ररूपणेत्याह—

> दव्वट्ठियस्स जो चेव कुणइ सो चेव वेयए णियमा ।
> अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ पज्जवणयस्स ॥ ५२ ॥

य एव करोति स एव वेदयते नित्यत्वात् द्रव्यास्तिकस्यैतन्मतम्। अन्यः करोत्यन्यश्च भुङ्क्ते क्षणिकत्वात् पर्यायनयस्य। ननु पूर्वगाथोक्तमेव पुनरभिदधता पिष्टपेषणमाचार्येण कृतं भवेत्, न, उत्पत्तिसमनन्तरध्वस्तेन करणम् भोगो वा सम्भवीति प्राक् प्रतिपादितम् इह तु उत्पत्तिक्षण एव कर्त्ता तदनन्तरक्षणश्च भोक्तेति न पुनरुक्तता। उक्तं च परैः—"भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते"[1] [ ] इति ॥ ५२ ॥

[सापेक्षनयद्वयाश्रितानामेव कथंचित्पदाङ्कितानां वचसां स्वसमयप्ररूपणात्वं नान्येषामित्यभिधानम्]

इयमसंयुक्तयोरनयोः स्वसमयप्ररूपणा न भवति या तु स्वसमयप्ररूपणा तामाह—

> जे वयणिज्जवियप्पा संजुज्जंतेसु होन्ति एएसु ।
> सा ससमयपण्णवणा तित्थयराऽऽसायणा अण्णा ॥ ५३ ॥

ये वचनीयस्याभिधेयस्य विकल्पास्तत्प्रतिपादका अभिधानभेदाः संयुज्यमानयोरन्योन्यसम्बद्धयोर्भवन्त्यनयोर्द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोर्वचनयोः। ते च—'कथंचिन्नित्य आत्मा कथञ्चिदमूर्तः' इत्येवमादयः। सा एषा स्वसमयस्येति तदर्थस्य प्रज्ञापना निर्दोषा अन्या तु निरपेक्षयोरनयोरेव नययोर्या प्ररूपणा सा तीर्थकरस्याशातनाऽधिक्षेपः। "एगमेगेणं जीवस्स

---

1 "क्षणिकाः सर्वसंस्कारा अस्थिराणां कुतः क्रिया ?। भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते" ॥-बोधिचर्या॰ प्रज्ञा॰ पञ्जि॰ परि॰ ९ पृ॰ ३७६ पं॰ २१ २, ३, २० मद्र॰ आप्तमी पृ॰ ५११। तत्त्वसंग्र॰ पं॰ १-१५ पृ॰ २१ पं॰ १४। स्याद्वादमञ्ज॰ श्लो॰ १६ पृ॰ ११८ पं॰ ७ आ॰। सन्मतट॰ पृ॰ ११६ टि॰ १। 2 द्र॰—"एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढिए परिवेढिए सिया ? उ॰—गोयमा ! सिय आवेढियपरिवेढिए सिय नो आवेढियपरिवेढिए । जइ आवेढियपरिवेढिए नियमा अणंतेहिं"॥— भगवती॰ शत॰ ८ उ॰ १० सू॰ ३५१।

नोऽपि तद्वत् परप्रत्यक्षताप्रसक्तिः इन्द्रियज्ञानस्याशेषपदार्थस्वरूपग्राहकत्वायोगादित्यस्य प्रतिपा-
दयिष्यमाणत्वात् अतः 'शरीरप्रतिबद्धत्वमात्मनो न भवति. अमूर्त्तत्वात्' अत्र प्रयोगे हेतुरसिद्धः।
यदि चात्मपरिणतिरूपमनसः शरीरादात्यन्तिको भेदः स्यात् तद्विकाराऽविकाराभ्यां शरीरस्य तत्त्वं
न स्यात् तदुपकारापकाराभ्यां चा आत्मनः सुख-दुःखानुभवश्च न भवेत् शरीरविघातकृतश्च
५ हिंसकत्वमनुपपन्नं भवेत् शरीरपुष्ट्यादेः रागाद्युपचयहेतुत्वम् शरीरस्य 'कृशोऽहं स्थूलोऽहम्' इति
प्रत्ययविषयत्वं च दूरोत्सारितं भवेत् । पुरुषान्तरशरीरस्येव घटाकाशयोरपि प्रदेशान्योन्यप्रवेश-
लक्षणो बन्धोऽस्त्येवेत्ययुक्तो दृष्टान्तः अन्यथा घटस्यावस्थितिरेव न भवेत्। न चान्योन्यानुप्रवेश-
सद्भावेऽप्याकाशवत् शरीरपरतन्त्रता आत्मनोऽनुपपन्ना, मिथ्यात्वादेः पारतन्त्र्यनिमित्तस्यात्मनि
भावात् आकाशे च तदभावात् । न च शरीराद्यत्तत्वे सति तस्य मिथ्यात्वादिबन्धहेतुभियोग-
१० तस्माच्च तत्प्रतिबद्धत्वम् इतीतरेतराश्रयत्वम् अनादित्वाभ्युपगमेनास्य निरस्तत्वात् । न च
शरीरसम्बन्धात् प्राग् आत्मनोऽमूर्त्तत्वम् सदा तैजस-कार्मणशरीरसम्बन्धित्वात् संसारावस्थायां
तस्य अन्यथा भवान्तरस्थूलशरीरसम्बन्धित्वायोगात् पुद्गलोपष्टम्भव्यतिरेकेणोर्ध्वगतिस्वभावस्या-
परदिग्गमनासम्भवात् स्थूलशरीरेणातिसूक्ष्मस्य रज्ज्वादिनेवाकाशस्य सम्बन्धायोगात् संसारिणः
न्यमन्यथा जगत् स्यादिति संसार्यात्मनः सूक्ष्मशरीरसम्बन्धित्वं सर्वदाऽभ्युपगन्तव्यम्।

१५ अथ शरीरात्मनोस्तादात्म्ये शरीरावयवच्छेदे आत्मावयवस्यापि छेदप्रसक्तिः तच्छेदे तयो-
र्भेदप्रसङ्गः, न, कथञ्चित् तच्छेदस्याभ्युपगमात् अन्यथा शरीरात् पृथग्भूतावयवस्य कम्पोपलब्धिर्न
भवेत्। न च छिन्नावयवानुप्रविष्टस्य पृथगात्मत्वप्रसक्तिः, तत्रैव पश्चादनुप्रवेशात् छिन्ने हस्तादौ
कम्पादितल्लिङ्गादर्शनादियं कल्पना। न चान्यत्र गमनात् तस्य तल्लिङ्गानुपलब्धिः एकत्वादात्मनः
शेषस्यापि तेन सह गमनप्रसक्तेः। न चैकत्र सन्तानेऽनेक आत्मा अनेकज्ञानापसेयानामेकत्वानुप-
२० पत्तेः प्रतिभासप्रसक्तेः शरीरान्तरव्यवस्थितात्मान्तरवत्। न च पृथग्भूतहस्ताद्यवयवस्थितोऽसौ
तत्रैव विनष्ट इति कल्पनापि युक्तिसंगता, शेषस्याप्येकत्वेन तद्वद् विनाशप्रसक्तेः ततोऽन्यत्राऽऽगतेः
तत्रासत्त्वात् अविनष्टस्य च तदनुप्रवेशोऽवसीयते गत्यन्तराभावात्। न चैकत्वे आत्मनो विभागा-
भावाच्छेदाभाव इति वक्तव्यम्, शरीरद्वारेण तस्यापि सविभागत्वात् अन्यथा सावयवशरीरव्यापिता
तस्य कथं भवेत्? न चारब्धमूर्त्तद्रव्यावच्छिन्नावयवस्य(?) सर्वदैव तेषु तथाभावः—उत्पत्कालमपि
२५ तदवयवोपलम्भोऽरब्धपदार्थस्य तथैव स्मरणात् अन्यथैव [illegible]। न चारब्धारब्धमूर्त्तद्रव्यवत्
द्व्यणुकादिक्रमेणावस्थितसंयोगिस्तैरारब्धः येन तद्वत् तस्य तथैव नाशप्रसक्तिः । न चानारब्धत्वात्
तस्य निरवयवत्वम् शरीरसर्पणत्वाभावप्रसक्तेः । न च शरीराऽव्यवैकतोऽसौ, तत्र सर्वदैव
[illegible]। न तस्यावरकस्य तच्छेदे छेदः अतिप्रसङ्गात्। न च तदवयवच्छेदे न छिन्नः तत्र
[illegible] अनुप्रविष्ट एकत्वादिति ज्ञायते। कथं छिन्नाच्छिन्नयोः संघटनं पश्चादिति
३० चेत्? न, एकान्तेन छेदाभावात् पद्मनालतन्तुवदविच्छेदाभ्युपगमात् संघटनमपि तथाभूतादृष्टवशा-
दविरुद्धमेव। न चात्मनः शरीरमात्रव्यापकत्वे अन्यत्र शरीरान्तरसम्बन्धाभावानुपपत्त्या गतिक्रिया-
[illegible], कथंचित् [illegible] संकोच-विकाशात्मक-
[illegible]। न च देहात्मनोरन्योन्यानुप्रवेशे देहवन्मात्राऽस्य(?) आत्मनोऽपि [illegible]
[illegible] मेदात्। यदि [illegible]
३५ [illegible] न [illegible]
[illegible] रूप-रस-गन्ध-स्पर्शादिधर्मवन्तः पुद्गलाः [illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ ५५ ॥

[illegible]

[निरपेक्षयोर्द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोर्मतेन यथा यथा कर्मबन्धस्तत्फलप्ररूपणा भवति तथोपवर्णनम्]

अस्य च मिथ्यात्वादिपरिणतिवशोपात्तपुद्गलाङ्गाङ्गिभावलक्षणो बन्धः तद्वशोपनतसुख-दुःखाद्यनुभवस्वरूपश्च भोगः अनेकान्तात्मकत्वे सत्युपपद्यते अन्यथा तयोरयोग इति प्रतिपादनार्थमाह—दव्वट्ठियस्स इत्यादि। ५

अथवा परस्परसापेक्षद्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोः प्ररूपणा प्रदर्शितन्यायेन सम्भविनी निरपेक्षयोः कथं सा? इत्याह—

दव्वट्ठियस्स आया बंधइ कम्मं फलं च वेएइ।
बीयस्स भावमेत्तं ण कुणइ ण य कोइ वेएइ ॥ ५१ ॥

द्रव्यास्तिकस्येयं प्ररूपणा-आत्मा एकः स्थायी कर्म ज्ञानादिविबन्धकं बध्नाति १० स्वीकरोति तस्य कर्मणः फलं च कार्यरूपं वेदयते भुङ्क्ते आत्मैव। द्वितीयस्य तु पर्यायार्थिकस्येयं प्ररूपणा-नैवात्मा स्थाय्यस्ति किन्तु भावमात्रं विज्ञानमात्रमिति न करोति न च कश्चिद् वेदयते उत्पत्तिक्षणानन्तरध्वंसिनः कर्तृत्वाऽनुभवितृत्वायोगात् ॥ ५१ ॥

तथेयमपि तयोस्तथाभूतयोः प्ररूपणेत्याह—

दव्वट्ठियस्स जो चेव कुणइ सो चेव वेयए णियमा। १५
अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ पज्जवणयस्स ॥ ५२ ॥

य एव करोति स एव वेदयते नित्यत्वात् द्रव्यास्तिकस्यैतन्मतम्। अन्यः करोत्यन्यश्च भुङ्क्ते क्षणिकत्वात् पर्यायनयस्य। ननु पूर्वगाथोक्तमेव पुनरमिदधता पिष्टपेषणमाचार्येण कृतं भवेत्, न, उत्पत्तिसमनन्तरध्वंसेन करणम् भोगो वा सम्भवतीति प्राक् प्रतिपादितम् इह तु उत्पत्तिक्षण एव कर्त्ता तदनन्तरक्षणश्च भोक्तेति न पुनरुक्तता। उक्तं च परैः—२० "भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते" [ ] इति ॥ ५२ ॥

[सापेक्षनयद्वयाश्रितानामेव कथंचित्पदाङ्कितानां वचसां स्वसमयप्ररूपणात्वं नान्येषामित्यभिधानम्]

इयमसंयुक्तयोरनयोः स्वसमयप्ररूपणा न भवति या तु स्वसमयप्ररूपणा तामाह— २५

जे वयणिज्जवियप्पा संजुज्जंतेसु होन्ति एएसु।
सा ससमयपण्णवणा तित्थयराऽऽसायणा अण्णा ॥ ५३ ॥

ये वचनीयस्याभिधेयस्य विकल्पास्तत्प्रतिपादका अभिधानभेदाः संयुज्यमानयोरन्योन्यसव्यपेक्षयोर्भवन्त्यनयोर्द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकवाचकनययोः। ते च—'कथंचिन्नित्य आत्मा कथंचिदमूर्तः' इत्येवमादयः। सा एषा स्वसमयस्येति तदर्थस्य प्रज्ञापना निरंशा अन्या तु १० निरपेक्षयोरनयोरेव नययोर्या प्ररूपणा सा तीर्थकरस्याशातनाऽधिक्षेपः। "एगेमेगेणं जीवस्स

---

१ "क्षणिकाः सर्वसंस्कारा अस्थिराणां कुतः क्रिया। भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते" ॥—बोधिचर्या॰ प्रज्ञा॰ पञ्जि॰ परि॰ ९ पृ॰ ३७६ पं॰ ११, १, २० मद्रा॰ आगमी पृ॰ ५१९। तत्त्वार्थ॰ टी॰ ३-१४ पृ॰ २२ पं॰ १४। स्याद्वादमं॰ श्लो॰ १६ पृ॰ ११८ पं॰ ७ आ॰। सन्मतिटी॰ पृ॰ ११६ टि॰ १। २ प्र॰—"एगमेगस्स णं भंते! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढिए परिवेढिए सिया? उ॰—गोयमा! सिय आवेढियपरिवेढिए सिय नो आवेढियपरिवेढिए। जइ आवेढियपरिवेढिए नियमा अणंतेहिं"॥—भगवती॰ श॰ ८ उ॰ १० सू॰ ३५५।

नोऽपि तद्वत् परप्रत्यक्षताप्रसक्तिः इन्द्रियज्ञानस्याशेषपदार्थस्वरूपग्राहकत्वायोगादित्यस्य प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् अतः 'शरीरप्रतिबद्धत्वमात्मनो न भवति- अमूर्त्तत्वात्' अत्र प्रयोगे हेतुरसिद्धः। यदि चात्मपरिणतिरूपमनसः शरीरादात्यन्तिको भेदः स्यात् तद्विकाराऽविकाराभ्यां शरीरस्य तत्त्वं न स्यात् तदुपकारापकाराभ्यां वा आत्मनः सुख-दुःखानुभवश्च न भवेत् शरीरविघातकृतश्च
५ हिंसकत्वमनुपपन्नं भवेत् शरीरपुष्ट्यादेः रागाद्युपचयहेतुत्वम् शरीरस्य 'कृशोऽहं स्थूलोऽहम्' इति प्रत्ययविषयत्वं च दूरोत्सारितं भवेत्। पुरुषान्तरशरीरस्येव घटाकाशयोरपि प्रदेशान्योन्यप्रवेशलक्षणो बन्धोऽस्त्येवेत्ययुक्तो दृष्टान्तः अन्यथा घटस्यावस्थितिरेव न भवेत्। न चान्योन्यानुप्रवेशसद्भावेऽप्याकाशवत् शरीरपरतन्त्रता आत्मनोऽनुपपन्ना, मिथ्यात्वादेः पारतन्त्र्यनिमित्तस्यात्मनि भावात् -आकाशे च तदभावात्। न च शरीरायत्तत्वे सति तस्य मिथ्यात्वादिबन्धहेतुभिर्योगः
१० तस्माच्च तत्प्रतिबद्धत्वम् इतीतरेतराश्रयत्वम् अनादित्वाभ्युपगमेनास्य निरस्तत्वात्। न च शरीरसम्बन्धात् प्राग् आत्मनोऽमूर्त्तत्वम् सदा तैजस-कार्मणशरीरसम्बन्धित्वात् संसारावस्थायां तस्य अन्यथा भवान्तरस्थूलशरीरसम्बन्धित्वायोगात् पुद्गलोपष्टम्भव्यतिरेकेणोर्ध्वगतिस्वभावस्यापरदिग्गमनासम्भवात् स्थूलशरीरेणातिसूक्ष्मस्य रज्ज्वादिनेवाकाशस्य सम्बन्धायोगात् संसारिणामन्यथा जगत् स्यादिति संसार्यात्मनः सूक्ष्मशरीरसम्बन्धित्वं सर्वदाऽभ्युपगन्तव्यम्।

१५ अथ शरीरात्मनोस्तादात्म्ये शरीरावयवच्छेदे आत्मावयवस्यापि छेदप्रसक्तिः भच्छेदे तयोर्भेदप्रसङ्गः, न; कथञ्चित् तच्छेदस्याभ्युपगमात् अन्यथा शरीरात् पृथग्भूतावयवस्य कम्पोपलब्धिर्न भवेत्। न च छिन्नावयवानुप्रविष्टस्य पृथगात्मत्वप्रसक्तिः, तत्रैव पश्चादनुप्रवेशात् छिन्ने हस्तादौ कम्पादितल्लिङ्गादर्शनादियं कल्पना। न चान्यत्र गमनात् तस्य तल्लिङ्गानुपलब्धिः एकत्वादात्मनः
देशस्यापि तेन सह गमनप्रसक्तेः। न चैकत्र सन्ततावनेक आत्मा अनेकज्ञानावसेयानामेकत्वानुस-
२० न्धानाद्यप्रतिभासप्रसक्तेः शरीरान्तरव्यवस्थितात्मान्तरवत्। न च पृथग्भूतहस्ताद्यवयवस्थितोऽसौ तत्रैव विनष्ट इति कल्पनापि युक्तिसंगता, शेषस्याप्येकत्वेन तद्वद् विनाशप्रसक्तेः ततोऽन्यत्रागतेः तत्रासत्त्वात् अविनष्टत्वाच्च तदनुप्रवेशोऽवसीयते गत्यन्तराभावात्। न चैकत्वे आत्मनो विभागाभावाच्छेदाभाव इति वक्तव्यम्, शरीरद्वारेण तस्यापि सविभागत्वात् अन्यथा सावयवशरीरव्यापिता तस्य कथं भवेत्? न चात्यमूर्त्तद्रव्यावच्छिन्नावयवस्य(?) सर्वदैव तेन तथाभावः—उत्तरकालमपि
२५ तदवयवोपष्टम्भोपलब्धपदार्थस्य तथैव स्मरणात् अन्यत्वे चैतद्दर्शनात्। न चाराधारभूतमूर्त्तद्रव्यवद् परमाण्वादिक्रमेणावस्थितसंयोगैस्तैरारब्धः येन तद्वत् तस्य तथैव भावप्रसक्तिः। न चाकारभ्रंशात् तस्य निरवयवत्वम् शरीरसर्वगतत्वाभावप्रसक्तेः। न च शरीराऽसर्वगतोऽसौ, तत्र सर्वत्रैव स्पर्शोपलम्भात्। न तद्व्यापकस्य तच्छेदे छेदः अतिप्रसङ्गात्। न च तदवयवच्छेदे न छिन्नः तत्र कम्पाद्युपलब्धेः सततस्यैवानुप्रविष्ट एकत्वादिति वाच्यम्। कथं छिन्नाच्छिन्नयोः संघटनं पश्चादिति
३० चेत्? न; एकान्तेन छेदाभावात् पद्मनालतन्तुवदविच्छेदाभ्युपगमात् संघटनमपि तथाभूतादृष्टवशादविरुद्धमेव। न चात्मनः शरीरमात्रव्यापकत्वे अन्यत्र शरीरान्तरसम्बन्धाय धावनगत्या गतिक्रियाप्रसक्तेरनित्यत्वप्रसक्तिर्दोषः, कथंचित् तस्येष्टत्वात् गृहीतनानाशरीरस्वभावत्वात् संकोच-विकासाभावस्य[illegible] तेन तस्य व्यापकत्वात्। न च देहात्मनोरन्योन्यानुप्रवेशे देहगतरूपाद्यात्मनोऽपि तथात्वप्रसक्तिः, शरीरेन्द्रिययोरन्योन्यानुप्रवेशेऽपि तयोर्लक्षणभेदतो भेदात्। यदि भिन्नलक्षणयोरन्योन्यानुप्रवेशो [illegible]
३५ [illegible] यथा बध्यमाने शरीरे प्रथममुपरक्तेऽपि न [illegible]। न चैव [illegible]

मूर्त्तादनेकान्तात्मकत्वमात्मनोऽभ्युपगन्तव्यम् ॥ ५७ ॥

---

१ वादि वा-भ० ... । २ तस्य तथा-... । [illegible] पृ० ... [illegible] ... पृ० ५३-६६ ... [illegible] पृ० ३२५ पं० ... पृ० ... [illegible] ... । ३-ना वधा... [illegible] ... पृ० ... । ४ ... [illegible] ... । ५ ... [illegible] ... पृ० ८ ।

[निरपेक्षयोर्द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोर्मतेन यथा यथा कर्मबन्धस्तत्फलप्ररूपणा भवति तथोपवर्णनम्]

अस्य च मिथ्यात्वादिपरिणतिवशोपात्तपुद्गलाकाङ्क्षाभावलक्षणो बन्धः तद्वशोपनतसुख-दुःखाद्यनुभवस्वरूपश्च भोगः अनेकान्तात्मकत्वे सत्युपपद्यते अन्यथा तयोरयोग इति प्रतिपादनार्थमाह—दव्वट्ठियस्स इत्यादि। ५

अथवा परस्परसापेक्षद्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोः प्ररूपणा प्रदर्शितन्यायेन सम्भविनी निरपेक्षयोः कथं स्यात्? इत्याह—

दव्वट्ठियस्स आया बंधइ कम्मं फलं च वेएइ ।
बीयस्स भावमेत्तं ण कुणइ ण य कोइ वेएइ ॥ ५१ ॥

द्रव्यास्तिकस्येयं प्ररूपणा-आत्मा एकः स्थायी कर्म ज्ञानादिविबन्धकं बध्नाति १० स्वीकरोति तस्य कर्मणः फलं च कार्यरूपं वेदयते भुङ्क्ते आत्मैव। द्वितीयस्य तु पर्यायार्थिकस्येयं प्ररूपणा-नैवात्मा स्थाय्यस्ति किन्तु भावमात्रं विज्ञानमात्रमिति न करोति न च कश्चिद् वेदयते उत्पत्तिक्षणानन्तरध्वंसिनः कर्तृत्वाऽनुभवितृत्वायोगात् ॥ ५१ ॥

तथेयमपि तयोस्तथाभूतयोः प्ररूपणेत्याह—

दव्वट्ठियस्स जो चेव कुणइ सो चेव वेयए णियमा ।   १५
अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ पज्जवणयस्स ॥ ५२ ॥

य एव करोति स एव वेदयते नित्यत्वात् द्रव्यास्तिकस्यैतन्मतम्। अन्यः करोत्यन्यश्च भुङ्क्ते क्षणिकत्वात् पर्यायनयस्य। ननु पूर्वगाथयैतदेव पुनरभिदधता पिष्टपेषणमाचार्येण कृतं भवेत्, न, उत्पत्तिसमनन्तरध्वंसेन करणम् भोगो वा नासम्भवीति प्राक् प्रतिपादितम् इह तु उत्पत्तिक्षण एव कर्ता तदनन्तरक्षणश्च भोक्तेति न पुनरुक्तता। उक्तं च परैः—२० "भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते" [   ] इति ॥ ५२ ॥

[सापेक्षनयद्वयाश्रितानामेव कथंचित्पदाङ्कितानां वचसां स्वसमयप्ररूपणात्वं नान्येषामित्यभिधानम्]

इयमसंयुक्तयोस्तयोः स्वसमयप्ररूपणा न भवति या तु स्वसमयप्ररूपणा तामाह—   २५

जे वयणिज्जवियप्पा संजुज्जंतेसु होंति एएसु ।
सा ससमयपण्णवणा तित्थयराऽऽसायणा अण्णा ॥ ५३ ॥

ये वचनीयस्याभिधेयस्य विकल्पास्तत्प्रतिपादका अभिधानभेदाः संयुज्यमानयोरन्योन्यसव्यपेक्षयोर्भवन्त्यनयोर्द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकवाच्यनययोः। ते च—'कथंचिन्नित्य आत्मा कथंचिदमूर्तः' इत्येवमादयः। सा एषा स्वसमयस्येति तदर्थस्य प्रज्ञापना निरूपणा अन्या तु ३० निरपेक्षयोरनयोरेव नययोर्या प्ररूपणा सा तीर्थकरस्याऽऽशातनाऽधिक्षेपः। 'एगमेगेणं जीवस्स

---

१ "क्षणिकाः सर्वसंस्काराः अस्थिराणां कुतः क्रिया ।। भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते" त०—बो०चि०पं०ए० प्रज्ञाकर० पञ्चि० परि० ९ पृ० ३७६ पं० ११ ९, ९, १० इद० भामती पृ० ५११। तत्त्वार्थ० टी० ५-१५ पृ० ११ पं० १४। स्याद्वादम० श्लो० १६ पृ० १२८ पं० ७ आ०। मध्यमक० पृ० १११ टि० ११   २ [illegible]
अंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे केवइएहिं नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स अविभागपलिच्छेदेहिं आ[illegible]
गु०—गोयमा ! सिय आवेढियपरिवेढिए सिय नो आवेढियपरिवेढिए । कइ आ[illegible]
भगवती० श० ८ उ० १० सू०

नोऽपि तद्वत् परप्रत्यक्षताप्रसक्तिः इन्द्रियज्ञानस्याशेषपदार्थस्वरूपग्राहकत्वायोगाद्विस्तरेण प्रतिपा-
दयिष्यमाणत्वात् अतः 'शरीरप्रतिबद्धत्वमात्मनो न भवति अमूर्त्तत्वात्' अत्र प्रयोगे हेतुरसिद्धः।
यदि चात्मपरिणतिरूपमनसः शरीरादात्यन्तिको भेदः स्यात् तद्विकाराऽविकाराभ्यां शरीरस्य तत्त्वं
न स्यात् तदुपकारापकाराभ्यां वा, आत्मनः सुख-दुःखानुभवश्च न भवेत् शरीरविघातकृतश्च
५ हिंसकत्वमनुपपन्नं भवेत् शरीरपुष्ट्यादेः रागाद्युपचयहेतुत्वम् शरीरस्य 'कृशोऽहं स्थूलोऽहम्' इति
प्रत्ययविषयत्वं च दूरोत्सारितं भवेत्। पुरुषान्तरशरीरस्येव घटाकाशयोरपि प्रदेशान्योन्यप्रवेश-
लक्षणो बन्धोऽस्त्येवेत्ययुक्तो दृष्टान्तः अन्यथा घटस्यावस्थितिरेव न भवेत्। न चान्योन्यानुप्रवेश-
सद्भावेऽप्याकाशवत् शरीरपरतन्त्रता आत्मनोऽनुपपन्ना, मिथ्यात्वादेः पारतन्त्र्यनिमित्तस्यात्मनि
भावात् आकाशे च तदभावात्। न च शरीरायत्तत्वे सति तस्य मिथ्यात्वादिबन्धहेतुभिर्योग-
१० स्तस्माच्च तत्प्रतिबद्धत्वम् इतीतरेतराश्रयत्वम् अनादित्वाभ्युपगमेनास्य निरस्तत्वात्। न च
शरीरसम्बन्धात् प्राग् आत्मनोऽमूर्त्तत्वम् सदा तैजस-कार्मणशरीरसम्बन्धित्वात् संसारावस्थायां
तस्य अन्यथा भवान्तरस्थूलशरीरसम्बन्धित्वायोगात् पुद्गलोपष्टम्भव्यतिरेकेणोर्ध्वगतिस्वभावस्या-
परदिग्गमनासम्भवात् स्थूलशरीरेणातिसूक्ष्मस्य रज्ज्वादिनेवाकाशस्य सम्बन्धायोगात् संसारित्वाभावः स्या-
न्यमन्यथा जगत् स्यादिति संसार्यात्मनः सूक्ष्मशरीरसम्बन्धित्वं सर्वदाभ्युपगन्तव्यम्।

१५ अथ शरीरात्मनोस्तादात्म्ये शरीरावयवच्छेदे आत्मावयवस्यापि छेदप्रसक्तिः अच्छेदे तयो-
र्भेदप्रसङ्गः, न; कथञ्चित् तच्छेदस्याभ्युपगमात् अन्यथा शरीरात् पृथग्भूतावयवस्य कम्पोपलब्धिर्न
भवेत्। न च छिन्नावयवानुप्रविष्टस्य पृथगात्मत्वप्रसक्तिः, तत्रैव पश्चादनुप्रवेशात् छिन्ने हस्तादौ
कम्पादितल्लिङ्गादर्शनादियं कल्पना। न चान्यत्र गमनात् तस्य तल्लिङ्गानुपलब्धिः एकत्वादात्मनः
शेषस्यापि तेन सह गमनप्रसक्तेः। न चैकत्र सन्ततावनेक आत्मा अनेकज्ञानावसेयानामेकत्रानुभ-
२० वाधारेऽप्रतिभासप्रसक्तेः शरीरान्तरव्यवस्थितात्मान्तरवत्। न च पृथग्भूतहस्ताद्यवयवस्थितोऽसौ
तत्रैव विनष्ट इति कल्पनापि युक्तिसंगता, शेषस्याप्येकत्वेन तद्वद् विनाशप्रसक्तेः ततोऽन्यत्राऽगतेः
तत्रासत्त्वात् अविनष्टत्वाच्च तदनुप्रवेशोऽवसीयते गत्यन्तराभावात्। न चैकत्वे आत्मनो विभागा-
भावाच्छेदाभाव इति वक्तव्यम्, शरीरद्वारेण तस्यापि सविभागत्वात् अन्यथा सावयवशरीरव्यापिता
तस्य कथं भवेत्? न चारम्भमूर्त्तद्रव्यावच्छिन्नावयवस्य(?) सर्वदैव तस्य तथाभावः—उत्तरकालमपि
२५ तदवयवोपष्टम्भोपलम्भसार्थस्य तथैव स्मरणात् अन्यत्वे चैतद्दर्शनात्। न चासावारम्भमूर्त्तद्रव्यवत्
द्व्यणुकादिप्रक्रमेणावस्थितसंयोगैस्तैरारब्धः येन तद्वत् तस्य तथैव भावप्रसक्तिः। न चानारब्धत्वात्
तस्य निरवयवत्वम् शरीरसर्वगतत्वाभावप्रसक्तेः। न च शरीराऽसर्वगतोऽसौ, तत्र सर्वत्रैव
स्पर्शोपलम्भात्। न तद्व्यापकस्य तच्छेदे छेदः अतिप्रसङ्गात्। न च तदवयवच्छेदे न छिन्नः तत्र
कम्पाद्युपलब्धेः अतस्तत्रैवानुप्रविष्ट एकत्वादिति ज्ञायते। कथं छिन्नाच्छिन्नयोः संघट्टनं पश्चादिति
३० चेत्? न; एकान्तेन छेदाभावात् पद्मनालतन्तुवदविच्छेदाभ्युपगमात् संघट्टनमपि तथाभूतादृष्टवशा-
दविरुद्धमेव। न चात्मनः शरीरमात्रव्यापकत्वे अन्यत्र शरीरान्तरसम्बन्धाय धावमानस्य गतिक्रिया-
प्रसक्तेरनित्यत्वप्रसक्तिर्दोषः, कथंचित् तस्येष्टत्वात् गृहान्तर्गतप्रदीपप्रभावत् संकोच-विकाशधर्म-
त्वेन तस्य न्यायप्राप्तत्वात्। न च देहात्मनोरन्योन्यानुप्रवेशे देहभक्षणात्मनोऽपि तथा-
त्वप्रसक्तिः, क्षीरोदकवत् तयोर्लक्षणभेदतो भेदात्। नहि भिन्नस्वरूपयोरन्योन्यानुप्रवेशे सत्यप्येक-
३५ स्यैकेऽपरस्य क्षयः यथा क्वाथ्यमाने क्षीरे प्रथममुदकक्षयेऽपि न क्षीरक्षयः। न चेह लक्षणभेदो
नास्ति। तथाहि—रूप-रस-गन्ध-स्पर्शादिधर्मवन्तः पुद्गलाः चैतन्यलक्षणश्चात्मेति निजलक्षणभेद-
भेदः। यदा चैकान्तामूर्त्तादिरूपत्वे अर्थक्रियादेरसंभवस्तथा प्रतिपादितमनेकधेति मूर्त्ता-
मूर्त्तादेरनेकान्तात्मकत्वमात्मनोऽभ्युपगन्तव्यम्॥ ५० ॥

१ यदि वा-वि० भा० आ०। २ मला मया-त०। [illegible] पृ० [illegible] पं० [illegible]
[illegible] पृ० १४९ पं० २०-पृ० १५१। [illegible] पृ० ५९-६६ [illegible]
[illegible] ३-वा [illegible]
[illegible] पुद्गल [illegible] ५ [illegible]
[illegible]

[निरपेक्षयोर्द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोर्मतेन यथा यथा कर्मबन्धस्तत्फलप्ररूपणा भवति तथोपवर्णनम्]

अत्र च मिथ्यात्वादिपरिणतिवशोपात्तपुद्गलाङ्गाङ्गिभावलक्षणो बन्धः तद्वशोपनतसुख-दुःखाद्यनुभवस्वरूपश्च भोगः अनेकान्तात्मकत्वे सत्युपपद्यते अन्यथा तयोरयोग इति प्रतिपादनार्थमाह— दव्वट्ठियस्स इत्यादि।

अथवा परस्परसापेक्षद्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोः प्ररूपणा प्रदर्शितन्यायेन सम्भविनी निरपेक्षयोः कथं सा? इत्याह—

दव्वट्ठियस्स आया बंधइ कम्मं फलं च वेएइ ।
बीयस्स भावमेत्तं ण कुणइ ण य कोइ वेएइ ॥ ५१ ॥

द्रव्यास्तिकस्येयं प्ररूपणा-आत्मा एकः स्थायी कर्म ज्ञानादिविबन्धकं बध्नाति स्वीकरोति तस्य कर्मणः फलं च कार्यरूपं वेदयते भुङ्क्ते आत्मैव। द्वितीयस्य तु पर्यायार्थिकस्येयं प्ररूपणा-नैवात्मा स्थाय्यस्ति किन्तु भावमात्रं विज्ञानमात्रमिति न करोति न च कश्चिद् वेदयते उत्पत्तिक्षणानन्तरध्वंसिनः कर्तृत्वाऽनुभवितृत्वायोगात् ॥ ५१ ॥

तथेयमपि तयोस्तथाभूतयोः प्ररूपणेत्याह—

दव्वट्ठियस्स जो चेव कुणइ सो चेव वेयए णियमा ।
अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ पज्जवणयस्स ॥ ५२ ॥

य एव करोति स एव वेदयते नित्यत्वाद् द्रव्यास्तिकस्यैतन्मतम्। अन्यः करोत्यन्यश्च भुङ्क्ते क्षणिकत्वात् पर्यायनयस्य। ननु पूर्वगाथोक्तमेव पुनरभिदधता [illegible] णमाचार्येण कृतं भवेत्, न, उत्पत्तिसमनन्तरध्वस्तेन करणम् भोगो वा सम्भवतीति [illegible] पादितम् इह तु उत्पत्तिक्षण एव कर्ता तदनन्तरक्षणश्च भोक्तेति न पुनरुक्तता। उक्तं च [illegible]— "भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते" [ ] इति ॥ ५२ ॥

[सापेक्षनयद्वयाश्रितानामेव कथंचित्पदाङ्कितानां वचसां स्वसमय[illegible]भिधानम्]

इयमसंयुक्तयोरनयोः स्वसमयप्ररूपणा न भवति या तु [illegible]—

जे वयणिज्जवियप्पा संजुज्जंतेसु होन्ति [illegible]
सा ससमयपण्णवणा तित्थयरा[illegible] ॥ ५३ ॥

ये वचनीयस्याभिधेयस्य विकल्पा[illegible] इत्योन्यसम्बद्धयोर्भवन्त्यनयोर्द्रव्यास्तिक-[illegible] कथञ्चिदमूर्तः' इत्येवमादयः। सा च [illegible] निरपेक्षयोरनयोरेव नययोः [illegible]

1 "एतिष्ठ [illegible]

पएसे अणंतेहिं णाणावरणिज्जपोग्गलेहिं आवेढियपवेढिए" [ ] इति णोपपन्ने सत्यपि—

"नामूर्त्तं मूर्त्ततामेति मूर्त्तं नायात्यमूर्त्तताम् ।
द्रव्यं कालत्रयेऽपीत्थं च्यवते नात्मरूपतः" ॥ [ ] इति ।

५ तीर्थकृन्मतमेवैतन्नयवादनिरपेक्षमिति कैश्चित् प्रतिपादयद्भिस्तस्याधिक्षेपप्रदानात् ॥ ५३ ॥

[स्याद्वादज्ञः अधिकारिविशेषे सति निरपेक्षनयद्वयाश्रितान्यपि वचांसि प्रयुञ्जानो न दोषभागिति प्रथनम्]

परस्परनिरपेक्षयोरनयोः प्रज्ञापना तीर्थकरासादना इत्यस्यापवादमाह-

पुरिसज्जायं तु पडुच्च जाणओ पण्णवेज्ज अण्णयरं ।
१० परिकम्मणाणिमित्तं दाएही सो विसेसं पि ॥ ५४ ॥

पुरुषजातं प्रतिपन्नद्रव्यपर्यायान्यतरस्वरूपम् श्रोतारं वा प्रतीत्य आश्रित्य ज्ञायकः स्याद्वादवित् प्रज्ञापयेत् आचक्षीत अन्यतरत् पर्यायम् द्रव्यं वा—अभ्युपेतपर्यायाय द्रव्यमेव, अङ्गीकृतद्रव्याय च पर्यायमेव कथयेत् । किमित्येकमेव कथयेत्? परिकर्मनिमित्तं बुद्धिसंस्कारार्थम् । परिकर्मितमतये दर्शयिष्यत्यसौ स्याद्वादाभिज्ञः विशेषमपि द्रव्य-पर्याययोः स्व-
१५ रूपाविनिर्भागरूपमेकांशविषयविज्ञानस्यान्यथा विपर्ययरूपताप्रसक्तिः स्यात् तदितराभावे तद्विषयस्याप्यभावात् ॥ ५४ ॥

इति तत्त्वबोधविधायिन्यां सम्मतिटीकायां प्रथमकाण्डम् ॥

---

१ [illegible] —
[illegible] ।
[illegible] ॥
२ [illegible] ।

गूजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

पुरातत्त्व मंदिर ग्रंथावली

१ पालीपाठावली—सं० मुनि जिनविजयजी. कि० ०-१४-०
२ प्राकृतकथासंग्रह—सं० मुनि जिनविजयजी. कि० ०-१२-०
३ आर्यविद्याव्याख्यानमाळा—हीरनी पट्टी. कि० ३-०-०
कापडनी पट्टी. कि० २-८-०
४ प्राचीन साहित्य—(श्रीरवीन्द्रनाथ टागोरना पुस्तकनो अनुवाद) [illegible]
५ उपनिषत्पाठावली—सं० श्री द० बा० कालेलकर. कि० ०-१२-०
६ अभिधम्मत्थसंगह—(बौद्ध तत्त्वज्ञाननो प्राथमिक ग्रंथ)
सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी. कि० १-०-०
७ बुद्धलीलासारसंग्रह—ले० अ० धर्मानंद कोसम्बी. कि० १-८-०
८ आर्योना तहेवारोनो इतिहास—ले० [illegible]. कि० १-८-०
९ अभिधानप्पदीपिका—(पाली शब्दकोष) सं० मुनि जि. वि. कि० ५-०-०
१० सन्मतितर्क भाग १—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास. कि० १०-०-०
११ काव्यप्रकाश—अनु० श्री रा. वि. पाठक अने श्री र. छो. परीख. कि० १-८-०
१२ धम्मपद—सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी. कि० १-०-०
१३ समाधिमार्ग—सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी. कि० ०-८-०
१४ बौद्धसंघनो परिचय—ले० अ० धर्मानंद कोसम्बी. कि० १-०-०
१५ प्राकृत व्याकरण—ले० पं० बेचरदास जीवराज. कि० [illegible]
१६ सन्मतितर्क भाग २—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास. कि० १०-०-०
१७ वैदिक पाठावली—सं० श्री रसिकलाल छोटालाल परीख. कि० १-८-०
१८ सन्मतितर्क भाग ३—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास कि० १०-०-०
१९ प्राचीन गुजरातीगद्यसंदर्भ सं० मुनि जिनविजयजी [illegible]
२० प्रबन्धचिन्तामणि - सं० मुनि जिनविजयजी

परसे अप्पेहिं णाणावरणिज्जपोग्गलेहिं आवेढियपरिवेढिए" [ ] इति तीर्थकरवचने पोस्तने सत्यपि—

"नामूर्तं मूर्ततामेति मूर्तं नायात्यमूर्तताम्।
द्रव्यं कालत्रयेऽपीत्थं च्यवते नात्मरूपतः" ॥ [ ] इति।

[illegible] निरपेक्षमिति कश्चित् प्रतिपादयन्निस्तस्याधिक्षेपनयनात् ॥ ५३ ॥

[स्याद्वादज्ञः अधिकारिविशेषे सति निरपेक्षनयद्वयाभिधानेऽपि वक्ताऽसि प्रयुञ्जानो न दोषभागिति प्रथनम्]

परस्परनिरपेक्षयोरनयोः प्रज्ञापना तीर्थंकरासादना इत्याशङ्क्याह-

पुरिसज्जायं तु पडुच्च जाणओ पण्णवेज्ज अण्णयरं।
१० परिकम्मणानिमित्तं दाएही सो विसेसं पि ॥ ५४ ॥

पुरुषजातं प्रतिनियतद्रव्य[illegible]स्वरूपम् श्रोतारं वा प्रतीत्य आश्रित्य [illegible] [illegible] प्रज्ञापयेत् [illegible] अन्यतरत् पर्यायम् द्रव्यं वा—अभ्युपेतपर्याय [illegible] [illegible] च [illegible] कथयेत्। किमिति [illegible] कथयेत्? परिकर्मनिमित्तं बुद्धि[illegible] [illegible]। [illegible] पर्यायनिष्पन्नसौ [illegible] विशेषमपि द्रव्य-पर्याययोः
१५ [illegible] निर्णयकरणामसति। स्यात् तदितराभावे [illegible] [illegible] ॥ ५४ ॥

इति तत्त्वबोधविधायिन्यां [illegible]टीकायां प्रथमकाण्डम् ॥

गूजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

पुरातत्त्व मंदिर ग्रंथावली

१ पालीपाठावली—सं० मुनि जिनविजयजी. किं० ०–१४–०

२ प्राकृतकथासंग्रह—सं० मुनि जिनविजयजी. किं० ०–१२–०

३ आर्यविद्याव्याख्यानमाळा—छींटनी पट्टी. किं० २– ०–०

चामडानी पट्टी. किं० २– ८–०

४ प्राचीन साहित्य—(श्रीरवीन्द्रनाथ टागोरना पुस्तकनो अनुवाद) शेष नथी

५ उपनिषत्पाठावली—सं० श्री० द० बा० कालेलकर. किं० ०–१२–०

६ अभिधम्मत्थसंगह—(बौद्ध तत्त्वज्ञाननो प्राथमिक ग्रंथ)
सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी. किं० २– ०–०

७ बुद्धलीलासारसंग्रह—ले० अ० धर्मानंद कोसम्बी. किं० २– ८–०

८ आर्योना तहेवारोनो इतिहास—ले० ऋग्वेदी. किं० १– ८–०

९ अभिधानप्पदीपिका—(पाली शब्दकोष) सं० मुनि जि. वि. किं० ५– ०–०

१० सम्मतितर्क भाग १—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास. किं० १०–०–०

११ काव्यप्रकाश—अनु० श्री रा. वि. पाठक अने श्री र. छो. परीख. किं० १– ८–०

१२ धम्मपद—सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी. किं० १– ०–०

१३ समाधिमार्ग—सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी. किं० ०– ८–०

१४ बौद्धसंघनो परिचय—ले० अ० धर्मानंद कोसम्बी. किं० २– ०–०

१५ प्राकृत व्याकरण—ले० पं० बेचरदास जीवराज. किं० ४– ०–०

१६ सम्मतितर्क भाग २—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास. किं० १०–०–०

१७ वैदिक पाठावली—सं० श्री रसिकलाल छोटालाल परीख. किं० १– ८–०

१८ सम्मतितर्क भाग ३—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास. किं० १०–०–०

१९ प्राचीन गूजरातीगद्यसंदर्भ—सं० मुनि जिनविजयजी. (छपाय छे)

२० प्रबन्धचिन्तामणि—सं० मुनि जिनविजयजी. (,,)

पएसे अणंतेहिं णाणावरणिज्जपोग्गलेहिं आवेढियपवेढिए" [ ] इति तीर्थकृद्वचने प्रमाणोपपन्ने सत्यपि—

"नामूर्त्तं मूर्त्ततामेति मूर्त्तं नायात्यमूर्त्तताम् ।
द्रव्यं कालत्रयेऽपीत्थं च्यवते नात्मरूपतः" ॥ [ ] इति ।

५ तीर्थकृन्मतमेवैतत्पक्षवादनिरपेक्षमिति कश्चित् प्रतिपादयन्निरस्तस्याधिक्षेपमरानाद् ॥ ५३ ॥

[स्याद्वादज्ञः अधिकारिविशेषे सति निरपेक्षनयद्वयाश्रितान्यपि वचांसि प्रयुञ्जानो न दोषभागिति प्रथनम्]

परस्परनिरपेक्षयोरनयोः प्रज्ञापना तीर्थकरासादना इत्यस्यापवादमाह–

पुरिसज्जायं तु पडुच्च जाणओ पण्णवेज्ज अण्णयरं ।
१० परिकम्मणाणिमित्तं दाएही सो विसेसं पि ॥ ५४ ॥

पुरुषजातं प्रतिपाद्यद्रव्यपर्यायान्यतररुचिरूपम् श्रोतारं वा प्रतीत्य आश्रित्य ज्ञः स्याद्वादविद् प्रज्ञापयेत् कथयेत् अन्यतरत् पर्यायम् द्रव्यं वा—अभ्युपेतपर्यायाय द्रव्यमेव, [illegible] न पर्यायमेव कथयेत् । किमित्येकमेव कथयेत्? परिकर्मनिमित्तं बुद्धिसंस्कारार्थम् । [illegible] दर्शयिष्यत्यसौ स्याद्वादाभिज्ञः विशेषमपि द्रव्य-पर्याययोः पर-
१५ [illegible] निर्विषयरूपतामसतिः स्यात् [illegible] ॥ ५४ ॥

इति तत्त्वबोधविधायिन्यां सम्मतिटीकायां प्रथमकाण्डम् ॥

गूजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

पुरातत्त्व मंदिर ग्रंथावली

१	पालीपाठावली—सं० मुनि जिनविजयजी.	किं० ०–१४–०
२	प्राकृतकथासंग्रह—सं० मुनि जिनविजयजी.	किं० ०–१२–०
३	आर्यविद्याव्याख्यानमाला—छीटनी पट्टी.	किं० २– ०–०
	खामडानी पट्टी.	किं० २– ८–०
४	प्राचीन साहित्य—(श्रीरवीन्द्रनाथ टागोरना पुस्तकनो अनुवाद)	शेष नथी
५	उपनिषत्पाठावली—सं० श्री० द० बा० कालेलकर.	किं० ०–१२–०
६	अभिधम्मत्थसंगह—(बौद्ध तत्त्वज्ञाननो प्राथमिक ग्रंथ) सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी.	किं० २– ०–०
७	बुद्धलीलासारसंग्रह—ले० अ० धर्मानंद कोसम्बी.	किं० २– ८–०
८	आर्योना तहेवारोनो इतिहास—ले० ऋग्वेदी.	किं० ३– ८–०
९	अभिधानप्पदीपिका—(पाली शब्दकोष) सं० मुनि जि. वि.	किं० ५– ०–०
१०	सम्मतितर्क भाग १—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास.	किं० १०–०–०
११	काव्यप्रकाश—अनु० श्री रा. वि. पाठक अने श्री र. छो. परीख.	किं० १– ८–०
१२	धम्मपद—सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी.	किं० १– ०–०
१३	समाधिमार्ग—सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी.	किं० ०– ८–०
१४	बौद्धसंघनो परिचय—ले० अ० धर्मानंद कोसम्बी.	किं० २– ०–०
१५	प्राकृत व्याकरण—ले० पं० बेचरदास जीवराज.	किं० ४– ०–०
१६	सम्मतितर्क भाग २—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास.	किं० १०–०–०
१७	वैदिक पाठावली—सं० श्री रसिकलाल छोटालाल परीख.	किं० ३– ८–०
१८	सम्मतितर्क भाग ३—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास.	किं० १०–०–०
१९	प्राचीन गूजरातीगद्यसंदर्भ—सं० मुनि जिनविजयजी.	(छपाय छे)
२०	प्रबन्धचिन्तामणि—सं० मुनि जिनविजयजी.	(,,)

पएसे अणंतेहिं णाणावरणिज्जपोग्गलेहिं आवेढियपवेढिए" [ ] इति तीर्थकृद्वचने प्रमाणोपपन्ने सत्यपि–

"नामूर्त्तं मूर्त्ततामेति मूर्त्तं नायात्यमूर्त्तताम्।
द्रव्यं कालत्रयेऽपीत्थं च्यवते नात्मरूपतः" ॥ [ ] इति।

५ तीर्थकृन्मतमेवैतन्नयवादनिरपेक्षमिति कैश्चित् प्रतिपादयद्भिस्तस्याधिक्षेपप्रदानात् ॥ ५३ ॥

[स्याद्वादज्ञः अधिकारिविशेषे सति निरपेक्षनयद्वयाश्रितान्यपि वचांसि प्रयुञ्जानो न दोषभागिति प्रथनम्]

परस्परनिरपेक्षयोरनयोः प्रज्ञापना तीर्थकरासादना इत्यस्यापवादमाह–

पुरिसज्जायं तु पडुच्च जाणओ पण्णवेज्ज अण्णयरं।
१० परिकम्मणाणिमित्तं दाएही सो विसेसं पि ॥ ५४ ॥

पुरुषजातं प्रतिपन्नद्रव्यपर्यायान्यतरस्वरूपम् श्रोतारं वा प्रतीत्य आश्रित्य ज्ञकः स्याद्वादवित् प्रज्ञापयेत् आचक्षीत अन्यतरत् पर्यायम् द्रव्यं वा–अभ्युपेतपर्यायाय द्रव्यमेव, अङ्गीकृतद्रव्याय च पर्यायमेव कथयेत्। किमित्येकमेव कथयेत्? परिकर्मनिमित्तं बुद्धिसंस्कारार्थम्। परिकर्मितमतये दर्शयिष्यत्यसौ स्याद्वादाभिज्ञः विशेषमपि द्रव्य-पर्याययोः पर-
१५ स्परापिनिर्भागरूपमेकान्तानियतविज्ञानस्यान्यथा विपर्ययरूपतामसक्तिः स्यात् तद्वितराभावे तद्विपक्षान्यमापात् ॥ ५४ ॥

इति तत्त्वबोधविधायिन्यां सम्मतिटीकायां प्रथमकाण्डम् ॥



[illegible]

गूजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

पुरातत्त्व मंदिर ग्रंथावली

१ पालीपाठावली—सं० मुनि जिनविजयजी. कि० ०–१४–०

२ प्राकृतकथासंग्रह—सं० मुनि जिनविजयजी. कि० ०–१२–०

३ आर्यविद्याव्याख्यानमाळा—छोटनी पूठी. कि० २–०–०

पाकडानी पूठी. कि० २–८–०

४ प्राचीन साहित्य—(श्रीरवीन्द्रनाथ टागोरना पुस्तकनो अनुवाद) शेष नथी

५ उपनिषद्पाठावली—सं० श्री० द० बा० कालेलकर. कि० ०–१२–०

६ अभिधम्मत्थसंगह—(बौद्ध तत्त्वज्ञाननो प्राथमिक ग्रंथ) सं० ध० धर्मानंद कोसम्बी. कि० २–०–०

७ बुद्धलीलासारसंग्रह—ले० ध० धर्मानंद कोसम्बी. कि० २–८–०

८ आर्योना तहेवारोनो इतिहास—ले० त्रवेदी. कि० १–८–०

९ अभिधानप्पदीपिका—(पाली शब्दकोश) सं० मुनि जि. वि. कि० ५–०–०

१० सम्मतितर्क भाग १—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास. कि० १०–०–०

११ काव्यप्रकाश—अनु० श्री रा. वि. पाठक अने श्री र. छो. परीख. कि० १–८–०

१२ धम्मपद—सं० ध० धर्मानंद कोसम्बी. कि० १–०–०

१३ समाधिमार्ग—सं० ध० धर्मानंद कोसम्बी. कि० ०–८–०

१४ बौद्धसंघनो परिचय—ले० ध० धर्मानंद कोसम्बी. कि० २–०–०

१५ प्राकृत व्याकरण—ले० पं० बेचरदास दोशी. कि० ४–०–०

१६ सम्मतितर्क भाग २—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास. कि० १०–०–०

१७ वैदिक पद्यावली—सं० श्री रसिकलाल छोटालाल परीख. कि० ३–८–०

१८ सम्मतितर्क भाग ३—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास. कि० १०–०–०

१९ प्राचीन गूजरातीगद्यसंदर्भ—सं० मुनि जिनविजयजी. (छपाय छे)

२० प्रबन्धचिन्तामणि—सं० मुनि जिनविजयजी. (")

पुरातत्त्व

[त्रैमासिकपत्र

संपादक–रसिकलाल छोटाल

मंदिर तरफथी उक्त नामनुं ए
करवामां आवे छे जेमां इतिहास, साहि
गणित, ज्योतिष, भूगोल, खगोल; इ
विचारशील अने विद्वान् लेखकोना हाथे
लेखो प्रकट थाय छे. वार्षिक लवाजम
आठ आना.

"पुरातत्त्व" प्रकाशित भाग

पुरातत्त्व त्रैमासिकना आज सुधी
१,२,३ अने ४ पुस्तकोनी पाका पुंठानी
तैयार छे. ए दरेक पुस्तकमां जैन, बौ
लगता अनेक प्रकारना अने उच्च कोटिना
संग्रह थयेलो छे. प्रत्येक पुस्तकभंडारम
सिओए गृहसंग्रहमां ए पुस्तको अवश्य स

मूल्य दरेक पुस्तकनुं रु० ५-१२-० टपा

पुरातत्त्व

[त्रैमासिकपत्र]

संपादक–रसिकलाल छोटालाल परीख

मंदिर तरफथी उक्त नामनुं एक त्रैमासिक पत्र प्रकट करवामां आवे छे जेमां इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान, स्थापत्य, गणित, ज्योतिष, भूगोल, खगोल; इत्यादि दरेक विषयना विचारशील अने विद्वान् लेखकोना हाथे लखाएला उच्च कोटिना लेखो प्रकट थाय छे. वार्षिक लवाजम पांच रूपिया, पोस्टेज आठ आना.

"पुरातत्त्व" प्रकाशित भाग १–२–३–४.

पुरातत्त्व त्रैमासिकना आज सुधीमां प्रकट थइ चुकेलां १,२,३ अने ४ पुस्तकोनी पाका पुंठानी बांधेली थोडी नकलो तैयार छे. ए दरेक पुस्तकमां जैन, बौद्ध अने हिंदु साहित्यने लगता अनेक प्रकारना अने उच्च कोटिना अनेक लेखोनो उत्तम संग्रह थयेलो छे. प्रत्येक पुस्तकभंडारमां अने विद्वान् अभ्यासिओए गृहसंग्रहमां ए पुस्तको अवश्य संग्रहवा योग्य छे.

मूल्य दरेक पुस्तकनुं रू० ५–१२–० टपाल खर्च जुदो.

प्राप्तिस्थान—

मंत्री–गूजरात पुरातत्त्वमंदिर,

अमदावाद

पुरातत्त्व

[त्रैमासिकपत्र]

संपादक—रसिकलाल छोटालाल परीख

मंदिर तरफथी उक्त नामनुं एक त्रैमासिक पत्र प्रकट करवामां आवे छे जेमां इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान, स्थापत्य, गणित, ज्योतिष, भूगोल, खगोल; इत्यादि दरेक विषयना विचारशील अने विद्वान् लेखकोना हाथे लखाएला उच्च कोटिना लेखो प्रकट थाय छे. वार्षिक लवाजम पांच रूपिया, पोस्टेज आठ आना.

"पुरातत्त्व" प्रकाशित भाग १–२–३–४.

पुरातत्त्व त्रैमासिकना आज सुधीमां प्रकट थइ चुकेलां १,२,३ अने ४ पुस्तकोनी पाका पुंठानी बांधेली थोडी नकलो तैयार छे. ए दरेक पुस्तकमां जैन, बौद्ध अने हिंदु साहित्यने लगता अनेक प्रकारना अने उच्च कोटिना अनेक लेखोनो उत्तम संग्रह थयेलो छे. प्रत्येक पुस्तकभंडारमां अने विद्वान् अभ्यासिओए गृहसंग्रहमां ए पुस्तको अवश्य संग्रहवा योग्य छे.

मूल्य दरेक पुस्तकनुं रु० ५–१२–० टपाल खर्च जुदो.

प्राप्तिस्थान—

मंत्री—गूजरात पुरातत्त्वमंदिर,

अमदावाद

पुरातत्त्व

[त्रैमासिकपत्र]

संपादक–रसिकलाल छोटालाल परीख

मंदिर तरफथी उक्त नामनुं एक त्रैमासिक पत्र प्र
करवामां आवे छे जेमां इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान, स्थाप
गणित, ज्योतिष, भूगोल, खगोल; इत्यादि दरेक विषय
विचारशील अने विद्वान् लेखकोना हाथे लखाएला उच्च कोटि
लेखो प्रकट थाय छे. वार्षिक लवाजम पांच रूपिया, पोरुं
आठ आना.

"पुरातत्त्व" प्रकाशित भाग १–२–३–४

पुरातत्त्व त्रैमासिकना आज सुधीमां प्रकट थइ चुके
१,२,३ अने ४ पुस्तकोनी पाका पुंठानी बांधेली थोडी नक
तैयार छे. ए दरेक पुस्तकमां जैन, बौद्ध अने हिंदु साहित्य
लगता अनेक प्रकारना अने उच्च कोटिना अनेक लेखोनो उत्त
संग्रह थयेलो छे. प्रत्येक पुस्तकभंडारमां अने विद्वान् अभ्य
सिवाए गृहसंग्रहमां ए पुस्तको अवश्य संग्रहवा योग्य छे.

मूल्य दरेक पुस्तकनुं रु० ५. १२ ० टपाल खर्च जुदो.

प्राप्तिस्थान—

मंत्री–गूजरात पुरातत्त्वमंदिर,

अमदावाद